CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लाहिड़ि-क्रियायोग-संहिता

LĀHIḌI-KRIYĀYOGA-SAṂHITĀ

A Sanskrit Text based on the Teachings of Sri Sibendu Lahiḍi

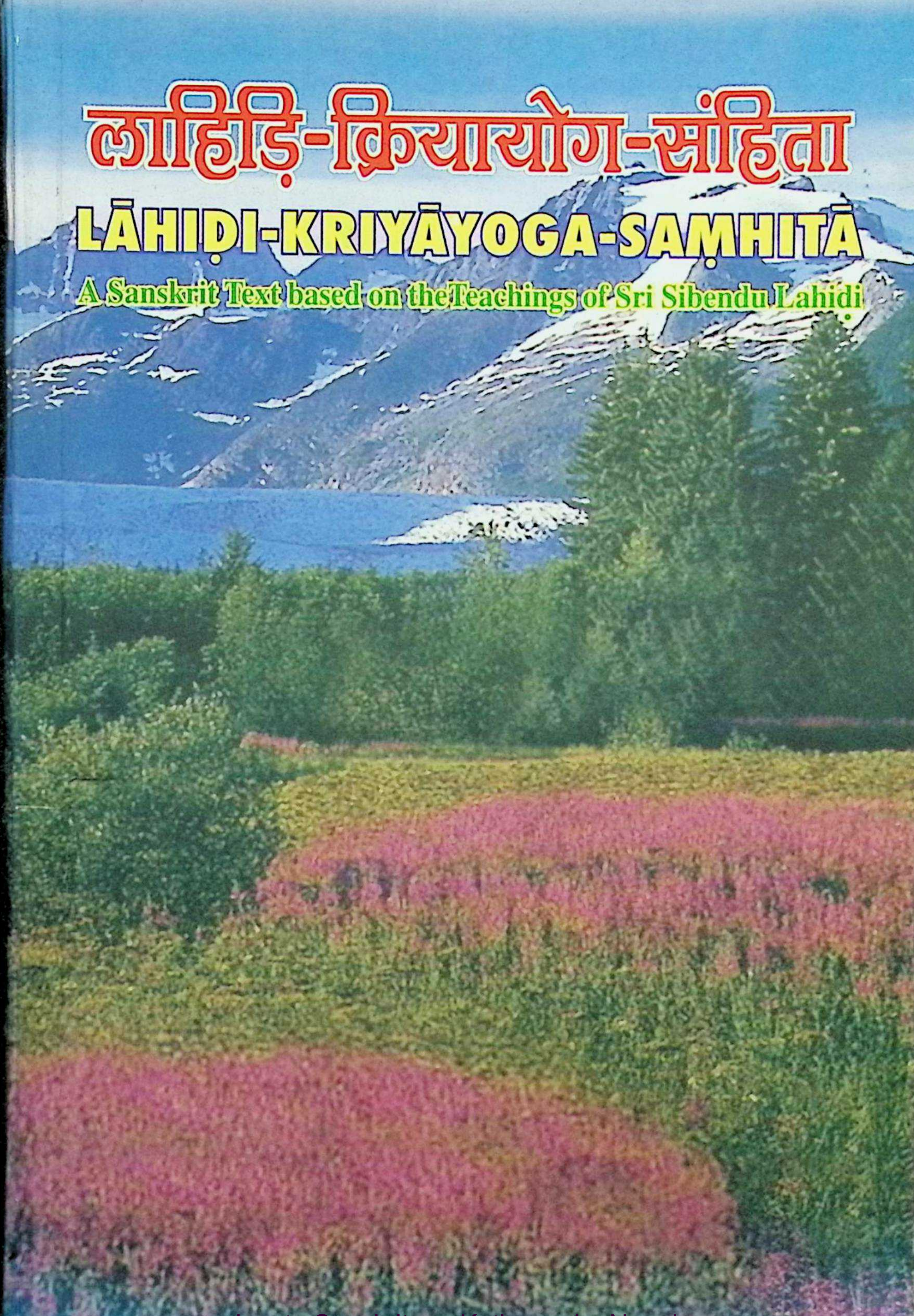

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लाहिड़ि-क्रियायोग-संहिता

LĀHIḌI - KRIYĀYOGA - SAṂHITĀ

A Sanskrit Text based on the Teachings of Sri Sibendu Lahiḍi

काशीनाथ न्यौपाने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

* लाहिड़ि-क्रियायोग-संहिता

LĀHIḌI - KRIYĀYOGA - SAṂHITĀ

* Author Dr. Kashinath Nyaupane

Email : kashinathguru@hotmail.com
P.O.Box : 1993, Kathmandu, Nepal
Phone : 00977-1-2023188

* First edition 2005

* 1000 Copies

* **Computer type setting** : Pradip Prasad dhungana
Sitapaila-1, Kathmandu.

* **Published by**
SATYALOK
D22/3, Chausatthighat, VARANASI, U.P. INDIA , 221001

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ॐ

ब्रह्मा-विष्णु-शिव के पुञ्जीभूत, प्रातःस्मरणीय,
हजारों क्रियान्वितशिष्यों के परमाराध्य
श्रद्धेय श्रीशिवेन्दुलाहिड़ी गुरुदेव को
सादर समर्पित

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भव-जलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां
सुत-दुहितृ-कलत्र-त्राणभारार्दितानाम् ।
विषम-विषयतोये मज्जतामप्लवानां
भवति शरणमेको योगपोतो नराणाम् ॥

जो लोग संसाररूपी महासागर में फँसे हुए हैं और द्वन्द्व (सुख-दुःख, शत्रु-मित्र, गर्मी-ठण्डी, राग-द्वेष, अपना-पराया, जय-पराजय आदि) रूपी तूफान से आहत हैं, पुत्र, पुत्री, पत्नी, पति आदि कुलकुटुम्ब के भरणपोषण के भार से दबे हुए हैं, अत एव विषयरूपी विषम (कठिन) समुद्री पानी में डूब रहे हैं, उनके लिए एकमात्र तारणहार नौका 'क्रियायोग' ही है उसी में शरणागत होना चाहिए ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

श्रीशिवेन्दुगुरुस्तुतिः

ॐ

सद्गुरुं विश्वविख्यातं योगिराजं महेश्वरम् ।
क्रिया-भागीरथी-स्नातं श्रीशिवेन्दुं नमाम्यहम् ॥१॥
कृपापाङ्गेन वै यस्य मुच्यन्ते सर्वप्राणिनः ।
विकल्पोज्झितविश्वं तं श्रीशिवेन्दुं नमाम्यहम् ॥२॥
श्रीलाहिड़िकुलास्तित्वं प्रक्रिया-गुरु-गौरवम् ।
क्रिया-गाङ्गं-निर्झरं सत्-श्रीशिवेन्दुं नमाम्यहम् ॥३॥
अहङ्कारस्य लोपेन स्थितप्रज्ञतया स्थितम् ।
कामलोभादिनिर्मुक्तं श्रीशिवेन्दुं नमाम्यहम् ॥४॥
महाकरुणया व्याप्तं चित्तं यस्य चितौ स्थितम् ।
विश्वात्मबोधसम्पन्नं श्रीशिवेन्दुं नमाम्यहम् ॥५॥
कारुण्यपूर्णदृष्ट्यैव जनान् पश्यति यः सदा ।
तन्मोहनाशसंलग्नं श्रीशिवेन्दुं नमाम्यहम् ॥६॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

क्रियायोग-प्रदानेन यो मोचयति मानवान् ।
सुख-दुःख-महाजालात् श्रीशिवेन्दुं नमाम्यहम् ॥७॥
प्रपौत्रं लोकविख्यात - श्यामाचरणशर्मणः ।
विदेहमुक्तमार्गस्थं श्रीशिवेन्दुं नमाम्यहम् ॥८॥
जन्म-व्याधि-जरा-मृत्यु-द्वन्द्वरोगहतान् जनान् ।
यो मोक्तुं क्रमते नित्यं श्रीशिवेन्दुं नमाम्यहम् ॥९॥
मानवानां दुःखध्वंसकारणाद् रौद्रकर्मणः ।
शिवरूपसमायुक्तं श्रीशिवेन्दुं नमाम्यहम् ॥१०॥
क्रियायोगप्रदानेन नव्यजीवनदानतः ।
सृष्टिकर्तृब्रह्मरूपं श्रीशिवेन्दुं नमाम्यहम् ॥११॥
सर्वेषां दुःखहानेन रक्षणात्पालनात्तथा ।
व्यापकत्वाद्वासुदेवं श्रीशिवेन्दुं नमाम्यहम् ॥१२॥
निर्गुणत्वान्नित्यसत्त्वस्वस्वरूपस्थितेश्च यः ।
चितिरूपात्परं ब्रह्म श्रीशिवेन्दुं नमाम्यहम् ॥१३॥
नमस्ते देवदेवाय नमस्ते व्यापकात्मने ।
जगदात्मस्वरूपाय शिवेन्दुगुरवे नमः ॥१४॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Blessings, much love and congratulations to those human beings who are gathering energy to see 'what is' and not wasting energy in worrying about 'what should be'.

Comprehension and Compassion can not be reached by climbing a ladder of concepts and conclusions. Enlightenment is never through the structure of experience confined within the split and separative consciousness functioning within a small area of the human brain which is still available for opening up to the 'whole'.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Don't try to touch and desecrate the holy 'whole' through the postulates, prejudices, pretensions and perversions of the shoddy little mind and ego which are virus and worm in the Super Computer, that human brain is. Memory and its articulation (Intellect) is never a problem.

Be in the energy of Understanding, not in the entanglement of Undertakings.

Jai Shyama Charan Lahiri Mahashay, the Gangotri of Kriya Phenomenon.

26. oct. 2004

(SHIBENDU LAHIRI)

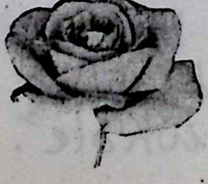

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

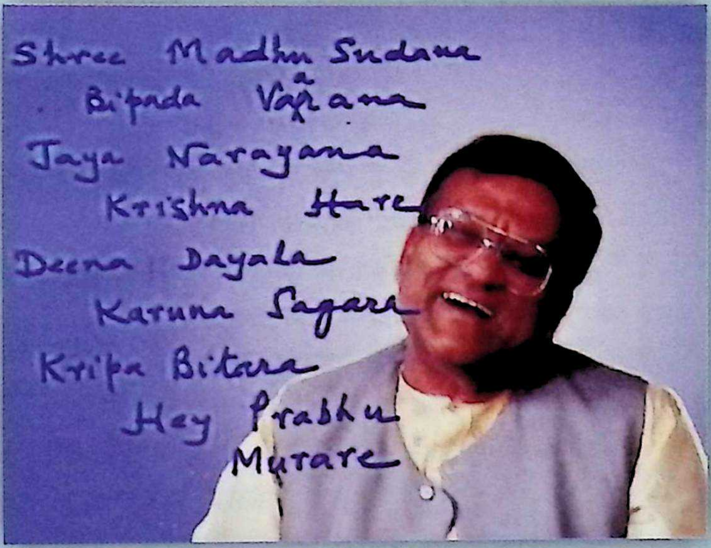

श्री शिवेन्दु लाहिड़ी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विषय-सूची

शीर्षक	पृष्ठ संख्या
प्राक्कथन -	I–XIX
प्रथम-परिच्छेद	
अध्याय १ - मङ्गलाचरण एवं शिष्यों के प्रश्न	१-८
अध्याय २ - श्री शिवेन्दु लाहिडी गुरुदेव के उत्तर	९-१७
अध्याय ३ - श्रीलाहिडी महाशय की जीवनी का अवतरण	१८-२४
अध्याय ४ - श्री बावाजी महाराज के साथ मिलन का उपक्रम	२५-२९
अध्याय ५ - रानीखेत गमन एवं श्री बाबाजीका दर्शन	३०-३६
अध्याय ६ - श्री बाबाजीको पहचानना एवं दोनों के बीच वार्तालापका प्रसंग	३७-४६
अध्याय ७ - हिमालय में विचित्र स्वर्णप्रासाद का निर्माण एवं उसकी भव्यताका सन्दर्शन	४७-५८
अध्याय ८ - उक्त स्वर्ण भवन में क्रियायोग की दीक्षा प्राप्त करना तथा उसका विसर्जन	५९-६५
अध्याय ९ - सात दिन तक निर्विकल्प समाधि का आस्वादन	६६-७५
अध्याय १० - क्रियायोग की सभी पद्धतियों को लौकिक जनों को सिखाने के लिए हिमालय से लाहिडी-महाशयका लौटना	७६-८१
अध्याय ११ - श्री महावतार बाबाजी का चरित्र का प्रारंभ	८२-८८
अध्याय १२ - श्री महावतार बाबाजी का अद्भूत कर्म	८९-९८
अध्याय १३ - श्री महावतार बाबाजी की दिव्य लीला	८९-१०६
अध्याय १४ - श्री बाबाजी के शिष्य के मुख से उनकी लीला का वर्णन	१०७-१०९
अध्याय १५ - उनकी विचित्र चारित्रिक झांकी	११०-११८
अध्याय १६ - श्री माताजीका एक विशेष कृत्य	११९-१३०
द्वितीय-परिच्छेद	
अध्याय १७ - साङ्ख्य तथा योग की एकता	१३१-१३७
अध्याय १८ - साङ्ख्य सम्मत २४ तत्वों का वर्णन	१३८-१४४

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शीर्षक	पृष्ठ संख्या
अध्याय १९ - जड एवं चेतन, प्रकृति, त्रिगुण आदि साङ्ख्यशास्त्र के तत्वों का वर्णन	१४५-१४९
अध्याय २० - योगशास्त्र का प्रयोजन	१५०-१५६
अध्याय २१ - अष्टाङ्ग योगका रहस्य वर्णन	१५७-१६२
अध्याय २२ - दु:ख-सुखादि वृत्तियों का विवेक	१६३-१६७
अध्याय २३ - योग शास्त्र के ७ सूत्रात्मक रहस्य	१६८-१७४
अध्याय २४ - 'चिति' विमर्श	१७५-१८०
अध्याय २५ - शैवशास्त्रान्तर्गत सदा. शिवादि तत्वों का वर्णन	१८१-२०१
अध्याय २६ - ३६ तत्वों का विवेचन	२०२-२०७
अध्याय २७ - ॐ प्रणवोपासना	२०८-२१६
अध्याय २८ - प्रपञ्च मिथ्यात्व-विचार	२१७-२२६
अध्याय २९ - आत्मा की अविकारिता का वर्णन	२२७-२३६
अध्याय ३० - समाधि अवस्था का वर्णन	२३७-२४५
अध्याय ३१ - प्रपञ्च की शान्ति, निवृत्ति वर्णन	२४६-२७०
अध्याय ३२ - श्री गुरुदेवका सन्देश संख्या ५० वें का स्वतन्त्र भावात्मक संग्रथन	२७१-२९०

तृतीय-परिच्छेद

अध्याय ३३ - श्री गुरुदेवद्वारा प्रेषित सन्देशों के संकलनात्मक कृति के प्रारंभ में श्री अनन्त कुमार सिंह एवं श्री जय प्रकाशसिंहद्वारा लिखित प्रस्तावना का भाव संग्रह	२९१-२९५
अध्याय ३४ - श्री गुरुदेव के विषय में प्रकाशित उसी संग्रह का 'लाहिडी श्रुति' यथानुरूप भावपल्लवन	२९६-३००
अध्याय ३५ - श्रीगुरुदेवका सन्देश-१, जिस में स्थितप्रज्ञता की व्याख्या की गई है	३०१-३१२
अध्याय ३६ - सन्देश.सङ्ख्या-२, जिस में पतञ्जलि योगसूत्र की रहस्यमयता पल्लवित है	३१३-३१६
अध्याय ३७ - सन्देश सङ्ख्या-३, मन एवं निर्मना	३१७-३१८

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शीर्षक	पृष्ठ संख्या
अध्याय ३८ - सन्देश सङ्ख्या-४, उपनिषद् सार	३२०-३२१
अध्याय ३९ - सन्देश सङ्ख्या-५, यथार्थ एवं अयथार्थ	३२२-३२४
अध्याय ४० - सन्देश सङ्ख्या-६, रति एवं ब्रह्मचर्य	३२५-३२६
अध्याय ४१ - सन्देश सङ्ख्या-७, जीवनकी सहजता	३२७
अध्याय ४२ - सन्देश सङ्ख्या-८, अस्तित्व सत् है नानुभव	३२८-३२९
अध्याय ४३ - सन्देश सङ्ख्या-९, अनुभव से प्रत्यक्ष बोधकी समाप्ति	३३०
अध्याय ४४ - सन्देश सङ्ख्या-१०, सत्संग	३३१-३३३
अध्याय ४५ - सन्देश सङ्ख्या-११, अष्टाङ्ग योग	३३४-३३८
अध्याय ४६ - सन्देश सङ्ख्या-१२, शब्द संग्रह	३३९-३४३
अध्याय ४७ - सन्देश सङ्ख्या-१३, क्रियायोग-विज्ञान	३४४-३४७
अध्याय ४८-सन्देश सङ्ख्या-१४,गतानुगतिक धार्मिकता एवं निर्मना के आयाम	३४८-३५५
अध्याय ४९ - सन्देश सङ्ख्या-१५, शून्यता का आयाम	३५६-३५८
अध्याय ५० - सन्देश सङ्ख्या-१६,शंकाओं में नहीं सन्धान में रहना चाहिए	३५९-३६०
अध्याय ५१ - सन्देश सङ्ख्या-१७, मुद्रा विवेक	३६१-३६२
अध्याय ५२ - सन्देश सङ्ख्या-१८, क्रियायोगका उद्देश्य	३६३-३६४
अध्याय ५३ - सन्देश सङ्ख्या-१९, दश मौलिक अनुशासन	३६५-३६७
अध्याय ५४ - सन्देश सङ्ख्या-२०, विचारों से शान्ति प्राप्त न होगी	३६८
अध्याय ५५ -सन्देश सङ्ख्या-२२,अनुभव से केवल संकेत मात्र मिलता है	३६९-३७१
अध्याय ५६ - सन्देश सङ्ख्या-२३, निर्वाण षट्कम् का भाव पल्लवन	३७२-३७६
अध्याय ५७ - सन्देश सङ्ख्या-२४, आप वह नहीं हैं जो सोचते हैं	३७७-३८२
अध्याय ५८ - सन्देश सङ्ख्या-२५, आप के देह में क्या है ?	३८३-३८६
अध्याय ५९ - सन्देश सङ्ख्या-२६, हम भिन्न इकाई नहीं हैं	३८७-३८९
अध्याय ६० - सन्देश सङ्ख्या-२७, प्रार्थना और ध्यान	३९०-३९२
अध्याय ६१ - सन्देश सङ्ख्या-२८, धार्मिक मनो वृत्तियां	३९३-३९७
अध्याय ६२ - सन्देश सङ्ख्या-२९, सत् और धर्म	३९८-३९९
अध्याय ६३ - सन्देश सङ्ख्या-३०, क्रिया तकनीक एवं सत्य	४००-४०४
अध्याय ६४ - सन्देश सङ्ख्या-३१, क्राइष्ट कन्ससनेस	४०५-४०९
अध्याय ६५ - सन्देश सङ्ख्या-३२, सत्य और विश्वास पद्धतियाँ	४१०-४१६

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्राक्कथन

प्रज्ञाका चरम-उत्कर्ष शास्त्रीय-वादविवाद या चमत्कार प्रदर्शन में नहीं है, और ज्ञानी अपने ज्ञानको सरलतमशब्दोंद्वारा ही प्रकाशित करते हैं। ज्ञानियों के अपने-अपने प्रकार, पद्धतियाँ, उपदेश और भिन्न आचरण हुआ करते हैं।

इस जगत् में कभी कभी विचित्र एवं विशिष्ट घटनायें घटती हैं । मानव इतिहास में शायद ही कोई इतनी वडी घटना कभी हुई होगी जो श्री गुरुदेवके साथ घट रही है। क्यों कि श्री गुरुदेव के शरीर के साथ इतनी विशिष्ट, विचित्र एवं समर्थ ऊर्जाका जो प्रवाह चलरहा है वह आश्चर्यमय है। और इतनी वडी उर्जाको लेकर वे विश्वके प्रत्येक कोने में जा रहे हैं। शायद लोग इतनी वडी विचित्र घटनाको समझ नहीं पा रहे हैं और सामान्यरूप से इसे ले रहे हैं किन्तु यह अत्यन्त दुर्लभ सृष्टिके गिने चुने घटनाओं में से एक है।

कामनाओं से पूर्णमुक्त, स्थितप्रज्ञपुरुष इतनी सक्रियता से काम कर रहे हैं यह दुर्वोध्य नहीं है।

प्रज्ञा के उच्चतम अवस्था में स्थित श्री गुरुदेव साधारण अज्ञ के तरह, आसक्त पुरुषके तरह कर्म में लगे हुए हैं और इतना ज्यादा भ्रमणशील हैं, साथ ही हजारों लागों को क्रियायोग के पवित्र परम्परा में ले आना, धैर्यपूर्वक उन्हें यह प्रक्रिया सिखाना, उनके जमे हुए हजारों जन्मों के संस्कारों को उखाड फेंकने के लिए निरन्तर उन्हें जगाना, इतना बडा कार्य इस रफतार से वे कैसे कर रहे हैं यह परम आश्चर्यका विषय है।

विश्वका भ्रमण वैसे अनेक लोग कामनाओं के जंजाल भें रहकर करते हैं और लोकेषणा तथा वित्तेषणा की पूर्ति करते हैं किन्तु कामनारहित, समाधि में अवस्थित श्री गुरुदेव जैसा कर रहे हैं इससे शायद अब दुनियाँ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

का निश्चय भी कायाकल्प होने जा रहा है अन्यथा इतनी बडी ऊर्जा के इतनी सक्रियता का क्या रहस्य हो सकता है।

मेरे महान् गुरुदेव, जिन्होंने क्रियायोग की आश्चर्यमय किन्तु वैज्ञानिक कुञ्जी देकर इस जीवनको धन्य बनाया और मेरे जैसे हजारों लोगों के जीवनको भी कृतकृत्य किया और इस समय उसी काम में लगे हुए हैं, वे हैं श्री **श्यामाचरण लाहिड़ीमहाशय** के प्रपौत्र श्री **तीनकौड़ी लाहिड़ी** के पौत्र तथा समर्थ गुरु श्री **सत्यचरण लाहिड़ी** के पुत्र श्री **शिविन्दु लाहिड़ी** ।

गुरुवर श्री **शिविन्दु लाहिड़ी महाशय** इस समय बुद्ध के तरह महाकरुणा से प्रेरित होकर जगत् के कल्याण में जुटे हुए हैं। वे ज्ञानी हैं, प्रज्ञावान् हैं, प्रज्ञा शील और समाधि के गहन बोध में अवस्थित हैं। मानव इतिहास में पुरोहितों, तत्ववक्ताओं, महामण्डलेश्वरों, अवतारों, सन्तों, महात्माओं, बाबाओं, दावेदारों तथा धर्म के मण्डी चलाने वाले ठेकेदारों के महान् भीड में गुरुवर श्री शिवेन्दु लाहिडी कहीं भी नहीं हैं, न तो वे किसी संगठन को चलाते हैं, न ही उनका कोई आश्रम है, न ही इस प्रकार की कोई महत्वाकाङ्क्षा ही रखते हैं, किन्तु महाज्ञानी श्री गुरुदेव इस महनीय परम्परागत क्रियापद्धति से युक्त महाज्ञानको विना किसी विचौलिया के व्यक्ति से व्यक्ति तक स्वयं ही पहुँचाते हैं। वे कोई लम्बा भाषण देने के लिए कभी प्रवृत्त नहीं होते। किन्तु संवाद के लिए सदा तत्पर रहते हैं। वे कहते हैं "भाषण से दुनियाँ या व्यक्ति नहीं वदलते। केवल भाषण से कभी किसीका दुःख दूर नहीं हुआ है इसी लिए क्रिया की आवश्यकता है। अपना उद्धार कोई दूसरा कभी नहीं कर सकता। स्वयं ही अपना उद्धार करो कैसे करें ? इस क्रिया योगके अभ्यास से"। श्री गुरुदेव लोगों को गुरुओं, अवतारों, पुस्तकों, नेताओं, समस्त सिद्धान्तों, रूढियों, वादों, परम्पराओं, विश्वासों और समस्त बन्धनों से मुक्त होने के लिए आवाहन करते हैं। वे कोई आश्वासन किसी को कभी भी नहीं वाँटते किन्तु लोगों को अपने विश्वासों और समस्त बन्धनों से मुक्त होने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

के लिए आवाहन करते हैं। साथ ही लोगों को रुढ विश्वासों से तोडने का काम करते हैं।

इनकी करुणा की अपार महिमा का अन्दाज तो इसी से लगाया जा सकता है कि वे पूरे वर्ष भर विश्वव्यापी रूपसे लोगोंको इस क्रिया योगको सिखाने के लिए विचरण करते हैं। इनका अपना घर वाराणसी में है, उस घर में केवल वर्ष में तीन वार आते हैं। संसार भ्रमण करना श्री गुरुदेवका कोइ सोख नहीं है और किसी कामना से भी वे उसमें प्रवृत्त नही हैं।

जो लोग इनके अध्यापन में रुचि रखते हैं और इनसे मिलने नहीं आ सकते, उन्हीं श्रद्धालुओं के आमन्त्रण पर वे स्वयं ही उनके द्वार पर जाते हैं और उनके अज्ञानको दूर करनेका प्रयास करते हैं।

वस्तुत: वे सभी इच्छाओं, कामनाओं, उद्देश्यों और महत्वाकाङ्क्षाओं से पूर्ण मुक्त होकर व्यासपुत्र श्रीशुकदेव के तरह पृथिवीका भ्रमण करते हैं। श्री शुकदेव किसी के भी घर में 'गोदोहन समय' लगभग - १० मिनट से ज्यादा कभी भी नहीं रहते थे। "स गोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहमेधिनाम्" कहकर पुराणों में उल्लिखित है। इसी प्रकार श्रीगुरुदेव विना उद्देश्य (उद्देश्यरहित = कामना रहित उद्देश्य) कहीं भी नहीं जाते और इनका काम केवल प्रत्येक व्यक्ति, जो इनसे मिलता है, के अहङ्कार एवं विचार प्रवाहको विच्छिन्न करना ही है। साथ ही लोगों को प्रज्ञावान् वनाना ही इनका दैनिक कार्य है। वे सभी जगह पहुंच सकते हैं। साधारण पहिनावा सर्टपैण्ट आदि धारण करना, अपने श्रद्धालुओं, प्रेमियों के साथ रहना, विना किसी विशेषण के केवल शिवेन्दु लाहिडी इतना ही लिखना और अपना परिचय देना, लोगों के जमे हुए, पुराने विश्वासों को तोडना और एक जगह, एक समूह और एक देश से दूसरे देश में भ्रमण करना यही श्री गुरुदेवका वर्षभर का कार्य है।

श्री गुरुदेव के अत्यन्त सरल, सटीक, किसी लागलपेट विहीन प्रत्यक्ष बोधके साथ निकले हुए सीधे शब्दों को सुनकर मैं, जिसने सभी भारतीय

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शास्त्रों और सिद्धान्तोंको पढ रखा था, आन्तरिक रूपसे हिल उठा और मुझे लगा श्री गुरुदेव के इन शब्दों को प्राचीन शास्त्रीय कसौटी पर रखा जाय तो शायद सभी के लिए ग्राह्य हों, और भारतीय मन, जो उसी दृष्टि से अपने गुरुको देखना चाहना है, उसे स्वीकारने में आसान होगा, तथा अवश्य ही वह पण्डित समाज भी इस महान् ज्ञान राशि से लाभ उठा सकेगा। इसी समझ के साथ मैंने यह ग्रन्थ लिखने का प्रयास किया।

लाहिडी-वंश-गुरु-परम्परा :

बंगभूमि में अवस्थित नदिया जिले के घुरणी ग्रामस्थ लाहिड़ी-ब्राह्मणकुल में श्रीगौरमोहन लाहिडी एवं श्रीमती मुक्ता केशी देवी के कनिष्ठ पुत्र के रूप में ३० सितम्बर, १८२८ ई. को श्री लाहिडी महाशयका जन्म हुआ था। इनका पूरा नाम श्री श्यामाचरण लाहिडी था। उन का बाल्यकाल घुरणी में ही व्यतित हुआ था और बाद में १८३३ में श्री गौरमोहन लाहिड़ी उक्त स्थान छोडकर सपरिवार काशी चले गए और वहीं अपने गृहस्थ धर्मका वेदोक्त नियमों के अनुकूल पालन करने लगे। श्रीलाहिड़ी महाशय ने काशी में ही संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, फ्रेन्च एवं ऊर्दू आदि की शिक्षा प्राप्त की और १८४६ में श्री देवनारायण सान्याल की सुपुत्री काशीमणि देवी के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। श्री लाहिड़ी महाशय के दो पुत्र हुए श्री तीन कौडी लाहिडी एवं श्री दुकौडी लाहिड़ी। अन्य दो पुत्रियाँ भी थीं। २३ वर्षकी आयु में (१८५१) वे तत्कालीन ब्रिटिश सरकार के सैनिक इन्जिनियर विभाग में एकाउन्टेन्ट पदपर नियुक्त हुए साथ ही निष्ठापूर्वक उक्त कार्य करते हुए विभिन्न स्थानों में स्थानान्तरित होते हुए अपने ३३ वें वर्षकी आयु में वे दानापुर में पदासीन थे। उसी समय इनका स्थानान्तरण काठ-गोदाम रानीखेत में हुआ और वहीं पर इन्हें अपने पूर्व जन्म के गुरुदेव महावतार बाबाजी महाराज के साथ साक्षात्कार हुआ। यह घटना १८६१ में घटी थी।

जैसे राजा भगीरथ ने अपने पूर्वजों के उद्धार हेतु गंगाका प्रवाह

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भूतलपर कराया उसी प्रकार श्री लाहिडी महाशयने समस्त वैराग्य सम्पन्न मोक्षेच्छु जनों के उद्धार हेतु निश्चित पद्धति से युक्त वैज्ञानिक योगमार्गका प्रवाह मानव जगत् की ओर चलाया जिसे हम आज "क्रियायोग" के नाम से जानते हैं, यही है लाहिडी-क्रियायोग। इस योग प्रक्रियाको उन्होंने दो मार्गों से वितरित किया। गुरूपरम्परा और शिष्य परम्पराद्वारा। उन्होंने अपने पुत्रद्वारा जो परम्परा चलायी वह गुरुपरम्परा और शिष्योंद्वारा जो प्रक्रिया चलाई वह शिष्य परम्परा है। लाहिड़ी महाशयके अनेक शिष्य हुए और उनलोगों की विभिन्न संस्थाएँ भारत और विदेशों में सक्रिय हैं। साथ ही अपने सुपुत्र श्री तीनकौडी लाहिडीद्वारा वह परम्परा अविच्छिन्न रूपसे चलायी, उन्होंने भी अपने पुत्र श्री सत्यचरण लाहिडीको उत्तराधिकारी के रूपमें वह विशिष्ट एवं विचित्र धरोहर को सौंप दिया। उन्होंने भी अपने एकमात्र सुपुत्र श्री शिवेन्दु लाहिडीको उक्त क्रिया-गङ्गा के रमणीय किन्तु तीव्र प्रवाहका उत्तराधिकारी वनाया। वे ही आज भारतवर्ष एवं अन्य देशों में क्रिया सरिता का प्रवाह कर रहे हैं। श्री शिवेन्दु के सुपुत्र श्री उज्ज्वल लाहिड़ी हैं, अभी वे अपने सांसारिक उत्तरदायित्व के निर्वाहके साथ-साथ क्रिया साधना में संलग्न हैं, हमें यही विश्वास करना चाहिए की वे ही इस क्रिया भागीरथीके गुरूपरम्परा को भविष्य में अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित करेंगे।

क्रियायोग क्या और कैसे ?

महावतार बाबाजी की कृपा से श्रद्धेय श्री लाहिड़ी महाशयने इस क्रिया योगको प्राप्त किया। इस में हठयोग, राजयोग और लययोग सम्मिलित हैं। क्रियायोगः शब्दका उल्लेख हमें अन्यत्र भी मिलता है। जैसा कि महर्षि पतञ्जलि ने "तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगाः" (यो.सू.) कहकर इस शब्दका प्रयोग किया है किन्तु इस से वे पतञ्जलि इसी पद्धतिका उल्लेख नहीं कर रहे हैं। साथ ही पतञ्जलियोगसूत्र में कोई पद्धति उल्लिखित

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नहीं है जिससे हम चित्त वृत्तिका निरोध कर सकें क्यों कि योगसूत्र दार्शनिक विचारधारा पर ही अधिक आधारित है। इस से स्पष्ट है कि क्रियायोग की विधि इससे भिन्न है। फिर भी दार्शनिक रूपसे हम पतञ्जलि के योग सूत्रों से व्याख्या अवश्य कर सकते हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण में भी 'क्रियायोग' शब्दका उल्लेख है किन्तु उस योग में नितान्त भिन्न विधि है और किसी योगपद्धतिपर आधारित न होकर विचारपर आधारित मानसिक क्रिया ही है जिसे हम कर्मकाण्ड के अन्तर्गत रख सकते हैं। इन सभी विवेचनों से यही निष्कर्ष निकलता है कि यह 'क्रियायोग' पद्धति नितान्त भिन्न और विज्ञान सम्मत पद्धति है।

जैसा कि लाहिडी महाशयने वताया है इस योगका उल्लेख श्रीमद्भगवद्गीता में है

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथाऽपरे ।
प्राणापानगती रुध्वा प्राणायामपरायणाः॥

प्राणवायुको अपानवायु में हवन करना और प्राण वायुमें अपान वायुका हवन, इसप्रकार प्राण और अपानवायु दोनों की गति निरुद्ध हो जाती है। यह उपर्युक्त पद्धति क्रियाप्राणायाम ही है जिससे यह क्रिया होती है। यह प्राणायाम कोई जबर्जस्ती नाकबन्द करके या मानसिक रूपमें किया जाने वाली क्रिया नहीं है। यह तो क्रियादीक्षा में गुरुदेव ही सिखाते हैं इसलिए इस पर कल्पना या अनुमानका कोई स्थान नहीं है।

क्रियादीक्षा में लययोग शिक्षण क्रम में श्री गुरुदेव जिसका शिक्षण करते हैं वह है गीतोक्त निम्नविधि-

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासांभ्यन्तरचारिणौ ॥
यतेन्द्रिय-मनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ (गीता -५ :२७, २८)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यह क्रियायोगविधि भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुनको माध्यम बनाकर ५ हजारवर्ष पहले संसारको दिया था किन्तु महाकाल के इस प्रवाह में लुप्त हो गया था। १९ वीं शताब्दी में श्री बाबाजीमहाराज की कृपा से श्री लाहिड़ीमहाशय ने फिर इसे समस्त लोक को प्रदान किया। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था -

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ॥ गीता - ४ : १-२ ।

"क्रियाका मूल अर्थ है सतत जागरुकता जनित गतिशीलता और योगका अर्थ है समन्वय। इस प्रकार क्रिया-योग मन के कुचक्र द्वारा निर्मित आयाम के बाहर सतत जागरुकता जनित गतिशीलता तथा विभेदकारी चित्तवृत्ति से उत्पन्न कर्मकाण्ड के समन्वय पर बल देता है।

यह सत्यान्वेषी के स्थूल अहंकेन्द्र को एक सूक्ष्म विशिष्ट अद्वितीयता में, जिसमें सार्वभौमिकता भी सम्मिलित है, मौलिक रूप से रूपांतरित कर देता है। यह आत्मकेन्द्रित गतिविधियों के अज्ञान के भेदन के माध्यम से जीवन की समग्रता के साथ सामंजस्य स्थापित करता है। यह हठ-राज-लय योग का अपूर्व सम्मिश्रण है। यह सत्यान्वेषी को स्वरूपावस्था में प्रतिष्ठित कर ता है। जिसमें उसका शरीर केवल ग्रंथियों एवं चक्रों द्वारा सञ्चालित होता है। चित्तवृत्ति एक घुसपैठिये की भाँति मनःकायिक समस्याओं एवं आपाधापी के सृजन के लिए कोई हस्तक्षेप नहीं कर पाता है। क्रियायोग में सत्वान्वेषी को तुच्छ एवं अपांग सांत्वनाओं में भ्रमित करने के लिए न तो कहानियां बताई जाती है, न ही चमत्कार प्रदर्शन में संलिप्त किया जाता है। अनुमानों एवं कल्पित-कथाओं को प्रोत्साहित करने वाली संस्थाएं सत्य के पथ से भटकाने वाली होती हैं। विना किसी विभाजन के ज्ञाता और ज्ञेय एकात्मक लय बन

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सकते हैं क्या ? ऐसी जिज्ञासाओं के लिए क्रियायोग सत्यान्वेषियों को उत्साहित करता है" । श्री गुरुदेव ने क्रियायोगको इस प्रकार व्यक्त किया ।

(सन्देश-१)

"विचार तब अपनी स्वरूपावस्था अर्थात् सरलता में होगा और वहाँ होगा एक पुनर्जागरण, रूपान्तरण एवं अन्तर्दृष्टि तथा तुम्हारा जीवन पीडा, मनोव्यथा, उत्तेजना, दर्प, मात्सर्य, तनाव एवं विक्षोभ, आशंकाओं, अवदमित कामनाओं एवं वासनाओं व विकृति एवं विभ्रम से मुक्त होगा। तब तुम पर विचार की गलाघोंटू पकड ढीली पड जायेगी और जागरुकता की एक क्रियाशील अवस्थाका उदय होगा जो कि विभेदकारी नहीं बल्कि स्वरूप में एकात्मक है अर्थात् जहाँ पर उद्दीपन और अनुक्रिया का एकात्मक लय बन जाता हैं" ।

"क्रिया में दीक्षित व्यक्ति को 'क्रियान्वित' अथवा 'क्रियावान्' कहा जाता है जिसका अर्थ है सचेतन क्रियाशीलता जिसमें कि न कोई धोखा खाता है न दूसरे को धोखा देता है ।

वह सक्रिय रूप से आत्मकेन्द्रित गतिविधियों तथा मन की आत्मसंरक्षी यन्त्ररचनाओं के प्रति जागरुक रहता है ।" - (सन्देश -१)

इस प्रकार आत्मकेन्द्रित यानी मन के कुचक्र से क्रियायोगी जागरुक हो जाता है । -

"क्रियायोग प्राणायाम एक सरल अन्तर्मुखी मनःकायिक पद्धति है जिसकेद्वारा मानवरक्त कार्बन से रहित तथा अक्सिजन से प्रपूरित हो जाता है। यह कार्वन हीनता और अतिरिक्त अक्सिजनद्वारा मस्तिष्क और मेरुदण्डस्थित चक्र नवीनशक्ति से युक्त हो जाते हैं। चक्र और ग्रन्थियाँ सक्रिय होती हैं। जीवनी शक्ति में वृद्धि होती है । नीलरक्तसमूह कम होने लगता है । इस रासायनिक प्रक्रियाद्वारा अशुद्ध रक्त संचयको रोककर प्राणायामपरायण क्रियायोगी रक्त के श्वेत कणों की क्षय की तीव्रताको कम कर देता है। साथ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ही अपने कोषाणुओं को जीवन शक्ति में परिवर्तन करने में पूर्ण समर्थ हो ज़ाता है। क्रिया अभ्यास द्वारा रक्त शुद्धिकरना, अतिरिक्त अक्सिजनपूरित करना और शरीर एवं मस्तिष्क को मनके प्रभावक्षेत्रसे बाहर करनेका काम स्वत:स्फूर्त रूपसे होगा ही।

"क्रियायोग का मुख्य उद्देश्य स्वभाविक स्थिति (वेदान्त की 'सहजावस्था', पतंजलि का स्वरूपेऽवस्थानम्, गीता का स्वधर्म और लाहिडी महाशय की परावस्था) में होना है। योग का अभिप्राय - मन और जीवन, ऐहिक और परम पवित्र, दिव्य बोधगम्य एवं दिव्य ज्ञानातीत, पवित्र एवं लौकिक विचार, सतत चित्त चांचल्य से उत्पन्न विभेदकारी चित्तवृत्ति और एकात्मबोध (जिसमें उद्दीपन और अनुक्रिया का एक एकात्मक लय बन जाता है) के मध्य समन्वय है।

स्वाभाविक अवस्था में यह जीवन्त शरीर ग्रन्थियों और चक्रों से निर्देशित होता है। चित्तवृत्ति न तो एक घुसपैठिये की भाँति कोई हस्तक्षेप करता है और न ही किसी प्रकार की मनोदैहिक समस्याओं, सन्तापों, विरोधाभासों, परेशानियों तथा दुर्दशाओं का सृजन कर पाता है। शरीर तव मन की विभिषिकाओं के गलाघोंटू पकड से छुटकारा पाता है। मन अपनी आत्मसंरक्षी-यन्त्र रचना द्वारा शरीर के ऊपर जबर्दश्त पकड बनाये रखता है जिसके कारण जीवन का जीवन्त स्वरूप नष्ट हो जाता है। यही कारण है कि मन को विभेदकारी चित्तवृत्ति कहा जाता है यानी कि एक ऐसी चित्तवृत्ति जिसमें आप अस्तित्व की समग्रता और सामंजस्य से पृथक् एवं वियुक्त हो जाते है।

चित्तवृत्ति की गलाघोंटू पकड का शिथिल होना ही प्रबोध का प्रारम्भ है। शरीर की स्वाभाविक अवस्था में विचार असतत रहता है। यह केवल तभी अस्तित्व में आता है जब कोई उद्दीपन अथवा प्रयोजन होता है। तव यह पूर्णता एवं उत्कर्ष के साथ यथोचित अनुक्रिया को उत्पन्न करता है।

मिथ्याभिमान निहित स्वार्थों के माध्यम से अनुक्रिया का ध्वंस नहीं कर

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पाता है। सत्यनिष्ठा सम्मुख आती है न कि मन के आत्मकेन्द्रित गतिविधियों की विभत्सता, यही है क्रिया-योग, न कि क्रिया-योग के नाम पर गरिमा, महिमा मण्डन और तुष्टि के लिए लालसा।

जानना ही, न कि मानने की दुनियाँ में फँसे रहना, क्रिया योग का अनुशासन है और प्रेम ही इसकी पूर्णता है। क्रिया-योग साहस है समर्पण का, साहस है अहंकार के संहार का तथा साहस है सम्पूर्ण पिघल जाने का। वे जो शून्य हो सकते हैं, पूर्णता को प्राप्त करते हैं। वे जो मर मिट सकते हैं, जीवन्त स्वरूपको प्राप्त करते हैं" (सन्देश - १८)।

हमारी पीडा और दु:खके कारण क्या हैं श्री गुरुदेव यों वताते हैं -

१. अन्ध विश्वासों ने अज्ञेय एवम् अनाममय के क्षेत्र में अतिक्रमण किया है।

२. शून्यता के परमानन्द की अपेक्षा अनुभवों का बोझ अधिक महत्वपूर्ण हो गया है

३. सम्बन्धों में कल्पित छवि का हस्तक्षेप हो रहा है।

४. अहंभाव अस्तित्व की स्थिति पर आधिपत्य करना चाह रहा है।

अत एव निम्न अनुशासन वे व्यक्त करते हैं -

दस मौलिक अनुशासन

१. किसी भी चीज पर सहसा विश्वास न करें। अपने विश्वासों और अनुभवों की, धर्म ग्रन्थों, प्राधिकारों और प्रकाशित सामग्री के कूडे कचरे से निकली हुई व्याख्या से नहीं और अनुभवों के यथार्थ स्वरूप की अन्तर्दृष्टि के माध्यम से समीक्षा करते हुए परीक्षा करें। कृपया इन्हें समझें:

   (अ) विश्वास भाग दौड है, समझदारी भगवत्ता है।

   (ब) विश्वास प्रलोभन है, समझदारी प्रशान्ति है।

   (स) विश्वास उत्तेजना है, समझदारी उन्मना है।

   (द) विश्वास धर्मान्धता एवं संघर्ष है, समझदारी धर्म-प्रगाढता एवं सहजानन्द है।

२. यह दावा न करें कि आपकी आस्था ही सर्वोत्तम तथा अन्तिम सत्य है। यह

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अन्वेषण करें कि आपकी आस्था आपके परिवार, समाज, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय अन्तर्द्वन्द्व कम कर सकता है या नहीं, आपकी आस्था बन्धन न हो बल्कि मुक्ति का साधन हो।

३. बहिर्मुखी गतिविधियों के माध्यम से मन की कल्पित कथाओं, शरारतों और व्याधियों की वास्तविकता से पलायन न करें बल्कि अन्तर्मुखी प्रत्यक्ष बोध एवं अध्यवसायद्वारा मानसिक स्थिति का सामना करें। इस प्रकार हर रूप में चित्तवृत्ति की हिंसा को समाप्त करने के लिए रूपान्तरण का सृजन करें।

४. विकल्पों, वर्गीकरणों लालसाओं और विरोधों के माध्यम से संवेदी प्रत्यक्षों को विषयासक्ति में परिवर्तित न करें। सदैव स्थितप्रज्ञ अवस्था में रहें।

५. सूचना एवं जानकारी का मात्र व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग करें। किसी सूचना में निहित स्वार्थ का समावेश न करें। सूचनाओं में न तो उलझें, न उसमें आसक्त हों, न उससे प्रभावित हों अथवा न ही उससे अवरुद्ध हों। सूचनाओं के अस्तित्व के वावजूद सूचनाओं से मुक्ति मानव मस्तिष्क का वैशिष्ट्य है जो कि कम्प्यूटर में सम्भव नहीं है। रूपान्तरण के विना सूचना मात्र गप है।

६. जीवन का अर्थ न पूछें। जीवन अपनी समग्रता में इतनी रमणीयता से इसीलिए अस्तित्ववान् है क्यों कि इसका बिल्कुल ही कोई अर्थ निकल नहीं सकता। जीवन का अर्थ पूछना हत्या एवं आत्महत्या का आवाहन होगा। जीवन के अर्थ की व्यर्थ एवं कदर्य खोज में मन साम्प्रदायिक विश्वासों की अनाप-शनाप की भ्रान्तियों तथा अन्य छद्म आदर्शों के लिए मरने और मारने की प्रवृत्ति में अपने को उकसाता है। मन, जो कि क्षण भंगुर है, अर्थ के अविष्कारद्वारा अपने को स्थायित्व प्रदान करने का प्रयास करता है जब कि जीवन अस्तित्व प्रजनन, जीवन एवं समापन में है जिसके प्रतीक व्रह्मा, विष्णु और शिव हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

७. अपने क्षेत्र में केवल एक स्थान पर गहराई से खोदें। केवल तभी आपको जल प्राप्त होगा। यदि आप अपने क्षेत्र को ही नष्ट करेंगे तब जल स्तर तक नहीं पहुँच सकेंगे।

८. गुरु को केवल मानसिक तुष्टि के लिए प्रयो न करें क्यों कि तब गुरु मात्र एक शिक्षक है। यदि अपने जीवन में उनका स्पर्श प्राप्त करें तो गुरु प्रेमावतार है। अपने को समग्रता से तदनुरूप होने दें तब गुरु आधार यानी अस्तित्व की पवित्र भूमि है और यही है ईश्वरत्व।

९. जन्म और मृत्यु की आवृत्ति एवं पुनरावर्तन के सडन पर जागरुक रहें। संसार चक्र में परिरुद्ध होने के बजाय उससे निरासक्त रहें। यही वास्तविक संन्यास है, न कि मात्र वेशभूषा।

१०. ध्यानशील बनें। जिसमें आपकी श्रद्धा हो उसी पर ध्यान करें। चित्तविक्षेप पर भी ध्यान करें। ध्यानशील अस्तित्व अनुभव का विलास नहीं है। प्रत्यक्ष बोध के विना अभ्यास अपवित्र है" (-सन्देश १९)।

क्रियायोगका गन्तव्य क्या है ?

श्री गुरुवाणी इस प्रकार व्यक्त हुई है -

"क्रियायोग का गन्तव्य मन के विलय से आविर्भूत गहन धार्मिकता है अर्थात् "निर्मना" या नूतन मन के धर्म का आलिंगन है जिस में मन की समस्त ऋणात्मक प्रवृत्तियों का भी ऋणीकरण हो जाता है। परन्तु लय योग की इस गहन धार्मिकता यानी सत्-चित्-आनन्द (जो कि प्रथम क्रिया-पत्र में नीचे लय योग वाणी के रूप में संक्षेप में उल्लिखित है) पर ध्यान देने के पूर्व यह शायद लाभदायक होगा कि हम मन से उत्पन्न गतानुगतिक चार प्रकार की धार्मिकता को समझ लें क्योंकि हम जहाँ हैं वहीं से यात्रा प्रारम्भ करना उचित होगा।"

प्रथम अज्ञान की उपज है :

"अहंकार अपने अज्ञान को स्वीकार नहीं करता है। इसलिये यह दृढता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पूर्वक दावा करता है कि वह जो कुछ जानता है, वही अन्तिम एवं श्रेष्ठतम है। यही धर्म के नाम पर धर्मोन्माद, रूढिवाद और समस्त रक्तपात को जन्म देता है। शायद किसी और नाम की अपेक्षा धर्म के नाम पर अधिक रक्त बहाया जा चुका है। यह "धर्म" कहता है कि युद्ध भी धार्मिक हो सकता है धर्मयुद्ध, क्रूसेड, जिहाद इत्यादि। यदि युद्ध पवित्र है तो अपवित्र क्या है ? मन की इस विकृत धार्मिकता ने मनुष्य को जीवन ध्वंस करने के लिये उकसाया है और इस प्रकार उसकी समग्रता के विरुद्ध ले जा कर उसकी सत्यनिष्ठा का संहार किया है। चित्तवृत्ति की ये विश्वास पद्धतियाँ मानवता को धोखा देने तथा मनुष्य को शाश्वत दुःखी बनाये रखने की व्यूहरचनायें मात्र हैं।"

द्वितीय भय की उपज है :

"सभी प्रकार के भय और अपराध वोध कल्पनाओं, कथाओं तथा अनुमानों के माध्यम से प्रवर्तित होते हैं। यहाँ मनुष्य मानों केवल दण्ड भोगने तथा पश्चात्ताप करने के लिये ही जन्म लिया है। नरकी अवधारणा भय का अन्तिम स्वरूप है।"

तृतीय लोभ की उपज है :

"सभी प्रकार की उद्भट-कल्पना, अपेक्षा, आशा, महत्वकांक्षा, लालसा और लोभ मन विरचित इस धार्मिकता को प्रोत्साहित करने के लिये ही उत्पन्न किया जाता है जिससे कि मनुष्य सदैव उत्तेजना एवं गडवडी में फँसा रहे। स्वर्ग की अवधारणा चरम लोभ है।"

चतुर्थ धर्मशास्त्रों की उपज है :

"समस्त धारणायें, विरुद्ध धारणायें, सामन्जस्य, सभी प्रकार के विवाद एवं विरोध, समस्त आग्रह एवं निषेध, सभी पवित्र अवधारणायें एवं बडी-वडी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वातें व मुहावरें, मन की सभी प्रकार की उपज तथा पूर्व धारणायें कुछ भी नहीं बल्कि सुअर की लीद जैसी हैं।

चित्तवृत्ति से उत्पन्न धर्म के उपर्युक्त चारों प्रकारों में कोई सत्य निहित नहीं है।"

"अव हम 'निर्मना' के धर्म को इसके तीन आयामों में समझने का प्रयास करें। यह धार्मिकता तीन अंगभूत अवयवों के साथ केवल एक ही है। यह गहन धार्मिकता धर्म के नाम पर घनीभूत समस्त आवेगों एवं भावुकताओं को जो कि रुग्ण, कुत्सित एवं दुर्गन्धपूर्ण हैं, दूर कर देता है। चित्तवृत्ति आपको भ्रष्टाचार में लिप्त करता है जबकि "निर्मनावस्था" (मनोविकृति नहीं) आपका सही पथ प्रदर्शन करता है। आप मनका दुरूपयोग कर सकते हैं किन्तु "निर्मनावस्था" का नहीं। "निर्मनावस्था" का यह धर्म आपके मन के पूर्वाग्रहों से मुक्ति का विज्ञान है। इसे किसी पैगम्बर, उद्धारक, पोप, अवतार, परमहंस, महामण्डलेश्वर इत्यादि की आवश्यकता नहीं है। समझदारी एवं प्रज्ञा की शक्ति ही पर्याप्त है। मन सूचना प्रदान करता है, "निर्मनावस्था" रूपान्तरण को प्रोत्साहित करती है।"

"निर्मनावस्था" की धार्मिकता का प्रथम आयाम :

"सत्-शुद्ध जीवन-अतिथिभाव। यह है अतिथि के भाव से जीवन-यापन करना। हम सभी अतिथि हैं। कोई भी इस जगत् का स्थायी निवासी नहीं है। एक अतिथि विना आसक्ति के किन्तु पूर्ण सामन्जस्यबोध के साथ रहता है। जीवन स्वरूप में वह किसी प्रकार की गडबडी उत्पन्न नहीं करता है।"

"निर्मनावस्था" की धार्मिकता का द्वितीय आयाम :

"चित्त-शुद्ध चैतन्य-साक्षीभाव। यह है एक साक्षी की तरह से विना किसी विकल्प के, चेतना को प्रतियोगिविचारों की रणभूमि में परिवर्तित किये

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विना, अस्तित्व में रहना - एक ऐसी जागरुकता जिसमें स्थितप्रज्ञ भाव से कोई समझौता नहीं।"

"निर्मनावस्था" की धार्मिकता का तृतीय आयाम :

"आनन्द-शुद्ध हर्ष (विलास नहीं) समाप्तिभाव। यहाँ समाप्ति पर जोर दिया गया है न कि विरोधों के संवर्द्धन के जाल में फँसने पर। अशुभ का कृत्रिम विरोध शुभ को जन्म नहीं देता है। यह तो चित्तवृत्ति की ही धूर्तता पूर्ण चाल है। अच्छाई तभी विकसित होती है जबकि बुराइयाँ पूरी तरह से समाप्त हो जाती है। जब स्वार्थपूर्ण लालसाओं एवं कामनाओं के कारण उत्पन्न दुःख का निर्मना-प्रक्रिया के परिणामस्वरूप अन्त हो जाता है तब मंगलमय हर्ष की स्थिति का उदय होता है।"

"लययोग की उपर्युक्त मौलिक वाणियों, जो कि प्रथम सोपान क्रिया-योग दीक्षा समारोह में समझायी जाती हैं, पर ध्यान करें इस प्रकार सर्वोच्च गृहस्थयोगी के सीधे एवं निष्कपट सन्देश को समझने का प्रयास करें तथा आध्यात्मिक मण्डी के निरर्थक वाग्जाल में भ्रमित न हों जो कि लाहिडी महाशय के कथन के रूप में बेचे जा रहे हैं। लाहिडी महाशय इस धरती पर आपको दुर्बल एवं गतिहीन सात्वनाओं में प्रसन्न रखने के लिये नहीं बल्कि मन-निर्मित कारागार को ध्वंस करने के लिये अवतीर्ण हुए थे। क्रिया-योगको समझें और इसका अभ्यास करें तभी आप उसे निश्चित रूप से प्राप्त कर सकते हैं जिसे कि लाओत्जु और लाहिडी महाशय ने लय (निर्मनावस्था) में प्राप्त किया था" (-सन्देश १४)।

"अनुभव से नहीं बल्कि शून्यता के आयाम से जो देखा जाता है वही तो ऐसी जागरुकता है जिसमें प्रीतिकर एवम् अप्रीतिकर में वर्गीकरण अथवा विकल्पों की पूर्णतया अनुपस्थिति हेतु कोई उत्तेजना एवम् उपद्रव सम्भव नहीं हो पाता है। यही तो है ध्यान। तब एक अनिर्वचनीय-आशीर्वाद के साथ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

परम मंगलमय का मूक आगमन होता है। यह हर वार आश्चर्यजनक ढंग से नवीन होता है, यद्यपि प्रत्येक समय शायद वह वही होता है। यह अति संवेदशीलता के वावजूद भी अत्यन्त प्रबल एवं सशक्त होता है। यह तो तृण के एक पर्ण की वह अद्भुत शक्ति है जो एक आकस्मिक मृत्यु का सहर्ष वरण कर सकती है। यह परिपूर्ण रूप से आता है तथा एक झलक से ही चला जाता है परन्तु वह झलक सभी काल एवं महाकाल से परे होता है।"

'निर्मना' के पारावार में विलीन हो जाना ही तो नगण्य या क्षुद्र मन का योनिमुद्रा में ओंकार का विस्फोट है जो कि यथार्थ ध्यान एवं दिव्य आवेश का आरम्भ है।

ध्यान, चित्तवृत्ति की अपनी उलझनों व अवरोधों, अपने कल्पना जाल एवं मिथ्याभिमान तथा आपाधापी व भ्रान्तियों के जाल में फँसने की संलिप्तता नहीं बल्कि उसका सम्पूर्ण विनाश है।"

अनुभव रहित सचेतना का सहज उदाहरण :

"जब कोई वास्तव में यह समझने के लिए पर्याप्त रूप से परिपक्व हो जाता है कि मान और अपमान मन के मिथ्याभिमान एवं स्वार्थपरता की गतिविधियाँ हैं तब मान अथवा अपमान उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं छोड पाते हैं। इस अवस्था में उसे किसी प्रकार के मान या अपमान की अनुभूति नहीं होगी परन्तु वह आसपास घटित हो रही ऐसी गतिविधियों के प्रति सचेतन रहेगा। परिपक्वता उस आयाम से सम्बन्धित है जो मन के परे है। मन सदैव अपरिपक्व होता है। मन कभी भी उस परम पवित्र की अनुभूति नहीं कर सकता है क्यों कि समस्त अनुभव निरर्थक हैं। अनुभव का घटित होना की इस तथ्य का पर्याप्त प्रमाण है कि वह शाश्वत नहीं है। यह एक ऐसा संकेत मात्र है जिससे अग्रसर होने की प्रेरणा प्राप्त होती है।"

"वह यात्रा निरन्तर चलती रहनी चाहिए। कभी भी निष्प्राण एवं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रवाहहीन मतवाद में अवरुद्ध न हो जायें। वे अद्वितीय मानव प्राणी (अहंकारी व्यक्तित्व नहीं) धन्य हैं जो कि दिव्य - परमानन्द के साम्राज्य में प्रविष्ट होते हैं " (-सन्देश १५)।

इस प्रकार श्री गुरुदेव के अमूल्य गहन बोध से निसृत वाणी में अवगाहनपूर्वक हम क्रिया अभ्यास में लगें तभी कल्याण संभव है। कल्याण से तात्पर्य स्व-स्वरूप में अवस्थिति को समझना चाहिए।

मन के कुचक्रों में अब हमें नहीं भटकना चाहिए। किन्तु निर्मना के परम प्रबोध में गतिशील होना चाहिए। श्री गुरुदेव की वाणी समग्र भ्रम जालको तोडती हुई अपने ऊर्जा के अदम्य सामर्थ्य के साथ वह रही है उस में स्नान करके ही हम अपने मन के कथित सत्ता को धो सकते हैं।

प्रस्तुतग्रन्थ के विषय में :

इस ग्रन्थ में साङ्ख्य, योग, वेदान्त, शैव-शाक्त दर्शन एवं श्रीगुरुदेव की वाणीको भी संमिलित करके, पढकर और सुनकर लिखा गया है।

श्री लाहिडी महाशयका चरित्र, महावतार श्री बाबाजी महाराज का चरित्र और कई विषय भी यहाँ है।

यह पुस्तक तीन खण्डों में है - ज्ञानखण्ड, क्रियाखण्ड और प्रकीर्ण खण्ड। यह जो आपके हाथों में है यह ज्ञान खण्डका प्रथम भाग है। ज्ञानखण्ड का एक और भाग आपको मिलेगा। फिर क्रियाखण्ड और प्रकीर्ण खण्ड। ज्ञान खण्ड में शास्त्रीय विषय, श्री गुरुदेवके सन्देश और उनके विचारों का प्रकाशन किया गया है। क्रियाखण्ड में क्रियायोग के प्रकार, पद्धतियाँ, इसयोग के सोपान तथा इसकी चरम परिणति आदि विषय होंगे। प्रकीर्ण खण्ड में कई विषयों के साथ श्री गुरुदेव की वाणी का भी संकलन किया जाएगा।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रथम परिच्छेद अन्तर्गत प्रारंभिक १६ अध्यायों में श्री

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लाहिडी महाशयका चरित्र, उनकी दीक्षा, उनकी जीवनी आदि विषयों के साथ महावतार वावाजी का लौकिक किन्तु आश्चर्यपूर्ण चरित्रों का वर्णन किया गया है।

उसके वाद द्वितीय परिच्छेद में १७ वें अध्याय से लेकर २३ वें अध्याय तक सम्पूर्ण साङ्ख्य सिद्धान्त एवं योग सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है।

२४ वें अध्याय से लेकर २६ अध्याय तक भगवती चितिका स्वरूप उसके वाद शैव दर्शन के समग्र ३६ तत्वाँ का वर्णन भी किया गया है। शैव दर्शन के अन्तर्गत - सदाशिवतत्व, ईश्वरतत्व, विद्यातत्व, विज्ञानाकल, प्रलयाकल, सकल, माया के पाँच अवस्थायें आदि विषय संगृहित हैं। उसी क्रम में २७ वें अध्याय में वेदान्तशास्त्र सम्मत प्रणव ॐकारका रहस्य वताया गया है। २८ एवं २९ अध्याय में प्रपञ्च का मिथ्यात्व कैसे है इसे दिखाया गया है। आत्मतत्त्व कभी भी विकृत नहीं हो सकता यह भी दिखाया गया है।

३० वें अध्याय में समाधि की गहन वोध के विषय में लिखा गया है।

३१ वें अध्याय में प्रपञ्च का उपशमन कैसे संभव है यह दिखाया गया है।

३२ वें अध्याय में श्री गुरुदेवद्वारा सन्देश के रूप में प्रसारित 'आनन्दमय वोध के पचास रत्न' को ही लिखा गया है। इस प्रकार यह द्वितीय परिच्छेद पूर्ण हो जाता है।

तृतीय परिच्छेद अन्तर्गत श्री गुरुदेव द्वारा विश्वव्यापी रूप में प्रसारित सन्देशों का ही सार संग्रह या अनुवाद जो स्वतः स्फूर्तरूप में हुआ है को रखा गया है। श्रीगुरुदेव के सन्देशों में १-३२ और ५० वां ही इस भाग में हैं अन्य अवशिष्ट दूसरे भाग में समाहित किए जायेंगे।

पण्डितों से आग्रह है :

नास्य श्लाघामकलितगुणः पोषयन् प्रीतये नः ।
कोन्धैश्चित्रस्तुतिशतविधौ शिल्पिनः स्यात् प्रकर्षः ॥
निन्दामेव प्रथयतु जनः किन्तु दोषान्निरूप्य ।
प्रेक्ष्याँस्तस्य स्खलितकथनं प्रीणयेदेव भूयः ॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इस ग्रन्थ लेखन कार्य से मेरी वाणी भी उस उत्तम विषयका वर्णन करने के कारण पवित्र हो ही गई है जैसे गली, नालेका गन्दा पानी भी जव गंगा में प्रवेश करता है तव स्वतः पवित्र गङ्गाजल वन जाता है और हमें पवित्र करता ही है। इसी आशय को पण्डितों के पण्डित 'भामती' के लेखक सर्वतन्त्र स्वतन्त्र श्री वाचस्पति मिश्र ने भी यों व्यक्त किया है -

आचार्यकृतिनिवेशनमप्यवधृतं वचोऽस्मदादीनाम् ।
रथ्योदकमिव गङ्गाप्रवाहपातः पवित्रयति ॥ (-भामती-१.१.१.७)

अन्त में मुझे इस कार्य में प्रत्यक्ष और परोक्षरूप से भी सहयोग पहुँचाने वाले सभी विद्वद्वर्ग एवं सज्जनों को हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

वि.सं. २०६१, मार्गशीर्ष पूर्णिमा,
काठमाडौं, नेपाल

काशीनाथ न्यौपाने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लाहिड़िक्रियायोगसंहितायां

प्रथमपरिच्छेदः

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

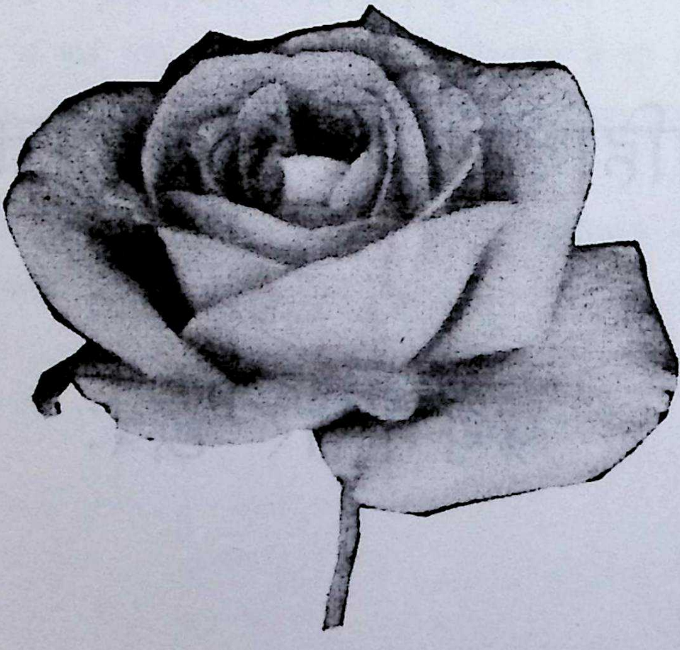

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

क्रियायोग - वंश परम्परा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लाहिड़िक्रियायोगसंहितायाम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

हिमालयगुहैव नित्यलीलास्थलं प्रजायते येषाम् ।
ते महावतारगुरवः प्रचोदयन्तु मुमुक्षुधीरान् ॥१॥
येषां कृपैव किल भवति तरिर्भवार्णवतरणे ।
ते महावतारपुरुषाः प्रचोदयन्तु मुमुक्षुधीरान् ॥२॥
योगमार्गे ह्यविश्वस्तान् मोहमायासमावृतान् ।
मन्दान् संज्ञापयामासुर्योगलक्ष्यं न संशयः ॥३॥
येऽपि योगस्य वाचालाः किन्तु क्रियास्वसंस्थिताः ।
श्रद्धाविश्वासयुक्ताँस्तान् योगमार्गमबोधयन् ॥४॥

अध्याय-१

हिमालय की पवित्र गुफाएँ ही जिनकी नित्य लीलास्थली हैं, वे महावतार बाबाजी महाराज समस्त मुमुक्षुओं का मागदर्शन करें ॥१॥

जिनकी कृपादृष्टि, निश्चय ही संसार सागर से पारहोने के लिए नौका बनजाती है, वे महावतार बाबाजी सभी मोक्षेच्छु जनोंका मार्गदर्शन करें ॥२॥

मोह और माया के महाजाल में फँसे हुए, योगमार्ग में विश्वास न करने वाले ऐसे सामान्य गृहस्थों (सांसारिक लोगों) को योग के महान् लक्ष्यको जिन्होंनें दिखा दिया है, और उन लोगों को जो योग के विषय में वातें तो करते हैं किन्तु पद्धति के ज्ञाता न होने के कारण योगाभ्यास में लग न सके, ऐसे श्रद्धा और विश्वासयुक्त लोगों को,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तान् लाहिडिमहाभागान् योगिश्रेष्ठान् नमाम्यहम् ।
तेषां कृपासहाय्येन संहितां वच्मि यत्नतः ॥५॥
लाहिडिकुलजान् सर्वान् योगिनश्चापि भक्तितः ।
नमामि सततं तेषां कुलविद्यां स्मराम्यहम् ॥६॥
क्रियायोगं समासाद्य श्रीलाहिडिमहाशयात् ।
मुक्तिमार्गं गता ये तु तान् नौमि भक्तितः सदा ॥७॥
तीनकौडीतिविख्यातं योगिश्रेष्ठं महामुनिम् ।
श्यामाचरणलाहिडिपुत्रं नमामि श्रद्धया ॥८॥
सत्यचरणलाहिडियोगिराजं तृतीयकम् ।
नौमि तं श्रद्धया भूयः कुलविद्याप्रदायकम् ॥९॥

जिन्होंने योग पद्धति (मार्ग)का प्रबोधन किया है, ऐसे योगिओं में श्रेष्ठ श्री लाहिडी महाशयको नमस्कार कर उनकी कृपा के सहयोग से इस लाहिडीक्रियायोगसंहिता की रचना कर रहा हूँ ॥३-५॥

'श्री श्यामाचरण लाहिडी' के इस पवित्र परम्परा में जो भी योगी हुए हैं उन्हें प्रणाम करता हूँ और निरन्तर उनकी इस कुलविद्या का स्मरण करता हूँ ॥६॥

'श्रीलाहिडी' महाशय से इस पवित्र क्रियायोग प्राप्त कर जो भी योगी मुक्तिमार्ग में गए उन्हें भी मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ ॥७॥

'तीनकौडी' नाम से प्रसिद्ध योगिराज, जो श्री लाहिडीमहाशय के सुपुत्र थे उन्हें मैं श्रद्धा से प्रणाम करता हूँ ॥८॥

श्री लाहिडी महाशयके कुल में तृतीय पुरुष यानी, उनके पौत्र

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

श्रीशिवेन्दुमहाभागं पुरुषं च चतुर्थकम् ।
श्रद्धया सततं योगिराजं नमामि यत्नतः ॥१०॥
पञ्चमं पुरुषं योगिश्रेष्ठम् उज्ज्वलनामकम् ।
स्मृत्वैव संहितां क्रियायोगस्यात्र ब्रवीम्यहम् ॥११॥
श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां प्रयत्नतः ।
रहस्यं खलु योगस्य विलिख्यते यथार्थतः ॥१२॥
इह ग्रन्थमुखेनैव महावतारस्वामिनाम् ।
रहस्यभरितं कृत्यं चरित्रं च प्रकाश्यते ॥१३॥
अनादिकालतो यस्य वासो हिमगिरौ श्रुतः ।
यावच्च जायते लोकस्थितिस्तावद् भविष्यति ॥१४॥

योगिराज श्री सत्यचरण लाहिडी हुए हैं, उन्हें मैं प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने शिष्यों को कुलागत क्रियायोग प्रदान किया है ॥९॥

श्री शिवेन्दु लाहिडी, जो इस पवित्रकुल में चतुर्थ पुरुष के रूप में योगी हुए हैं, उन्हें मैं निरन्तर श्रद्धा से प्रणाम करता हूँ ॥१०॥

इसी कुल में योगी के रूप में अवतरित श्रीमान् उज्ज्वल लाहिडी हैं, जो पाँचवें पुरुष के रूप में हैं और श्री शिवेन्दु जी के सुपुत्र हैं, उन्हें सभक्ति स्मरण करते हुए इस क्रियायोग संहिताका लेखन कर रहा हूँ ॥११॥

इस लाहिडीक्रियायोगसंहिता में प्रयत्नपूर्वक यथार्थ रूप में योगका समग्र रहस्य लिख रहा हूँ ॥१२॥

ग्रन्थ में प्रयत्नपूर्वक महावतार बाबाजी महाराजका लौकिक एवं विशिष्ट कृत्य तथा चरित्र, जो रहस्य से भरा हुआ है, का भी प्रकशन किया

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

श्यामाचरणलाहिडिचरित्रं च यथार्थतः ।
कृत्यं लोकगतं सर्वं विलिख्यते न संशयः ॥१५॥
तीनकौडिमहाभागचरित्रं च प्रयत्नतः ।
सत्यचरणयोगिनामपि सर्वं ब्रवीम्यहम् ॥१६॥
शिवेन्दुयोगिराडेव यथा यथा प्रवक्ष्यति ।
क्रियायोगसंहितायां लेखिष्यते तथा तथा ॥१७॥
हिन्दुराष्ट्रे सुविख्याते नेपाले सार्वभौमके ।
कौण्डिन्यगोत्रजो विद्वान् न्यौपानेकुलदीपकः ॥१८॥
काशीनाथनामधेयो योगशास्त्रे विशेषतः ।
वैदिकेऽवैदिके शास्त्रे पारङ्गतः सुधीः स्वयम् ॥१९॥

जाएगा ॥१३॥

अनादिकाल से जिनका वास हिमालय पर्वतों में है, ऐसा सुना जाता है, एवं देखा जाता है, साथ ही जबतक यह पृथ्वी रहेगी तब तक उनकी उपस्थिति रहेगी ऐसा सुना जाता है ॥१४॥

श्री श्यामाचरण लाहिडी का वास्तविक लौकिक चरित्र भी यथार्थरूप में लिखा जाएगा इस में कोई सन्देह नहीं है ॥१५॥

श्री तीनकौडी लाहिडी एवं उनके पुत्र योगिराज सत्यचरण लाहिडीका चरित्र भी समग्र रूप में लिखा जाएगा ॥१६॥

योगिराज श्री शिवेन्दु लाहिडी जैसा जैसा योग के रहस्यका उद्घाटन करेंगे वैसा वैसा ही इस क्रियायोग संहिता ग्रन्थ में लिखा जाएगा ॥१७॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

श्रीगुरोराज्ञया योगरहस्यं सकलं शुभम् ।
निबध्नाति सर्वलोकसौख्याय युक्तितोऽधुना ॥२०॥
सर्वैर्लोकगतैः शिष्यैः श्रीशिवेन्दुमहाशय -
पुरतो विहितान् प्रश्नान् इह संस्थापयाम्यहम् ॥२१॥
तेषां नु खलु प्रश्नानाम् उत्तरं यद् भविष्यति ।
तस्यैव समवायोऽत्र संहितायां विलिख्यते ॥२२॥
शिष्याः स्युः प्रश्नकर्तारः शिवेन्दुगुरुसन्निधौ ।
उत्तरं दास्यति नूनं श्रीशिवेन्दुमहाशयः ॥२३॥
अस्मिन्नद्भूतसंवादे श्रीशिवेन्दुमहाशयः ।
चरित्रं वक्ष्यति रम्यं पुरातनं महत्तमम् ॥२४॥

सार्वभौम, विश्वविख्यात, हिन्दु अधिराज्य नेपाल में कौडिन्य गोत्र में समुत्पन्न, 'नवपानीय' कुलका दीपक काशीनाथ न्यौपाने नामक विद्वान् जो वैदिक दर्शन एवं अवैदिक दर्शन दोनों में पारङ्गत तथा योगशास्त्र में विशेष जिज्ञासु होनेके कारण गुरु श्री शिवेन्दु लाहिडी के आज्ञा से अति उच्च योगशास्त्रका रहस्य समग्र लौकिक जिज्ञासुओं के आनन्द के लिए युक्तिपूर्वक लिख रहा है ॥१८-२०॥

इस ग्रन्थ में श्री शिवेन्दु लाहिडीके समक्ष उनके शिष्य-भक्तोंद्वारा किए हुए प्रश्नोंको यहाँ उपस्थापित किया जाता है । साथ ही उन प्रश्नों के जो उत्तर वे देंगे वेही इस ग्रन्थ में लिखे जायेंगे ॥२१-२२॥

शिष्य समूह ही प्रश्न कर्ता है और वे प्रश्न गुरु के लिए हैं, उनके उत्तर श्रीगुरुदेव यहाँ देंगे । इस अद्भूत गुरुशिष्य संवाद में श्री

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

श्रीशिवेन्दुर्महायोगी चैकदा हिन्दुराष्ट्रियम् ।
नेपालानां राजधानीं प्रययौ काष्ठमण्डपम् ॥२५॥
बहवश्चाभवन् शिष्याः क्षेत्रे पाशुपते तदा ।
अपृच्छन् ते महाभागं गुरुं तत्रैव श्रद्धया ॥२६॥
हे तात ! हे गरोर्नूनं योगिराड् वर्तते भवान् ।
श्रद्धया भवतः पादौ गृह्णीमो देव ! सादरम् ॥२७॥
भवत्कृपालवेनैव योगमासाद्य साम्प्रतम् ।
नूनं दुःखं नाशयामो योगाभ्यासबलेन च ॥२८॥
यच्चापि भवता प्रोक्तं क्रियायोगगतं शुभम् ।
गुह्यं महत्तमं रम्यं तन्मार्गदर्शकं भवेत् ॥२९॥

शिवेन्दुगुरुजी पुरातन रहस्ययुक्त चरित्रका उद्घाटन करेंगे । श्री शिवेन्दुगुरुदेव, एकवार हिन्दु राष्ट्र नेपालकी राजधानी काठमाण्डू गए थे, पाशुपत क्षेत्रके इस रमणीय भूमि में उनके बहुत से शिष्य एकत्रित हुए और श्रद्धापूर्वक उनके समक्ष उन्होंने अनेक प्रश्न किए, जो अतिशय श्रद्धा से युक्त, थे ॥२३-२६॥

शिष्यों ने श्रीगुरु शिवेन्दुजी से पूछा, हे गुरुदेव ! हे तात ! आप योगिराज हैं । इसीलिए श्रद्धा से हमलोग हे देव ! आपके चरणों में समर्पित हैं ॥२७॥

आपके कृपाबलद्वारा ही इस समय हमलोग योग दीक्षा प्राप्त कर योगाभ्यासद्वारा अपने दुःखके नाश में लगे हुए हैं ॥२८॥

क्रियायोग के विषय में आपने अपने सन्देशों के द्वारा जो भी कहा है वह

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

क्रियायोगस्य या गङ्गा लाहिडिभिः प्रवाहिता ।
पुरातनीं कथां रम्यां श्रोतुमिच्छामः साम्प्रतम् ॥३०॥
श्रीलाहिडिमहाभागशिष्यैश्च भूतले यथा ।
कर्माणि विहितान्यत्र श्रोतुमिच्छामः साम्प्रतम् ॥३१॥
स्वकीये जीवने तैस्तु योगिराड्भिश्च यत्कृतम् ।
कृत्यजातं याथार्थ्येन श्रोतुमिच्छामः साम्प्रतम् ॥३२॥
तेषां पुत्रो महायोगी समदृङ् निर्विकल्पकः ।
ददौ योगं च शिष्येभ्यः श्रोतुमिच्छामः साम्प्रतम् ॥३३॥
तस्यापि योगिराट्पुत्रो निर्विकल्पसमाधिना ।
जीवनं यापयामास तत्सर्वं श्रोतुमिष्यते ॥३४॥

अत्यन्त गुह्य, महत्तम रहस्य युक्त है जो हमलोगों का मार्गदर्शक है ॥२९॥

हे गुरुदेव ! क्रियायोगकी जो गङ्गा लाहिडीमहाशयने प्रवाहित की है उसके विषय में जो रमणीय कथा है वह हमलोग सुनना चाहते हैं ॥३०॥

श्रीलाहिडीमहाशय के महत्तम पुत्र एवं शिष्यों ने जैसे जैसे कृत्य किए हैं उन्हें भी इस समय हमलोग सुनना चाहते हैं ॥३१॥

अपने जीवन में श्री लाहिडी महाशयने जो भी कर्म किए हैं उन्हें भी यथार्थ रूप में आपके माध्यम से हमलोग सुनना चाहते हैं ॥३२॥

उनके सुपुत्र जो स्वयं महायोगी थे, समदृष्टि सम्पन्न, तथा निर्विकल्पक समाधि में प्रविष्ट थे, जिन्होंने शिष्यों की क्रियायोग की दीक्षा दी उनके विषय में भी सुनना चाहते हैं ॥३३॥

उनके भी सुपुत्र, श्री सत्य चरण लाहिडी जो महायोगी थे एवं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भवानपि गुरोर्नूनं विश्वं भ्रमति साम्प्रतम् ।
क्रियायोगरहस्यं च शिष्याँश्च शिक्षयत्यहो ॥३५॥
भवता कीदृशी शिक्षा प्रदीयते यथार्थतः ।
रहस्यं सकलं त्वत्तः श्रोतुमिच्छामः साम्प्रतम् ॥३६॥
॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे प्रथमोऽध्यायः॥

समाधि में ही मग्न होकर जीवन विताने वाले थे, उनके विषय में भी सुनना चाहते हैं ॥३४॥

हे गुरुदेव ! आप भी योगी हैं और स्वयं इस समय निरन्तर विश्वका भ्रमण करते हैं तथा क्रिया योगका रहस्य शिष्यों को वतलाते हैं साथ ही शिष्यों को दीक्षा भी देते हैं। आप की शिक्षा क्या है ? उसका यथार्थ रहस्य हमलोग सुनना चाहते हैं ॥३५-३६॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ द्वितीयोऽध्यायः

प्रश्नजातं तु संश्रुत्य श्रीशिवेन्दुमहाशयः ।
आह यथार्थतः सर्वप्रश्नानामुत्तरं यथा ॥१॥
प्रश्नाः समीचीनाः तावद् भवद्भिरधुना कृताः ।
तेषां वक्ष्यामि सर्वेषामुत्तराणि समासतः ॥२॥
श्यामाचरणलाहिडिमहाशयस्य शिक्षणम् ।
प्रथमं खलु शृण्वन्तु योगशिक्षां महत्तमाम् ॥३॥
यां समाश्रित्य वै लोकाः शान्ता भवन्ति निश्चितम् ।
सर्वादौ किल वक्तव्या श्रीलाहिडिमहाशय-
कथैव तत्र शृण्वन्तु सावधानतयाऽधुना ॥४॥

अध्याय-२

इस प्रकार अपने प्रिय शिष्यों के प्रश्नों को सुनकर श्री शिवेन्दु लाहिडी महाशयने सभी प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में यों दिया ॥१॥

आप सभी लोगों ने अच्छे सान्दर्भिक एवं युक्तियुक्त प्रश्न किए हैं। उन सभी प्रश्नोंका उत्तर संक्षेप में वतारहा हूँ ॥२॥

श्री श्यामाचरण लाहिडी महाशय ने जैसी योगकी शिक्षा दी है उसे सर्वप्रथम आप सभीलोग सुने मैं वतारहा हूँ ॥३॥

जिस योगका आश्रय लेकर निश्चित रूप में लोग शान्त होंगे। इसलिए, सबसे पहले श्री लाहिडीमहाशय से सम्बन्धित कथा या घटना ही मैं बताउँगा, आप सबलोग सावधान होकर सुनें ॥४॥

इस विषय में, सबसे पहले श्री लाहिडी महाशय श्री महावतार

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथो ब्रवीमि सर्वादौ श्रीलाहिडिमहाशयः ।
महावतारगुरूणामाश्रमं प्रययौ यथा ॥५॥
कथेयं विद्यते रम्या सर्वजनमनोहरा ।
शृण्वन्तु सावधानेन लोककल्याणहेतवे ॥६॥
यथा वा भगवान् कृष्णोऽर्जुनस्य माध्यमेन वै ।
गीतां प्रोवाच युद्धस्य भूमौ जनविमुक्तये ॥७॥
महावतारोऽपि तथा श्रीलाहिडिमहाशयम् ।
माध्यममुररीकृत्य क्रियायोगमुवाच ह ॥८॥
श्रीलाहिडिमहाभागो वङ्गभूमौ पुरातने ।
ब्राह्मणानां कुले जन्म गृहीतवान् न संशयः ॥९॥

बाबाजी के आश्रम में कैसे गए यह घटना मैं वता रहा हूँ ॥५॥

यह कथा अत्यन्त रमणीय सभीलोगों को आश्चर्य में पहूँचाने वाली है इसीलिए सावधान होकर लोककल्याण के निमित्त सुनलीजिए, जिसे मैं वता रहा हूँ ॥६॥

जैसे भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुनको माध्यम वनाकर श्रद्धालु एवं जिज्ञासु जनों की विमुक्ति के लिए युद्धिभूमि में गीताका उपदेश दिया ॥७॥

उसी प्रकार श्री महावतारबाबाजी महाराजने श्री लाहिडी महाशयको माध्यम बनाकर क्रियायोगका उपदेश दिया ॥८॥

श्री लाहिडी महाशयका जन्म बङ्गालभूमि में पुराने ब्राह्मण कुल में हुआ था इस में कोई सन्देह नहीं हैं ॥९॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

गौरमोहनलाहिडी तातपादोऽभवत्तथा ।
माता तु श्रीमती मुक्ताकेशी नाम्नैव कीर्तिता ॥१०॥
श्यामाचरणदेवस्य माता तु निधनङ्गता ।
वाल्ये वयसि तस्यैव ग्रामे घुरणीनामके ॥११॥
यथा वा भगवान् बुद्धो मातृविहीनताङ्गतः ।
तथैवेत्येव श्रीश्यामाचरणास्यापि चिन्त्यताम् ॥१२॥
मुक्ताकेशी महाभागा शिवस्योपासने रताः ।
भवतिस्मेति जानामि श्रुत्यैवात्र न संशयः ॥१३॥
बाल्ये तु स महाभागो घुरणीग्रामसंस्थितः ।
बालुकामध्यगो भूमौ ध्यानावस्थित इत्यपि ॥१४॥

श्री गौरमोहन लाहिडी इनके पिताजी थे और माताका नाम मुक्ताकेशी देवी था ॥१०॥

जब वे लाहिडी महाशय अपने बचपन अवस्था को पार भी नहीं कर पाए थे उसी समय उनकी माता जी का देहावसान उसी घुरणी ग्राम में अपने घर में ही हुआ था ॥११॥

जैसे भगवान् बुद्धदेव अत्यल्प वय में ही मातृविहीन हुए थे उसी प्रकार श्री लाहिडी महाशय भी बचपन में ही मातृविहीन हुए थे ॥१२॥

उनकी माता मुक्ताकेशी देवी निरन्तर भगवान् शिवकी उपासना में लगी ही रहती थी इतना ही जाना गया है परम्परागत श्रोत से, अन्य विषयों में विशेष ज्ञात नहीं है ॥१३॥

श्री लाहिडीमहाशयका चरित्र भी विशेष ज्ञात नहीं है। बाल्यकाल

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

श्रूयते नात्र वैचित्र्यं भाविकृत्यं हि सूच्यते ।
गेहे शिवस्य देवस्य मन्दिरं सुप्रतिष्ठितम् ॥१५॥
कालयोगात्तदा पुत्रा ईश्वरेच्छावशात् पुनः ।
आसीत् क्षुद्रा नदी तत्र सा विवेश गृहं प्रति ॥१६॥
तया प्रवाहितं गेहं मन्दिरं भग्नतां गतम् ।
नद्यास्तलगतं लिङ्गं पाषाणनिर्मितं पुरा ॥१७॥
भक्त्या सुपूजितं नूनं भक्तेनैकेन यत्नतः ।
उद्धारितं पुनर्नव्यं मन्दिरं स्थापितं यदा ॥१८॥
अद्यापि तत्तु प्रथते घुरणीशिवमण्डपम् ।
गौरमोहनलाहिडी सकुटुम्बं ततस्तदा ॥१९॥

में वे घुरणी ग्राम में ही विशेष रूपसे बालुके नीचे आधा शरीर ढककर ध्यान में लगे रहते थे इतना ही ज्ञात है ॥१४॥

इस विषय में कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए, क्यों कि ऐसे लोकोत्तर पुरुषोंका चरित्र भी भावी विशिष्ट कृत्यका सूचक ही होता है। उनके घर में भगवान् शिवका मन्दिर निर्मित था। कालयोग से किसी समय उसी ग्राम से होकर वहने वाली एक छोटी नदी उहाँ उस घर पर घुस आई, शायद ईश्वर की ही यह इच्छा रही होगी। उस छोटी सी ग्रामीण नदी ने घरको भी वहाया साथ ही वह शिवमन्दिर भी टूट गया। उसी बाढ में वह शिवलिङ्ग भी डूब गया। एक भक्त ने विशेष यत्न से उस शिव लिङ्गका उद्धार किया, जिसकी पूजा विशेष भक्ति से की जाती रही, फिर एक नयाँ मन्दिर वनवा कर उस में स्थापित किया गया है ॥१५-१७॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विश्वेश्वरस्य नगरीं वाराणसीं जगाम ह ।
तत्रापि निर्मितं तेन शिवस्य मन्दिरं पुनः ॥२०॥
शिवस्याराधाने नित्यं मतिस्तस्य सदाऽभवत् ।
काश्यां वेदोक्तनियमान् पालयित्वैव लाहिडी ॥२१॥
स्थितवानिति चैतिह्यविदो वदन्ति साम्प्रतम् ।
वेदवेदान्तशास्त्राणां स्वाध्यायविधिपूर्वकम् ॥२२॥
नित्यनैमित्तकर्माणि करोतिस्म यथार्थतः ।
नासीत् पापमयी दृष्टिर्न वा लोभमयी क्वचित् ॥२३॥
कर्तव्यान्येव कर्माणि तेनैव सोऽकरोत्तथा ।
येषां पापमयी दृष्टिर्नष्टा भवति पूर्णतः ॥२४॥

आज भी वह शिवमन्दिर उसी ग्राम में अवस्थित है जिसका नाम 'घुरणी शिवमण्डप' विख्यात है । उसके बाद श्री गौरमोहन लाहिडी अपने कुटुम्ब सहित उक्त ग्रामको छोडकर भगवान् विश्वनाथ की नगरी वाराणसी आए । वाराणसी में भी उन्होंने शिव मन्दिर प्रतिष्ठापित किया ॥१८-१९॥

भगवान् शिवकी उपसाना ही नित्य उनका कर्तव्य था । इस प्रकार विश्वनाथकी नगरी काशी में वे गौरमोहन लाहिडी वेदोक्त नियमोंका पालनपूर्वक रहते थे । ऐसा इतिहास विदोंका कथन है । इसी प्रकार वेदवेदान्त शास्त्रोंका स्वाध्यायपूर्वक नित्य एवं नैमित्तिक कर्मों को करते हुए वे रहते थे । उनकी पापमयी दृष्टि एवं लोभपरक दृष्टि नहीं थी ॥२०-२२॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तथा लोभस्य कर्माणि स महानुच्यते भुवि ।
स लाहिडिमहाभागो न्यायोपार्जितद्रव्यकः ॥२५॥
धर्मे दृढमतिर्भूत्वा स्वकर्मनिरतस्तथा ।
बभौ पुण्यमयो देवः कृतकृत्यो न संशयः ॥२६॥
कुलं तन्निश्चितं प्राहुर् ऋषीणामिव भूयसाम् ।
पवित्रं परमं मुक्तपुरुषैः सेवितं मतम् ॥२७॥
नासीत् प्रतिग्रहस्तत्र गृहीतः केनचित् क्वचित् ।
परान्नं भक्षितं नैव कुलेनानेन युक्तितः ॥२८॥
आसन् लाहिडिनां वंशे सत्यवादरता जनाः ।
व्यसनानि तु चान्यानि नासन् तस्मिन् महाकुले ॥२९॥

वेदका आदेश "कर्म करना ही चाहिए" का पालन करते हुए वे केवल कर्तव्य पालन में तल्लीन थे । जिस किसीको भी पापमयी दृष्टि और लोभमयी दृष्टि पूर्णरूपसे नष्ट हो जाती है वह संसार में महान् हो जाता है । वे श्री लाहिडी महाशय न्यायपूर्वक उपार्जित द्रव्यका ही उपभोग करते थे । साथ ही धर्म में दृढबुद्धि होकर अपने कुल एवं जातिगत कर्मका अभ्यास करते हुए पुण्यात्मा हुए एवं कृतकृत्य हुए इस में संशय नहीं है ॥२३-२५॥

निश्चय ही उनका वह कुल ऋषि कुलों के तरह विशिष्ट था । परमपवित्र था साथ ही मुक्त पुरुषों से सेवित था ॥२६॥

उस कुल ने कभी भी प्रतिग्रह नहीं लिया था । परान्न भक्षण नहीं किया था ॥२७॥

उस लाहिडीवंश में सत्यवादी जन थे । उस महाकुल में किसी भी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कुलमासीद् महत्पुण्ययुक्तं विद्वत्सुसेवितम् ।
ऋषीणामिव सर्वोच्चं कलङ्करहितं तथा ॥३०॥
कुलेस्मिन्नाभवत्तस्मिन् काले दुष्टमति यतः ।
अप्रतिग्राहकाः सर्वे तपस्विनो न संशयः ॥३१॥
नासीदन्यायवार्तापि कुले गौरवगुम्फिते ।
अल्पायुर्नाभवत्तत्र न च निर्धनतां गतः ॥३२॥
बभूवुस्ते ज्ञानयुक्ता निर्भया भाग्यशालिनः ।
लोकाराधनतैवात्र कृत्यमेषां स्थितं पुरः ॥३३॥
स्वार्थमतिनिरुद्धास्ते वेदाशास्त्रपथानुगाः ।
कुर्वन्ति स्म सदा लोककल्याणं बङ्गभूतले ॥३४॥

प्रकार के व्यसन नहीं थे ॥२८॥

वहकुल महान् था, विद्वानोंद्वारा सेवित था, साथ ही सभी प्रकार के कलङ्क से रहित ऋषिकुल के तरह था ॥२९॥

उस समय तक उस महान् कुल में कोई भी दुष्टमतियुक्त व्यक्ति नहीं था। सभी तपस्वी अप्रतिग्राहक थे। इस में संशय नहीं है ॥३०॥

उस कुल में किसी प्रकारका अन्याय नहीं होता था। गौरवयुक्त उस कुल में कोई अल्पायु नहीं हुआ था, कोई दरिद्र भी नहीं था ॥३१॥

वे सभी ज्ञानी, निर्भय, भाग्यशाली,एवं लोकरञ्जन में संलग्न थे। यही उनका कर्तव्य था ॥३२॥

स्वार्थ में निर्लिप्त नहीं थे, वेदशास्त्रानुरूप कर्म में संलग्न होते हुए वे सभी बंगाल में लोककल्याण के पवित्र कर्म में लगे हुए थे ॥३३॥

उस पवित्र, पुण्यमय, ब्राह्मणों के कुल में महान् योगी श्री

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तस्मिन् पुण्यमये रम्ये ब्राह्मणानां कुले तदा ।
लेभे जन्म महायोगी श्यामाचरणलाहिडी ॥३५॥
सुधीः प्राज्ञो महाज्ञानी लोकशास्त्रार्थवित् कविः ।
कृतार्था जननी तेन तथा च पावितं कुलम् ॥३६॥
प्रवाहिता क्रियायोगसरिता भूतले पुनः ।
अध्यात्मपथि ये लोका जिगमिषन्ति यत्नतः ॥३७॥
तेषां कृते महाभागो योगस्य कृतवान् स्थितिम् ।
क्रियायोगमयी गङ्गा यत्र तत्र प्रवाहिता ॥३८॥
तरन्ति मानवाः सर्वे पापपुण्यादिवृत्तितः ।
पापपुण्यमयी-वृत्तिर्लोभमोहादयस्तथा ॥३९॥

श्यामाचरण लाहिडी महाशयका जन्म हुआ ॥३४॥

वे बुद्धिमान्, प्राज्ञ, महाज्ञानी, लोक और शास्त्र के ज्ञाता, विद्वान् थे। इनके जन्म से इनकी माता कृतार्थ हुई, और अपने उसकुलको भी उन्होंने पवित्र किया ॥३५॥

उन्होंने क्रियायोगरूपी गङ्गा फिर इस पृथ्वीपर प्रवाहित की, जो लोग अध्यात्म मार्ग में जाना चाहते हैं उनके लिए यह कार्य इन्होंने ही किया ॥३६॥

उन मुमुक्षुजनों को ध्यान में रखकर इस क्रियायोगरूपी महागङ्गाका यत्र तत्र भूतल में प्रवाह चलाया ॥३७॥

वे सभी मनुष्य संसार सागर से अवस्य ही पार होंगे साथ ही पाप और पुण्य आदि वृत्ति से तथा लोभयुक्त वृत्तिका भी नाश होगा - इस क्रिया के अभ्यासद्वारा, साथ ही इच्छा द्वेष आदि सभी विषयोंका अवश्य ही परित्याग करेंगे, जिन्होने क्रियायोगरूपी गङ्गा में स्नान

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

श्री शिवेन्दु लाहिड़ी अपनी धर्मपत्नी
स्व. श्रीमती वीथिका लाहिड़ी के साथ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इच्छाद्वेषादयो येषां लुप्यन्ते ते तरन्ति च ।
येन स्नातं क्रियायोगगङ्गायां भुवि यत्नतः ॥४०॥
तस्य कृत्यं सुसम्पन्नं नात्र कार्या विचारणा ।
तस्मात् क्रियैव सततं मुमुक्षुभिः प्रसेव्यताम् ॥४१॥
क्रियायोगात् परं रम्यं नास्ति भूमितले क्वचित् ।
तस्मात् क्रियैव सततं प्रसेव्यतां प्रसेव्यताम् ॥४२॥

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे द्वितीयोऽध्यायः॥

किया है प्रयत्नपूर्वक, इस जगत् में ॥३८-३९॥

उन व्यक्तियोंका समग्र कृत्य समाप्त हो जाता है जिन्होंने क्रियायोगका सतत अभ्यास किया हो या करेंगे। इसी लिए क्रियायोगका अभ्यास निरन्तर मुमुक्षुओंद्वारा किया जाना चाहिए ॥४०॥

क्रियायोग से महनीय पवित्र योग संसार में कहीं भी नहीं है। इसी लिए सभी मुमुक्षुओं को चाहिए की वे निरन्तर क्रियाका अभ्यास करें । अभ्यास करें ॥४१-४२॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ तृतीयोऽध्यायः

कथं लब्धः क्रियायोगस्तेन पुण्यात्मना कदा ।
कस्मिन् स्थाने किमर्थं वा ज्ञातुमिच्छामः ते मुखात् ॥१॥
ज्ञानं यथा यथा प्राप्तं तेन सर्वं यदा भुवि ।
याथार्थ्येनैव तत् सर्वं वच्मि शृणुत सत्वरम् ॥२॥
विचित्रा वर्तते लीला तस्यैव परमात्मनः ।
इच्छयैव जगत्सर्वं यस्य सञ्जायते तथा ॥३॥
पाल्यते नाश्यते सर्वं सर्वदैव न संशयः ।
नूनं सञ्चिन्त्यते येन कल्याणं प्राणिनां सदा ॥४॥

अध्याय-३

शिष्यों ने प्रश्न किया, हे गुरुदेव ! श्री लाहिडी महाशय ने किस प्रकार क्रियायोग प्राप्त किया, किस स्थान में और कब, वे सभी विषय हमलोग आप के श्रीमुख से सुनना चाहते हैं ॥१॥

श्री शिवेन्दुलाहिडी कहते हैं – श्री लाहिडी महाशय ने जिस प्रकार इस पवित्र पद्धति और ज्ञानको प्राप्त किया यथार्थ रूप में मैं वता रहा हूँ सावधान होकर सुनें ॥२॥

उस परमात्मा की लीला भी विचित्र ही है। जिकी इच्छा मात्र से यह समग्र जगत् उत्पन्न एवं विनष्ट हुआ करता है। जगत्का पालन, उत्पादन एवं संहार कर्ता भगवान् ही हैं, जिनके द्वारा समग्र प्राणियोंका कल्याण संभव होता है ॥३-४॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्व-स्वरूपे ह्यवस्थानमात्रं कल्याणमुच्यते ।
स्वरूपावस्थितिर्यत्र यस्यापि जायते ध्रुवम् ॥५॥
स कल्याणपथे नूनं प्रतिष्ठितः प्रजायते ।
योगं विना भवेन्नैव स्वस्वरूपावबोधनम् ॥६॥
तस्मादेवात्र योगस्य प्रचारमुखतः स्वयम् ।
महावतारपुरुषो ददौ लाहिडिशिष्यकम् ॥७॥
योगमित्येव कल्याणं लोकस्य संभविष्यति ।
यथा वा लाहिडी योगं स्वगुरोः प्राप्तवान् पुरा ॥८॥
कथां ब्रवीमि तां पूर्वां सर्वजनमनोहराम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण योगे रुचिः प्रजायते ॥९॥

अपने स्वस्वरूप (आत्मस्थिति) में अवस्थिति ही यहाँ 'कल्याण' शब्द से अभिप्रेत है। जिसकी आत्मस्थिति प्राप्त हो जाती है उसी का सर्वविध कल्याण संभव हो जाता है। वही अपने वास्तविक कल्याण के मार्ग में अग्रसर हो जाता है। साथ ही योग के विना स्वस्वरूप ज्ञान या आत्मस्थिति संभव नहीं है ॥५-६॥

इसी लिए योग प्रचार के माध्यमद्वारा श्री महावतार बाबा जी महाराज ने श्री लाहिडी महाशयको शिष्य बनाकर इस क्रिया योगका लौकिक जनों के कल्याणार्थ संसारको प्रदान किया। जिस प्रकार श्री लाहिडी महाशयने अपने गुरु से इस पवित्र योग प्राप्त किया, वह कथा अत्यन्त रमणीय है, जिसके श्रवण मात्र से योग में रुचि उत्पन्न हो जायेगी ॥७-९॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पात्रता जन्यते तस्मात् ततो योगमवाप्यते ।
तेनैव तत्कथां रम्यां पुरातनीं यथार्थतः ॥१०॥
युष्माकं पुरतो वच्मि सर्वपापहरां शुभाम् ।
वैक्रमाब्दस्य शतके पञ्चाशीत्युत्तरे तथा ॥११॥
अष्टादशे तमे वर्षे ह्याविर्बभूव लाहिडी ।
पुण्यभूमौ भारतेऽस्मिन् समागते महामुनौ ॥१२॥
मुमुक्षूणां महान् मार्ग उद्घाटितस्तदा ध्रुवम् ।
श्रीलाहिडिसदृग्योगी जनानां पुण्यकर्मणाम् ॥१३॥
कल्याणाय समायाति प्रायशो भुवि दुर्लभः ।
योगिनां समवेतानां लोकदुःखापहारिणाम् ॥१४॥

उस के श्रवण मात्र से रुचि उत्पन्न होगी, उसके बाद योग विद्या की प्राप्ति होगी इसी लिए उक्त रमणीय कथा जो अति प्राचीन है आप लोग श्रद्धासे सुनिए ॥१०॥

वह कथा अतिशुभ एवं सभी पापोंको हरण करनेवाली है । यह घटना जब घटी थी तव विक्रम संवत् की १९ वीं शताब्दी थी । १८८५ वैक्रमाब्द (इ.सन्·१८२८) में श्री लाहिडी महाशयका आविर्भाव हुआ था । इसी पूण्यभूमि भारत में जब उनका जन्म हुआ अवस्य ही मुमुक्षु जनों लिए एक विशिष्ट क्रियायोगरूपी महामार्ग उद्घाटित हुआ ॥१२॥

श्री लाहिडी महाशय जैसे योगिराज पुण्यात्मा जनों के कल्याण के लिए ही संसार में आया करते हैं। प्रायः ऐसी घटना अत्यन्त दुर्लभ ही होती है । लौकिकजनों के दुःखोंके नाशक ऐसे योगिजनोंका जिसकुल

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यस्मिन् कुले भवेज्जन्म तत्कुलं च सुदुर्लभम् ।
शुचीनां भवति गेहे श्रीमतां च तथाविधम् ॥१५॥
धीमतां योगिनामेव भवति जन्म योगिनाम् ।
तेषां नु योगभ्रष्टाणां जन्मनि ननु प्राक्तने ॥१६॥
विख्याते जायते जन्म कुले धर्ममये शुभे ।
एवमेव क्रमे तातगौरमोहनलाहिडि-
वंशे तस्यैव पुत्रोऽयं श्री श्यामाचरणोऽभवत् ॥१७॥
मन्यते दुर्लभं चैवं जन्म लोके न संशयः ।
तेन भूयः स्मराम्यत्र श्रीलाहिडिमहाशयम् ॥१८॥

में जन्म होता है ऐसा कुल भी अत्यन्त दुलर्भ ही होता है। ऐसे महान् लोगोंका जन्म पवित्र, श्रीमान्, ऐश्वर्यशाली, विद्वान्, बुद्धिमान् और पुण्यात्माओं के कुल में ही प्रायः देखा जाता है। वे सभी प्रायः योग भ्रष्ट विगत जन्मों से होते हैं इसी लिए अपने साधनाको पूरा करने के लिए आया करते हैं। वे विख्यात योग भ्रष्ट लोगोंका जन्म विख्यात कुलों में होता है जहाँ धर्म प्रतिष्ठित होता है। इसी क्रम में पिता गौर मोहन के कुल में उन्हीं के पुत्र के रूप में श्री लाहिडी श्यामाचरणका जन्म हुआ ॥१३-१७॥

इस प्रकार के लोगोंका जन्म भी अत्यन्त दुर्लभ ही होता है। अत एव श्री लाहिडी महाशय को मैं फिर बारम्बार स्मरण करता हूँ। जिनकी कृपाकटाक्ष के कारण इस समय मानव समूह, पूरे संसार

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यस्य कृपा-कटाक्षेण साम्प्रतं भुमि मानवाः ।
भूयांसः सन्ति योगस्य साधनायां रता यतः ॥१९॥
आत्मज्ञानस्य सन्मार्गे धावन्तः सन्ति यत्नतः ।
सहयोगाय तान् मार्गे तस्मिन् कुले पुरातने ॥२०॥
अयं जनः समायातो योगं गृह्णन्तु सादरम् ।
विना योगं भवेन्नैव कल्याणं कस्यचित् क्वचित् ॥२१॥
योगेन जायते स्वस्य साक्षात्कारो न संशयः ।
आत्मसाक्षात्कृतिर्नूनं दुःखं नाशयति ध्रुवम् ॥२२॥
तेनैव योगमार्गोऽयम् उपदिष्टः पुरातनः ।
येषां मतिर्भवेद्धर्मे बुद्धिर्येषां तथात्मनि ॥२३॥

में बहुत लोग क्रियायोगके साधना में लगे हुए हैं। जिससे निश्चय भी वे सब आत्माज्ञान के कठिन मार्ग पर चल पडे हैं। उन्हीं सबों के सहयोगार्थ श्री लाहिडी महाशय इस कुल में अवतरित हुए थे। उक्त योगको आदर पूर्वक सभीलोगों को ग्रहण करना चाहिए। क्यों कि विना योग कल्याण कभी भी संभव नही है ॥१८-२१॥

निश्चय ही क्रियायोगद्वारा आत्मसाक्षात्कार होगा, वही आत्मसाक्षात्कार ही समग्र दुःखोंका नाश करता है ॥२२॥

इसी प्रयोजनार्थ इस पुरातन योगमार्गका उपदेश किया गया है। जिनलोगों की बुद्धि धर्म में लगी है, तथा जिनकी बुद्धि आत्मविद्या में रत है उन सभीलोगों के लिए इस क्रियायोगका उपदेश किया गया है, इसी योगमार्ग के आलम्बनद्वारा बहुत से लोग ज्ञान प्राप्तकर

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सर्वेषां ननु वै तेषां क्रियायोगोऽयमुच्यते ।
अस्यैव योगमार्गस्य समाश्रयवशात् पुरा ॥२४॥
बहवो ज्ञानमासाद्य ह्यमुच्यन्त यथार्थतः ।
धर्मे दृढा मतिर्येषां बुद्धिश्चात्मनि संस्थिताः ॥२५॥
तेषां कृते कृतश्चैव योगमार्गः पुरातनः ।
स्वात्मनि स्थितिरत्रैव येषां लोके प्रजायते ॥२६॥
ते मुच्यन्ते लोकदुःखात् नात्र कार्या विचारणा ।
स्वात्मानि स्थितिः संप्रोक्ता कूटस्थस्थितिः सूरिभिः ॥२७॥
तेन कूटस्थवृत्यैव मुच्यन्ते सर्वजन्तवः ।
जन्म दुःखं जरादुःखं मृत्युर्दुःखं पुरःस्थितम् ॥२८॥
दुःखमेवात्र लोकेषु तेनैव योग उच्यते ।

निश्चय ही जन्ममृत्यु के चक्र से मुक्त होकर चले गए। धर्म में और आत्म विद्या में जिन लोगोंकी बुद्धि दृढ है उन्हीं लोगोंकी स्थिति आत्मा में हो जाती है वे ही इस दुःखमय संसार से मुक्त होकर चले जाते हैं, इस विषय में कोई भी सन्देह नहीं है । आत्मस्थिति ही कूटस्थवृत्ति है ऐसा विद्वानों का कथन है । कूटस्थ-वृत्ति अवस्थितिद्वारा ही लोग मुक्त होते हैं। जन्म भी दुःख है, जराभी दुःख है, मुत्युभी दुःख है। सभीलोगों के सामने दुःख ही दुःख अवस्थित है। इसीलिए योग विद्याका उपदेश किया गया है। जो लोग क्रियायोग के अभ्यास में प्रयत्नपूर्वक लगे हैं निश्चय ही उनका दुःख नष्ट हो जाता है ॥२३-२९॥

जब दुःख नष्ट हो जाते है कर्तव्य भी अवशिष्ट नहीं रहते हैं ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

क्रियायोगे तु ये लग्नाः तेषां दुःखं व्यपोहितम् ॥२९॥
नष्टेषु खलु दुःखेषु कर्तव्यं नावशिष्यते ।
अविद्या ननु सर्वस्य दुःखस्य कारणं मता ॥३०॥
अविद्यायां च नष्टायां सर्वं दुःखं विलुप्यते ।
तदा दुःखस्य नाशाय योगश्चाश्रियते सदा ॥३१॥
क्रियायोगात्परं किञ्चिन् न विद्यते न विद्यते ।
तस्माच् चैकाग्रचित्तेन सावधानतयाऽधुना ॥३२॥
शृण्वन्तु क्रमशो मत्तः क्रियोयोगस्य चित्रताम् ।
क्रियायोगात् परं रम्यं नास्ति भूमितले क्वचित् ॥३३॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे तृतीयोऽध्यायः ॥

सभीदुःखोंका मूल कारण अविद्या (अज्ञान) ही है। जब विद्या (ज्ञान) द्वारा अविद्या (अज्ञान) नष्ट हो जाती है तब सभी दुःख नष्ट हो जाते हैं। इसी लिए दुःखनाश के लिए योगका आश्रय किया जाता है ॥३०-३१॥

क्रियायोग से महत्वपूर्ण अन्य कुछ भी नहीं है। कुछ भी नहीं है। अत एव एकाग्रमन से सावधान होकर मुझ से क्रियायोग के विचित्र स्थिति के विषय में सभीलोगों को सुनना चाहिए। क्रियायोग से रमणीय महत्वपूर्ण विद्या भूमिपर इस समय कुछ भी ज्ञात नहीं है। नहीं है ॥३२-३३॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ चतुर्थोऽध्यायः

रहस्यभरितं शास्त्रं क्रियायोगस्य वर्तते ।
शृण्वन्तु सावधानेन याथार्थ्येन ब्रवीम्यहम् ॥१॥
सर्वादौ लाहिडिदेवः कथं बाबामहाशयैः ।
साकं मिलितवान् आदौ संक्षेपाद् वच्मि साम्प्रतम् ॥२॥
आसीत् पुण्यमयः कालः प्रकृत्यैव विनिर्मितः ।
तस्मिन्नेव महत्पुण्यमये काले पुराऽभवत् ॥३॥
अवतारो लाहिडिनां बङ्गभूमौ विलोक्यते ।
न केनापि ज्ञातचरो योगी चैष भविष्यति ॥४॥

अध्याय-४

श्री शिवेन्दु लाहिडी कहते हैं - क्रियायोग शास्त्र एवं पद्धति अत्यन्त रहस्य से परिपूरित है । इसे यथार्थ बोधके लिए सावधानी पूर्वक आप सबलोग सुनें ॥१॥

यहाँ सबसे पहले श्री लाहिडी महाशय कैसे श्री महावतार बाबाजी से मिले इस विषयको संक्षेप में वतला रहा हूँ ॥२॥

वह अति विशिष्ट पुण्यमय काल था मानो प्रकृति द्वारा ही सुनिर्मित, उसी विशिष्ट समय में बङ्गाल भूमि में श्रीलाहिडी महाशयका आविर्भाव हुआ । और किसी को भी यह ज्ञात नहीं था कि वे इतने बडे योगी होंगे ॥३-४॥

परन्तु लोककल्याण करने के लिए परमात्माता ने जब श्री

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

किन्तु लोकस्य कल्याणं कर्तुमीशेन चिन्तितम् ।
को वा लोके भवेत्तस्य चेच्छां वारयितुं क्षमः ॥५॥
यस्य माध्यमतो येन क्रियायोगस्य निर्झरः ।
प्रवाहितो भूमितले स तु बाबामहाशयः ॥६॥
कोऽयं बाबामहाभाग इति लोकमतिर्भवेत् ।
उच्यते पितृपादेभ्यो यथाश्रुतं मयाऽधुना ॥७॥
लोककल्याणभावेन भगवान् करुणापतिः ।
जगन्नाथस्तु कृपया योजयामास तान् मुनीन् ॥८॥
काले काले स वै पुंसामद्वैतमार्गगामिनाम् ।
विरक्तानां साधकानां सहाय्यं कुरुते मुदा ॥९॥

लाहिडी महाशयको चुना तो उसकी इच्छा को कौन रोक सकता है ॥५॥

जिसके माध्यम से इस क्रिया योगरूपी झरनेका प्रवाह किया गया है वे हैं आधुनिक इस युगके महावतार पुरुष बाबा जी महाराज ॥६॥

वे बाबा जी महाराज कौन हैं इस में संसारिक लोगोंकी जिज्ञासा हो सकती है । पिता योगिराज श्री सत्यचरणजी से मैंने जैसा सुना वैसा आप सबलोग सुनें ॥७॥

लोककल्याणकी कामना से करुणा के सागर भगवान् जगन्नाथ ने उन महापुरुष को इस संसार में अवतरित किया । वे ही समय समय मे अद्वैत तत्त्व के जिज्ञासु लोगोंका मार्ग दर्शन करते हैं । जो विरक्त हैं अथवा सच्चे साधक हैं ॥८-९॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तस्यैव सहयोगेन भगवत्पादसंज्ञकः ।
गोविन्दपादशिष्योऽभूद् अद्वैतमार्गदर्शकः ॥१०॥
श्रीकवीरमहाभागः सत्यं सन्मार्गदर्शकः ।
श्रीबाबाजीकृपां प्राप्य ज्ञानं स प्राप्तवान् पुरा ॥११॥
एवमन्येऽपि वै लोके महात्माजस्तु सन्निधिम् ।
प्राप्त्यैव पारमगमन् संसारसागरं ध्रुवम् ॥१२॥
लाहिडिसदृशाश्चान्ये बहवः सन्ति भूतले ।
येषां कृपाकटाक्षेण तरन्ति सागरं ध्रुवम् ॥१३॥
बन्धनानि बहून्यत्र सन्ति लोकेषु निश्चितम् ।
आगतानि चाहङ्कारान् नास्ति कश्चन संशयः ॥१४॥

उन्हीकी कृपा एवं सहयोग से भगवत्पाद, जो अद्वैत सिद्धान्त के प्रचारक थे, ने भी अपना जीवन धन्य किया जो गोविन्दपाद के शिष्य थे (जिन्हे हम आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य के नाम से जानते हैं) ॥१०॥

इसी प्रकार श्री कबीर महाशयने भी श्री बाबाजी की कृपा से ही ज्ञान प्राप्त किया था ॥११॥

इसी प्रकार बहुत से अन्य साधकों ने भी उनकी कृपा पाकर इस संसार सागर को पार किया और मुक्ति के मार्ग में चले गये । श्री लाहिडी महाशय के तरह अनेक अन्य लोग भी इस पृथ्वी पर हैं जिनकी कृपा कटाक्ष पाकर इस संसार सागरको पार करेंगे ॥१२-१३॥

इस संसार में अनेक बन्धन हैं इस में कोई भी सन्देह नहीं है । और वे बन्धन अहङ्ककार से ही आए हैं । इसी अहङ्कार से मुक्ति

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अहङ्काराच्च वै मुक्तिः क्रियायोगात् प्रजायते ।
लुप्ते नूनमहङ्कारे कर्तव्यं नावशिष्यते ॥१५॥
सूक्ष्मोऽहङ्कारो लोकानां चित्तेषु वर्तते सदा ।
मूलोच्छेदाय वै तस्य क्रियायोगं ददौ पुरा ॥१६॥
हिमालयप्रदेशेषु राज्ञीक्षेत्रं यशस्करम् ।
गुहासरिन्नदीवनैर्युक्तमद्यापि वर्तते ॥१७॥
काष्ठभाण्डागारान्नातिदूरं तद् विद्यते महत् ।
पुण्यक्षेत्रं तीर्थक्षेत्रं यतः क्रिया प्रवाहिता ॥१८॥
क्रियायाः सकलं रम्यं वस्तुतत्त्वं यथार्थतः ।
वक्ष्यामि किन्तु सर्वादौ कथेयं सम्प्रधार्यताम् ॥१९॥

क्रियायोग से अवश्य ही होगी। जब अहङ्कार समाप्त हो जाएगा कोई भी कर्तव्य शेष नहीं रह जागता है ॥१४-१५॥

स्थूल अहङ्कार विवेचन से भले ही दूर हो सकता है किन्तु सूक्ष्म अहङ्कार सभी लोगों के चित्त मे रहता ही है, उसके मूल सहित उच्छेद के लिए क्रियायोग उन्होंने संसार को प्रदान किया ॥१६॥

भारत वर्ष के हिमालय क्षेत्र में 'रानीखेत' नामक अत्यन्त यशस्कर रमणीय प्रदेश है जहाँ गुफाऐं, नदीयां, वन, झरने पवर्तखण्ड आदि सुशोभित हैं ॥१७॥

काठ गोदाम से थोडी दूर पर ही वह स्थान अवस्थित है, जो परमपुण्यक्षेत्र, तीर्थक्षेत्र है जहाँ से क्रिया योग-गङ्गा प्रवाहित हुई है ॥१८॥

क्रियायोगका समग्र रहस्य में वताउँगा, किन्तु इस समय इस

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हिमालये राज्ञीक्षेत्रे श्रीबाबाजीमहाशयः ।
प्रथमं दर्शनं यत्र प्रददौ तन्निबोधत ॥२०॥
वर्षे चैकादशे तावत् त्रिगुणिते महत्तमे ।
आयुषि स्वस्य लाहिडी प्राप्तवान् स्वगुरुं पुनः ॥२१॥
वैक्रमाब्दस्य शरदि काले सप्तदशाधिके ।
एकोनविंशशतके सा रम्या घटनाऽभवत् ॥२२॥
श्री लाहिडिमहाभागः स्वयं प्रोवाच शिष्यकान् ।
पुत्राँश्चापि च तत् सर्वं तन्मुखात् श्रावयाम्यहम् ॥२३॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे चतुर्थोऽध्यायः ॥

रमणीय कथाको आप सुनें ॥१९॥

उस हिमालयीय भूमि रानीखेत में श्री लाहिडीमहाशयको कैसे उन्होंने दर्शन दिया उसे आप जान लें ॥२०॥

अपने जीवन के ३३ वें वर्ष में श्री लाहिडी महाशयने अपने गुरु बाबाजी को पुनः प्राप्त किया ॥२१॥

विक्रम संवत् के १९१७, में वह रमणीय घटना घटी । यह स्वयं श्री लाहिडी महाशयने अपने शिष्यों तथा पुत्रों को कहा था जिसे मैं उनके मुखारविन्द से ही आप सभी लोगों को सुना रहा हूँ ॥२२-२३॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ पञ्चमोऽध्याय:

स्वकीये विषये पूर्वं शिष्यान् पुत्राँश्च लाहिडी ।
यथाह किल तत्सर्वं तन्मुखादेव श्रूयताम् ॥१॥
अभियन्त्रविभागस्य संगणकस्तदाऽभवम् ।
भारतीयसैनिकानां कार्यालये न संशय: ॥२॥
दानापुरं नाम रम्यं पत्तनं तत्र राजते ।
उत्तरे भारते यत्र कार्यक्षेत्रं ममाऽभवत् ॥३॥
पूर्वाह्ने चैकदा मुख्यो नियोजकस्तु प्राह माम् ।
गौराङ्गानां देशवासी भो लाहिडिन् ! प्रयाहीति ॥४॥

अध्याय-५

अपने विषय में श्री लाहिडी महाशयने शिष्यों तथा पुत्रोंको जैसा बताया वह रमणीय कथा उन्हीं के श्रीमुख से आप सबलोग सुनें ॥१॥

श्री लाहिडी महाशयने कहा -

भारतीय सैनिकों के इन्जिनियर विभाग में मैं उस समय संगणक पद में कार्यरत था। उत्तर भारत में दानापुर नामक अतिरमणीय नगर है उसी में मेरा कार्य क्षेत्र था ॥२-३॥

एकदिन पूर्वाह्न में मेरा नियोजक अधिकारी, जो एक अंग्रेज था, ने, मुझे अपने कक्ष में बुलवा लिया और मेरे वहाँ उपस्थित होने पर कहा ओ ! लाहिडी ! अभी-अभी हमारे मुख्य विभागीय कार्यालय से एक तार सन्देश आया है। उसके अनुसार आपका स्थानान्तर हुआ है। और

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

गते मयि तत्र तदा सोऽब्रवीन्मां यथार्थतः ।
मुख्यकार्यालयाच्चैकं सन्देशं प्राप्तवान् अहम् ॥५॥
तन्त्रीसन्देशतो ज्ञातं स्थानान्तरं तवाऽधुना ।
राज्ञीक्षेत्रेऽस्ति गन्तव्यं त्वरितं साम्प्रतम् त्वया ॥६॥
यत्र निर्मीयते चैकं सैनिकं धाम निश्चितम् ।
तदर्थमेव ते नूनं गमनं सम्प्रजायते ॥७॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा चाज्ञां प्राप्यैव पुत्रकाः ।
एकं सेवकमादाय दानापुरात्तु निगर्तः ॥८॥
त्रिंशद्दिनेषु वै राज्ञीक्षेत्रं सम्प्राप्तवान् अहम् ।
मम कार्यालये कर्म नासीत्तदाऽधिकं यतः ॥९॥

अब शीघ्र ही रानीखेत जाना होगा । जहाँ अब एक सैनिक मुख्यालय निर्मित किया जा रहा है । उसी काम के लिए आपका वहाँ जना विभाग ने तय किया है ॥४-७॥

इस प्रकार अपने उच्च अधिकारीका आदेश एवं उनकी आज्ञानुसार में उस रमणीय दानापुर नगर से रानीखेत जाने के लिए एक सहयोगी सेवक को लेकर चल दिया । इस प्रकार मैं ३० वें दिन अपने गन्तव्य रानीखेत पहुँच गया । मेरे उस नवीन कार्यालय में कोई ज्यादा काम नहीं रहता था इसी लिए भव्य पुरोवर्ती हिमालय की शोभा और वन पर्वत नदीयोंको देखने की मेरी महती इच्छा जागृत हुई और में नियमित रूपसे प्रतिदिन भ्रमण में निकलने लगा, जो अतिरमणीय विशिष्ट स्थान थे । और मैंने यह भी सुन रखा था कि उस पर्वत

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भव्यहिमालयान् चान्यान् सरिंतश्च विशेषतः ।
अभ्रमं प्रत्यहं रम्यस्थानानि बहुधा पुनः ॥१०॥
श्रुतमासीन्मया तत्र सिद्धाः तपस्विनस्तथा ।
साधवः सज्जना नूनं गुहासु च वसन्तीति ॥११॥
प्राप्नुयां दर्शनं तेषां पुण्यशीलवतां क्वचित् ।
इति सञ्चित्य मनसि व्यग्रश्चासं न संशयः ॥१२॥
अस्मिन्नेव क्रमे तात चैकस्मिन् दिवसे शुभे ।
तीव्रेच्छा मनसि गन्तुं वनानि चाभवत्तदा ॥१३॥
दिवसस्यान्तिमे भागे ह्यगमं पर्वतान् तदा ।
आश्चर्यं महदाश्चर्यं मामाह्वयति कश्चन ॥१४॥

खण्ड में सिद्ध, तपस्वी, साधु, सज्जन लोग गुफोओं में रहते हैं और वे आदरणीय एवं दर्शनी हैं । हो सकता है कदाचित् उनका दर्शन मुझे भी मिल सकता है ऐसा विचार कर मैं व्यग्र होकर इधर उधर निरन्तर घूमने लगा ॥८-१२॥

इसी क्रम में एकदिन, जो शायद अतिशय शुभ दिन था, मेरे मन सें पहाड एवं जङ्गल की ओर जानेकी तीव्र इच्छा जागृत हुई ॥१३॥

दिनके अपरान्ह में पहाड के तरफ चल दिया । उस में, उससमय मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ कोई मुझे पुकार रहा हैं। वार म्वार मेरा नाम लेकर दूरसे मुझे बुला रहा हैं । यह सुनकर क्रमशः मैं यत्नपूर्वक पर्वत पर चढता ही चला गया और उनके पास पहूँच गया । वह अतिसुन्दर द्रोणगिरि नामक पर्वत खण्ड था ॥१४-१६॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

साम्रेडं मदीयं नाम गृहीत्वैव स दूरतः ।

आकारयामास नूनं तच्छ्रुत्वा क्रमशस्ततः ॥१५॥

आरुह्य पर्वतान् यत्नाद् अगमं तस्य सन्निधिम् ।

आसीद्द्रोणागिरिर्नाम पर्वतखण्डः सुन्दरः ॥१६॥

चिन्तातुरोऽभवं तत्र ह्यारोहणक्रमे यतः ।

कालस्तु गच्छति शीघ्रं पुनः प्रत्यागमः कथम् ॥१७॥

किन्तु तत्तेजषाकृष्टः समभूमिमवाप्तवान् ।

भूमिं परितो यत्रासन् रम्या गुहा अनेकशः ॥१८॥

तत्रासीत् पर्वते खण्डे किञ्चिदुच्चैः स्थितो युवा ।

स्मयमानः स्वागतार्थं दृष्टपूर्व इव क्वचित् ॥१९॥

जब मैं उस पर्वत पर चढ रहा था उस समय मैं कुछ चिन्तित भी हुआ था कि समय अब ज्यादा नहीं है कैसे मैं फिर लौट पाउंगा । किन्तु उन स्वामी के तेजसे आकर्षिक होकर चढता ही चला गया अन्ततः समतल भूमिपर मैं पहुँच ही गया । उस स्थानपर अनेक गुफाएँ स्पष्ट रूपसे दिखाई दे रही थीं ॥१७-१८॥

वहाँ पर एक कुछ उँचे पत्थर पर वे वैठे थे, और वे युवा दिखते थे । थोडा मुस्कराहट के साथ मेरा स्वागत कर रहे थे । प्रसन्न थे, स्वस्थ एवं अपने दोनों हाथों को फैलाकर मेरा स्वागत किया । उनके केश तार्मवर्णी, और आकृति मेरी जैसी ही थी ॥१९-२०॥

मेरे समान आकृति को देखकर मुझे कुछ आश्चर्य अवश्य ही

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रसन्नवदनः स्वस्थो बाहुप्रसारितस्तदा ।
तार्मवर्ण-केशयुक्तो ममाकृतिसमो हि सः ॥२०॥
समानामाकृतिं दृष्ट्वा मदीया चकिता मतिः ।
आसीत्तदैव प्रोवाच हिन्दीगिरैव मां तदा ॥२१॥
लाहिडिन् त्वं समायातो मयैवाकारितोऽधुना ।
लघ्वी गुहाऽभवत्तत्र स्वच्छा नेदीयसी किल ॥२२॥
प्राविशं तत्र ह्याश्चर्यं कम्बलानि बहून्यहो ।
बहूनि जलपात्राणि चापश्यं तस्य सन्निधौ ॥२३॥
कोणस्थं ह्यासनं तेन तर्जन्या दर्शितं तदा ।
त्वं किं लाहिडिन् जानासि ह्यासनं पुरतः स्थितम् ॥२४॥

हुआ था । उसी समय उन्होंने हिन्दी में बोलना शुरु किया ॥२१॥

"ओ लाहिडी तुम आ गए !! मैंने ही तुम्हे बुलाया था" । वहीं समीप में ही एक छोटी सी गुफा थी । आश्चर्य यह था कि वहाँ पर बहुत से कम्बल थे । साथ ही अनेक जलपात्र भी रखे थे ॥२२-२३॥

कोने पर स्थित एक कम्बलासनको उन्होंने दिखाया और मुझे पूछा क्या लाहिडी ! तुम उस आसनको जानते हो ? ॥२४॥

इस प्रश्न के बाद मैं नहीं जानता ऐसा कहा साथ ही भयभीत होकर उनसे लौटने की आज्ञा चाही और कहा मैं अभी जाना चाहता हूँ । क्यों कि सन्ध्या होने जो रही है । कल सुबह कार्यालय में भी मेरा काम है । मेरी प्रार्थना सुनकर उक्त योगी ने मुझे अंग्रेजी में गूढ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इति प्रश्ने न वेद्मीति कथयित्वैव तत्क्षणात् ।
भयविह्वलचित्तोऽहं ह्यप्रार्थयं तदन्तिकम् ॥२५॥
इदानीं गन्तुमिच्छामि सन्ध्याकालः प्रजायते ।
प्रातः कालेऽस्ति मे कार्यं कार्यालये न संशयः ॥२६॥
इति मे वाक्यमाकर्ण्य स्मयन् योगी उवाच माम् ।
आङ्ग्लवाच्यैव तत्कालं गूढवाक्यमिदं तदा ॥२७॥
न त्वं कार्यालयकृते ह्यानितः किन्तु त्वत्कृते ।
कार्यालय इहानीतो जानीहि पुत्र साम्प्रतम् ॥२८॥
अहं तद्वाक्यमाकर्ण्य चकितश्चकितस्तथा ।
एष आरण्यकः स्वामी ह्याङ्ग्लं वेत्ति यथार्थतः ॥२९॥

रहस्य से युक्त यह वात कही ॥२५-२७॥

"ओ मेरे पुत्र ! तुम कार्यालय के लिए यहाँ नहीं लाए गये हो किन्तु कार्यालय तुम्हारे लिए यहाँ लाया गया है", यह वात तुम्हे जानलेना चाहिए ॥२८॥

उनकी यह वात सुनकर मैं आश्चर्य चकित हो गया । वे जङ्गल में रहने वाले स्वामी जी अंग्रेजी बोलते हैं !! अंग्रेजी जानते हैं !! और गूढ रहस्य से युक्त वाक्य बोल रहे हैं इस प्रकार मैं कुछ चिन्तित था । उसी समय उन योगी महाराज ने कहा "लगता है मेरे तारका प्रभाव हुआ है" । उनके इस वाक्यका अर्थ न जानते हुए जब मैंने उन्हें इसका

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

गूढरहस्यसंश्लिष्टं वाक्यमुवाच मामिह ।
इति चिन्तातुरश्चासं तदैवाह स योगिराट् ॥३०॥
मम तन्त्र्या प्रभावस्तु जात इत्यवधार्यताम् ।
इमं भावमविज्ञाय ह्यपृच्छञ्च तदाशयम् ॥३१॥
स्मयमानस्तदा प्राह गूढरहस्यसन्निभम् ।
तत्सर्वं श्रूयतां सर्वैः सावधानतयाऽधुना ॥३२॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे पञ्चमोऽध्यायः ॥

आशय पूछा तव उन्होंने गूढ रहस्य से युक्त वात मुसकुराते हुए कहा। वह सब मैं वतारहा हूँ सावधान होकर आपसब लोग सुनें ॥२९-३२॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ षष्ठोऽध्यायः

महामायाप्रभावेण स्मृतिर्नष्टास्ति तेऽधुना ।
किं वा ह्यावरणात्तस्या न त्वं वेत्सि यथार्थतः ॥१॥
इत्थं चोक्त्वा महाभागः सन्यासी मस्तकोपरि ।
हस्तं संस्थापयामास श्रीश्यामाचरणस्य तु ॥२॥
तस्य हस्तस्य स्पर्शेन वृत्तं जन्मान्तरस्य हि ।
ज्ञातवान् सकलं वृत्तं तत्क्षणादेव लाहिडी ॥३॥
तथा प्राह स्वयं स्वामी त्वमेव पूर्वजन्मनि ।
इहैवासः तपस्यायां रत इत्यवधारय ॥४॥

अध्याय-६

श्री महावतार बाबाजी ने कहा - हे लाहिडी ! महामाया भगवती के प्रभावद्वारा इस समय तुम्हारी स्मृति नष्ट हो गई । अथवा अज्ञान या माया के आवरणद्वारा ढकी होने के कारण तुम यथार्थ रूपसे कुछ भी नहीं जानते हो ॥१॥

ऐसा कहकर श्री बाबाजी महाशयने (श्री लाहिडी के) अपने मस्तक के उपर अपना वरद हस्त से हलका सा स्पर्श किया । उनके हाथ के स्पर्श मात्र से श्री लाहिडी महाशयने पूर्व जन्मका सारा वृतान्त यथार्थ रूपसे जान लिया । उसके बाद श्री बाबाजी महार ाजने स्वयं कहा लाहिडी ! 'तुम ही पूर्व जन्म में इस स्थान पर तपस्या

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

व्याघ्रचर्म तदेवास्ति ह्यद्यावधि सुरक्षितम् ।
जलपात्रं तु जानीहि पूर्वतनं हि सुन्दरम् ॥५॥
सर्वाण्यपि पूर्वतनवस्तूनि सन्ति पुत्रक ! ।
यत्नान्मया रक्षितानि त्वदर्थे विद्धि साम्प्रतम् ॥६॥
साधनायामिहैवास्मिन्स्थान एव पुरातनम् ।
जीवनं यापितं तस्मात्पुनर्वङ्गेषु ते जनिः ॥७॥
अभवत् त्वं पुनर्यात इह ममेच्छयाऽधुना ।
दृष्टिस्त्वयि तदारभ्य ममास्ति सार्वकालिकी ॥८॥
जन्मनस्ते परं सर्वकाले तवैव रक्षणे ।
छायेव व्यापृतश्चास्मि पुत्र त्वं चिन्तय स्वयम् ॥९॥

में रत थे' यह तुम्हे जान लेना चाहिए ॥२-४॥

देखो लाहिडी ! तुम्हारा व्याघ्रचर्म आजतक सुरक्षित रखा हुआ है। वह सुन्दर जलपात्र भी तुम्हारा वही सुरक्षित है। अरे पुत्र ! देखो सभी पहले के पदार्थ अभीतक सुरक्षित हैं। तुम्हारे लिए ही यत्नपूर्वक मैंने आजतक सुरक्षित रखे हैं। तुम यह जान लो ॥५-६॥

इसी पुराने स्थान पर तुम पूर्व जन्म में तपस्या में लीन रहा करते थे। यहीं पर तुमने पूर्वजन्म विता दिया था। उसके बाद तुमने फिर बङ्गाल में जन्म लिया। फिर यहाँ पर मेरी इच्छा से ही आगए हो। तब से लेकर अब तक सर्वदा मेरी दृष्टि तुम पर लगी ही ही थी। तुम्हारे जन्म के बाद मेरी पूर्ण दृष्टि तुम पर रही थी। तुम्हारे रक्षा के लिए मैं सर्वदा छाया के तरह तुम्हारे साथ लगा ही रहा तुम स्वयं सोच लो ॥७-९॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

गुहापि रक्षिता पात्रं स्थापितं चासनं तव ।
सर्वं तव वस्तुजातं विद्यते त्वं विजानीहि ॥१०॥
दीक्षयितुं च त्वां स्थाने रम्ये पर्वतसन्निधौ ।
इह कर्मणि तत्पूर्ववासस्थानाद् अहं स्वयम् ॥११॥
योगारूढेन चानीय ह्यस्थापयं न संशयः ।
त्वमेव सकलं वृत्तं ज्ञातुमर्हसि साम्प्रतम् ॥१२॥
महावतारगुरूणां वक्तव्यं सकलं शुभम् ।
श्रुत्वा लाहिडिविप्रोसौ मुमुदे हृदये स्वयम् ॥१३॥
उवाच स्वगुरुं भक्त्या दिव्यं प्रेम क्वचिन्न हि ।
एवं विधं तु केनापि क्वापि दृष्टं श्रुतं न वा ॥१४॥

यह गुफा भी तुम्हारे लिए सुरक्षित रखा । आसन भी वैसा ही रखा है । तुम्हारे पात्र भी यहीं हैं । तुम्हारी सारी वस्तुएँ यहाँ पर अभीतक मैंने सुरक्षित रखी हैं ॥१०॥

इसी पवित्र एवं रमणीय गुफा और पर्वत में ही तुम्हारे दीक्षा के लिए मैंने स्वयं ही तुम्हे तुम्हारे वर्तमान वासस्थान से उठाकर यौगिक शक्तिद्वारा यहाँ लाया है । यह सब वृत्तान्त अब तुम स्वयं ही जान गए हो ॥११-१२॥

महावतार बाबाजी के इस कथन से श्री लाहिडी महाशय अत्यन्त खुस हुए और हृदय में आनन्दका उल्लासानुभव हुआ ॥१३॥

उसके बाद श्री लाहिडीमहाशयने अपने गुरुसे श्रद्धावनत होते हुए कहा हे गुरुदेव ! ऐसा दिव्य प्रेम कभी किसी ने कहीं न देखा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अलौकिकस्य वै प्रेम्णः स्वरूपं यादृशं मया ।
लक्ष्यते साम्प्रतं तत्तु न श्रुतं केनचित् क्वचित् ॥१५॥
स्वप्नवद् बहुवर्षाणि जीवनस्य गुरोर्मया ।
व्यतीतानि न वेद्म्यत्र स्मरणं नागतं मम ॥१६॥
कथं स्मृतिर्विलुप्तास्ति जन्मनः किं प्रयोजनम् ।
पुनश्च भवतां प्राप्तिः सर्वं विज्ञातुमिष्यते ॥१७॥
एवं ब्रुवन् तदा ह्यश्रुपातं लाहिडी चाकरोत् ।
हृदये भावनावेगं संरोद्धुं नाभवत् क्षमः ॥१८॥
विज्ञाय सकलं भाववेगं स्वामी महाँस्तदा ।
स्मयमान इव तस्थौ प्रोवाच मितवाक् ततः ॥१९॥

है न सुना ही है। ऐसे अलौकिक प्रेमका जो स्वरूप मै देखरहा हूँ यह आश्चर्य जनक है। किसी ने कभी कहीं अनुभव नहीं किया है ॥१४-१५॥

हे गुरुदेव स्वप्न के तरह इस जीवन के बहुत वर्षों को मैंने पार किया किन्तु मुझे उस जीवन के विषय में, आप के विषय में कुछ भी स्मरण नहीं हो पाया। मेरी स्मृति कैसे विलुप्त हुई और जन्मका क्या प्रयोजन है। फिर आपकी प्राप्ति हुई यह सब कैसे संभव हुआ, मैं सबकुछ जानना चाहता हूँ ॥१६-१७॥

ऐसा कहते हुए श्री लाहिडी महाशयने अपने गुरुके आगे हर्ष विभोर होकर अश्रुपात किया। और हृदयके भावावेग को वे रोक न सके। इस प्रकार श्री लाहिडी महाशयके हृदयके उत्कृष्ट भावावेगको जानकर महान् स्वामी श्री बाबाजी महाराज कुछ मुसकुराए और

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

बहूनि मे व्यतीतानि वर्षाणि तव लाहिडिन् ! ।
प्रतीक्षायां न सन्देहो विद्यत इह कश्चन ॥२०॥
अगमः त्वं मृत्युलोकं यत्र कोलाहलो महान् ।
भवति सर्वदा मृत्योः तरंगाःसन्ति सर्वतः ॥२१॥
कर्मणां बन्धनं पूर्णं त्वयि समागतं यतः ।
त्वञ्च ह्यदृश्यः सञ्जातो मर्त्यलोके न संशयः ॥२२॥
अशक्नोर्मां तु त्वं तात ! द्रष्टुं किञ्च सदा मम ।
त्वयि दृष्टिरभूत्तत्र रक्षायै यत्नतस्तथा ॥२३॥
सूक्ष्मलोकेऽपि मे तात यत्रासीः त्वं विजानीहि ।
सूक्ष्मज्योतिःसागरेषु तरङ्गवीचिसु सदा ॥२४॥

थोडे से शब्दों में उन्होंने अपने प्रिय शिष्य श्री लाहिडी महाशय से यों कहा ॥१८-१९॥

हे लाहिडी ! मैंने तुम्हारे प्रतीक्षा में बहुत वर्ष व्यतित किए । इस में कोई भी सन्देह नहीं है ॥२०॥

तुम मृत्यु लोक में चले गए जहाँ बहुत ही वडा कोलाहल है । जहाँ सर्वत्र मृत्यु के तरंग व्याप्त हैं ॥२१॥

जहाँ कर्मों के बन्धन पुण्य और पाप के थपेडे निरन्तर पडते ही रहते हैं, तुम में भी कर्म के बन्धन पूर्ण रूप में आ गए और तुम भी उसी में पूर्णरूप से समाहित हो गए । साथ ही तुम मृत्यु लोक में अदृश्य हो गए । इस में सन्देह नहीं है । अतएव तुम मुझे देखने में असमर्थ हो गए । किन्तु मेरी दृष्टि सदा तुम पर थी ॥२२॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तवैव चाभवं पृष्टगामी पुत्र स्मराऽधुना ।
अन्धकारेषु झञ्झायां वज्रप्रहारभीषण-
कोलाहलेषु सर्वत्र किञ्च प्रकाशपुञ्जके ॥२५॥
अभवः त्वं दृष्टिगतो मम इत्यवधार्यताम् ।
यथा पक्षिणी सर्वत्र दुःखसुखेषु यत्नतः ॥२६॥
अपत्यान् स्वकीयान् रक्षेत् तद्वदेवाभवं सदा ।
यदा स्वमातुर्जठरं प्रविष्टवाँश्च त्वं पुनः ॥२७॥
समाप्य दश-मासान् वै बहिरेव समागतः ।
तदानीमपि मे दृष्टिरासीत् त्वयि यथार्थतः ॥२८॥

तुम्हारी रक्षा के लिए मेरी दृष्टि हमेशा तुमपर लगी रही। केवल इस लोक में ही नहीं किन्तु सूक्ष्म लोक में भी तुम्हारे उपर मेरी दृष्टि थी ही। यह तुम जान लो। सूक्ष्म ज्योतियों के सागर में और तरङ्गों के जाल में भी तुम जहाँ जहाँ गए मैं हमेशा तुम्मारे उपर दृष्टिपात करता ही रहा हूँ। तुम जान लो मैं हमेशा तुम्हारे पीछे लगा ही रहा। तुम इसे स्मरण कर लो ॥२३-२४॥

हे पुत्र ! अन्धकार में, झञ्जावात में, भीषण वज्रविजली के गिरने पर, इसी प्रकार प्रकाशपुञ्ज में सभी प्रकार के विघ्नपूर्ण कोलाहलों में, हरजगह तुम सदा मेरी दृष्टि के सामने ही रहे। यह जान लो। जैसै एक पक्षिणी अपने बच्चों को प्रत्येक सुख-दुःख में हर समय यत्नपूर्वक रक्षा करती है उसी प्रकार तुम्हे मैंहमेशा यत्नपूर्वक रक्षा करता ही

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इत्थं सर्वत्र सर्वेषु कालेषु रक्षितोऽसि त्वम् ।
वाल्ये वयसि नद्यास्तु बालुकामध्यगो भवान् ॥२९॥
ध्यानस्थश्चाभवत्तत्र ह्यभवं समुपस्थितः ।
अदृश्यरूपयुक्तोऽहं तव कृत्येषु पुत्रक ॥३०॥
साक्षीभूतोऽभवं तेन छायेव मां विजानीहि ।
अतिबाह्य बहून् मासान् एवमेव दिनानि च ॥३१॥
वर्षाणि बहूनि तात सधैर्यं त्वं प्रतीक्षितः ।
अस्यैव शुभकालस्य प्रतीक्षायां ममान्तिकम् ॥३२॥
साम्प्रतं त्वं समायातो ममेच्छा तत्र कारणम् ।
इयं गुहा तवैवास्ति रम्या पुरातनी शुभा ॥३३॥

रहा हूँ। जब तुम अपने माताके गर्भ में चले गए, उस दशमासको पूराकर जब तुम बाहर आगए, तब भी यथार्थ रूप में तुम्हारे उपर मेरी दृष्टि लगी ही रही ॥२५-२८॥

इस प्रकार हर समय, सभी अवस्थाओं में तुम्हारी रक्षा मैंने की है। बालक अवस्था में जब तुम नदी किनारे पर बालुके नीचे अपने शरीर के आधे भागको छिपाकर ध्यान में रहते थे तब भी मैं तुम्हारे साथ ही लगा रहा था। मैं उन अवसरों पर अदृश्य होकर उपस्थित रहता था ॥२९-३०॥

इस प्रकार तुम्हारे प्रत्येक कर्म का मैं साक्षी बना ही रहता था। छाया के तरह ही तुम्हें समझना चाहिए। इस प्रकार बहुत मास और वर्षों को विताकर धैर्यपूर्वक तुम्हारी प्रतीक्षा तो करता रहा। इसी शुभ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यत्रैव बहुवर्षाणि त्वमासीः साधनारतः ।
सुस्वच्छा स्थापिता चैषा तवार्थे सर्वदा मया ॥३४॥
आसनस्य कम्बलानि हीमान्येवात्र सन्ति ते ।
यत्रास्थितोऽकरो ध्र्यानमीशस्य जगदात्मनः ॥३५॥
इदं पात्रं तवैवास्ति येन त्वमपिबः पुरा ।
अमृतं मत्कृतं तावज्जीवनस्यापि रक्षकम् ॥३६॥
इदं पात्रं पीतवर्णयुतं त्वं विद्धि साम्प्रतम् ।
स्वच्छं सुरक्षितं रम्यं तवार्थे स्थापितं मया ॥३७॥
एवं तद्वाक्यमाकर्ण्य दृष्ट्वा चापि च वस्तूनि ।
विज्ञाय सकलं वृत्तं हर्षाश्रुपुरितोऽभवत् ॥३८॥

घडी की प्रतीक्षा थी । आज तुम मेरे पास आ गए हो । इस में मेरी इच्छा ही कारण है । यह रमणीय गुफा वही पुरानी तुम्हारी गुफा है । जहाँ तुम बहुत वर्षों तक साधना में रत थे । अतिशय स्वच्छ मैंने तुम्हारे लिए रखी है ॥३१-३४॥

तुमने प्रयोग किए हुए आसन के कम्बल भी यहीं पर स्थापित हैं । तुम उन्हीं पर वैठकर परमात्माका ध्यान किया करते थे ॥३५॥

यह वही पात्र है जिस में तुम उस जन्म में जीवन रक्षक पवित्र, मेरे द्वारा तयार किया गया अमृत पिया करते थे ॥३६॥

यह पीला पात्र देख तो लो, कितना सुन्दर एवं स्वच्छ है, जिसे मैंने तुम्हारे लिए सुरक्षित रखा है ॥३७॥

इस प्रकार उनके इन बचनोंको सुनकर और अपने तमाम पुराने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उवाच लाहिडिविप्रो गुरूणां पुरतस्तदा ।
तदिहैव तदीयेन वचसा कथ्यतेऽधुना ॥३९॥
भोगुरो ! भो पित ! किं स्याद् वक्तव्यं भवतां पुरः ।
एवं विधं प्रेमजातं न केनचिच्छ्रुतं क्वचित् ॥४०॥
महाकारुणिका नूनं भवन्त एव भूतले ।
महावतारपुरुषा ईश्वरा इति मे मतिः ॥४१॥
मदीयं जीवनस्येदं चक्रजातं भवत्पुरः ।
समर्पयामि सकलं जीवनं श्रद्धया पुनः ॥४२॥
जीवनं मदीयं सर्वं धनजातं यथार्थतः ।
मृत्युरपि च मे तात ! भवानेव न संशयः ॥४३॥

चीजोंको देखकर, समग्र पूर्ववृत्तान्तोंको जानकर मैं हर्षाश्रु युक्त हो गया । और श्रीगुरुदेव के सामने जो श्री लाहिडी महाशयने कहा उन्हीं के वचनों में सुन लें ॥३८-३९॥

श्री लाहिडी महाशयने अपने गुरुदेव से कहा –

हे गुरुदेव ! हे पितृचरण ! आप के सामने मैं क्या कहूँ !!

ऐसा पवित्र, दिव्य प्रेम न कहीं कभी किसी ने सुना हैं न देखा ही है । आप निश्चय ही महाकारुणिक हैं इस भूतल पर, आप महावतार हैं, आप ही ईश्वर हैं ऐसी मेरी बुद्धि है । मैं यह जीवन, तथा जीवन और मरणका यह चक्र सबकुछ श्रद्धा पूर्वक आपको पूर्ण समर्पण करता हूँ । हे गुरुदेव ! मेरा पूरा जीवन, यथार्थरूप में मेरा धन और मृत्यु भी आप ही हैं इस में कोई सन्देह नहीं है ॥४०-४३॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इत्थमुक्त्वा पुरस्ताद्धि तेषां तु स्वामिनां मुखम् ।
सानन्दं दृष्टवान् भूयो ह्यतृप्त इव केवलम् ॥४४॥
वाणी रुद्धा न तत्रासीत् कर्तव्यं न भयं त्वथ ।
सर्वस्वं हार्दिकं वस्तु गुरुत्वेन ह्यलभ्यत ॥४५॥
तेषां चरणजातं तु साम्रेडं श्रद्धया तदा ।
स्पृष्टं पार्थितवान् साश्रुनयनस्तत्र भूयसा ॥४६॥
वक्तुं पारितवान् किञ्चित् शब्दैर्नाहं कथञ्चन ।
ज्ञात्वा वृत्तान्तजातं तु रोमहर्षयुतोऽभवम् ॥४७॥
लब्धव्यं सकलं तावल्लब्धमेवाऽभवत्तदा ।
अवशिष्टं न वै किञ्चिदासीन्मे जीवने तदा ॥४८॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे षष्ठोऽध्यायः ॥

ऐसा कहकर श्री बाबाजीके समक्ष, उनके सुन्दर, पवित्र मुखको देखता हुआ अतृप्त के तरह वारम्बार देखता ही रहा ॥४४॥

उस अवस्था में अब मेरी वाणी भी पूर्णरूपसे बन्द थी, न कोई कर्तव्य ही था, न भय, क्यों कि सर्वस्व हार्दिक पदार्थ अपने पूज्य गुरुदेव उपलब्ध थे ॥४५॥

उनके चरण श्रद्धा से वारम्बार छुता हुआ अश्रुपुरित मैं उन से प्रार्थना करने लगा किन्तु मैं कुछ भी बोल न सका । केवल उस गंभीर रहस्य को जानकर मेरे रोम भी हर्षित हुए । क्यों कि जो भी प्राप्तव्य था वह इस जीवन में उपलब्ध हो गया था। मेरे जीवन में उस समय कुछ प्राप्तव्य शेष नहीं रह गया था । मेरा जीवन धन्य हो गया था ॥४६-४८॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ सप्तमोऽध्याय:

इत्थमुक्ते प्रार्थिते च लाहिडिमुनिना तदा ।
महावतारगुरवो ह्यब्रुवन् लाहिडिमुनिम् ॥१॥
शुद्धिः त्वदीया सर्वादौ कर्तव्या लाहिडिन् यतः ।
पात्रस्थं पीयतां तैलं तावत्तन्निकटे स्थितम् ॥२॥
पीत्वा तद् गम्यतां शीघ्रं तटं नद्या त्वया ततः ।
शय्यतां बालुकामय्यां शय्यायां निर्भयात्मना ॥३॥
श्रुत्वा तदीयं वचनं स्मयमानोऽविचारयम् ।
योगी न हि विस्मरति व्यवहारं कथञ्चन ॥४॥

अध्याय-७

इस प्रकार श्री लाहिडी महाशयद्वारा श्रद्धापूर्वक प्रार्थना करने पर महावतार गुरुदेव श्री लाहिडी महाशय से कहने लगे –

हे लाहिडी ! सब से पहले तुम्हारी शुद्धि होनी चाहिए । इसीलिए (एक पात्र की ओर दिखाते हुए) उस पात्र में रखे हुए तेलको तुम पी लो । उक्त तेल पीकर तुम समीप मे वहने वाली नदी के किनारे चले जाओ और निर्भर होकर बालुक के उपर सो जाओ ॥१-३॥

श्रीगुरुदेव के उक्त वचन सुनकर मैं अवाक् खुसी से हँसता हुआ विचारने लगा क्यों कि वे व्यवहारिक विषयों को कितना ध्यान देते हैं । इस प्रकार श्रीगुरु की आज्ञानुसार मैं स्वयं उसके बाद उक्त तेलको पीकर समीपवर्ती नदी के किनारे जाकर निश्चिन्त और

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आदेशं गुरूणां शीघ्रं पालयित्वा स्वयं ततः ।
सुप्तो नद्याः कुलं गत्वा निश्चिन्तो निर्भयस्तथा ॥५॥
निशा तावद् गच्छतिस्म शनैः शैत्यञ्च वर्धते ।
किन्तु मामकीने काये नासीत् शैत्यं यथार्थतः ॥६॥
उष्णता वहमान्नासीत् सर्वत इति ज्ञायताम् ।
तस्मिन् तैले सम्भवतः दिव्यमौषधकं स्वयम् ॥७॥
गुरुणा मिश्रितञ्चासीदित्येव कल्पितं तदा ।
चिन्ताहीनस्तदा शीतवायुना ताडितोप्यहम् ॥८॥
शीतेन किन्तु बाधाभिर्हीन एवाऽभवं तदा ।
सिंहनादस्तु सामीप्यात् श्रूयतेस्म भयावहः ॥९॥

निर्भर होकर सो गया ॥४-५॥

धीरे धीरे रात्रि व्यतीत हो रही थी । धीरे धीरे शीत लहर भी बड ही रहा था । किन्तु मेरे शरीरपर ठण्डीका कोई भी प्रभाव उस समय नहीं था । मेरे शरीर में तो पूर्णरूप से उष्णता का वास था और मुझे गर्मी हो रही थी । मुझे लगता है उस तेल में जो मैंने पीया था, कुछ दिव्य औषधियाँ मिली हुई थी ऐसा लगता है, जिसे श्रीगुरु देव ने मिलाया था, ऐसा मैं विचारने लगा । उससमय मैं चिन्ता रहित था, शीतल वायु वारम्वार मुझे ताडित कर रहा था किन्तु ठण्ड ने मुझे छुआ तक नहीं । अन्य सभी बाधायें भी मुझे बाधित नहीं कर रही थीं में पूर्ण अभयकी स्थिति में था । मेरे समीप में भयंकर सिंह नादकर रहा था । मुझे उससे भी कोई भय नहीं हुआ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

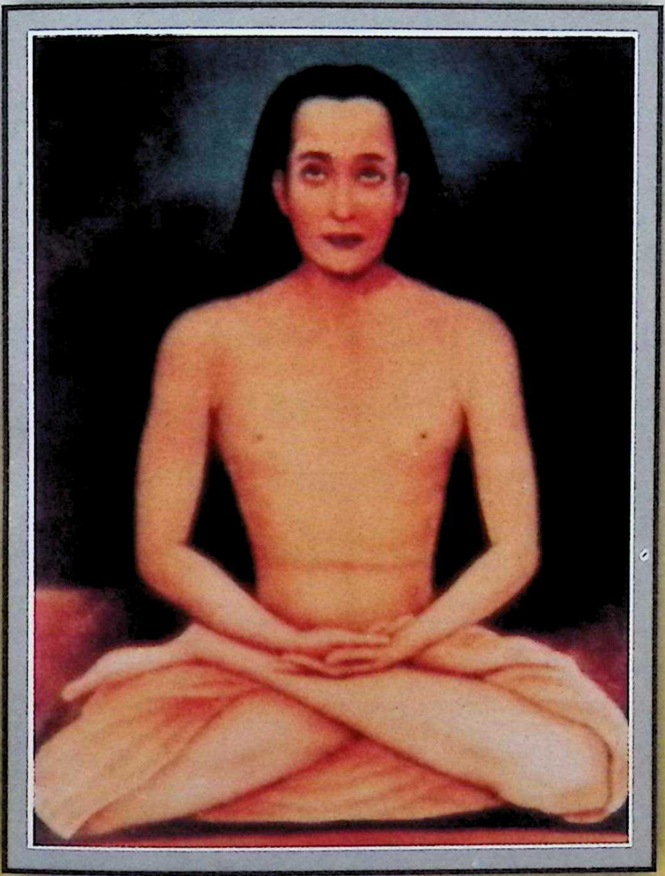

महावतार बाबाजी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भयहीनतया तत्र शान्तो भूत्वाऽप्यशुप्यत ।
न चिन्ता न भयं नापि द्वेषः कामादयो न वा ॥१०॥
भाववेगविहीनोऽहं हर्षितश्चाभवं यतः ।
लब्धमासीत्तु लब्धव्यं वैभवं श्रीगुरुर्मतः ॥११॥
तस्य सान्निध्यतो नूनं हर्षितश्चाभवं तदा ।
नदी गगासनाम्नी तु तत्रासीत् पुरतो मम ॥१२॥
हिमशीकरसंयुक्तो वायुस्तु वहतिस्म ह ।
अभेद्यरक्षणञ्चासीत् कृपा श्रीगुरूणां यतः ॥१३॥
द्रुतगत्यैव कालस्तु गतो रात्रिमयस्तदा ।
बुद्धवद् गतकालस्य स्वरूपं चिन्तितं तदा ॥१४॥

साथ ही अत्यन्त शान्ति से मैं सोता ही रहा। मुझे चिन्ता, भय, द्वेष, काम आदि विकारों से किसी प्रकारकी बाधा नहीं हुई। पूर्ण रूपसे भाव वेग विहीन होकर अत्यन्त हर्षित होता हुआ मैं सोया रहा। क्यों कि मुझे जो भी प्राप्तव्य था वह श्रीगुरु ही थे, वे मिल ही चुके थे ॥६-११॥

उनके सान्निध्य मात्र से मैं निश्चित ही हर्षित था। वहीं समीप में 'गगास' नाम की नदी वह रही थी। अत्यन्त शीतल हिमालय के सीकरों से युक्त वायु वह ही रहा था, किन्तु गुरु प्रदत्त अभेद्य कवच से मैं पूर्ण सुरक्षित था ॥१२-१३॥

वह रात्रि समय अत्यन्त तीव्रता से व्यतीत हो रहा था। उस समय मैं भगवान् बुद्ध के तरह ही गत समयका विचार कर रहा था। साथ ही गुरु के वर्तमान कृत्यों के विषय में भी सोच ही रहा था।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

गुरोस्तु वर्तमानस्य चिन्तने व्यापृतोऽभवम् ।
अनेकाभिः कल्पनाभिर्युक्तः स्वयं तटे तदा ॥१५॥
नद्या ह्यस्पष्टभावैस्तु सुप्तश्चानिद्रितस्तदा ।
एवमेव क्रमे पादध्वनिरश्रूयत स्वतः ॥१६॥
एकान्तचिन्तनं नष्टं मामकीनं तथा तदा ।
योगी चैकः समायातो गुरूभिः प्रेषितस्तदा ॥१७॥
अहमुत्थापितस्तेन स तु वस्त्राणि दत्तवान् ।
सन्धार्य शुष्कवस्त्राणि पृष्टगाम्यभवं ततः ॥१८॥
स प्राह मां समागन्तुं गुरुचास्ति तवैव हि ।
प्रतीक्षायां सुदीक्षायै तवार्थे नात्र संशयः ॥१९॥

अनेक कल्पनाओं के साथ मैं उस नदी के तट पर सो रहा था। किन्तु भावनायें स्पष्ट नहीं थीं। सोया था निद्राका कोई लवलेश नहीं था। इसी क्रम में किसी आगन्तुक का पदचाप सुनाई दिया ॥१४-१६॥

उस पदचाप के कारण सहसा मेरा एकान्त चिन्तन भंग हो गया। वहाँ पर एक योगी आए थे जिसे गुरुदेवने भेजा था ॥१७॥

उन्होंनें मुझे वहाँ से उठाया साथ ही उन्होंने मुझे पहनने के लिए कुछ सुखे वस्त्र भी दिए। उन सूखे वस्त्रों को धारणकर मैं उन योगी के पीछे चलदिया ॥१८॥

उन्होंने मुझे अपने साथ आने का निमन्त्रण दिया और कहा श्रीगुरुदेव तुम्हारे ही प्रतीक्षा में हैं। वे आज तुम्हे दीक्षा देने के लिए प्रतीक्षारत हैं इस में सन्देह नहीं है ॥१९॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अरण्यमार्गतस्तत्र नीयमानोऽप्यहं तदा ।
मार्गाद् ददर्श सुदूरं प्रकाशपुञ्जसन्निभम् ॥२०॥
अपृच्छं तं महाभागं किं सूर्योदय जायते ।
समग्रा रजनी तावत्व्यतीता किं स्विदित्यपि ॥२१॥
स मार्गदर्शको नूनं मृदुहास्यपुरःसरम् ।
प्राह मां मध्यरात्रोऽसौ सुदूरे यच्च दृश्यते ॥२२॥
प्रकाशमण्डलं तात भाष्करस्य न विद्यते ।
तत्तु स्वर्णप्रासादस्य प्रभामण्डलमित्यपि ॥२३॥
ज्ञायतां गुरुणा तावत् दीक्षायै तव निर्मितम् ।
सुदूरे व्यतीते काले स्वर्णभवनकाङ्क्षया ॥२४॥

वे मुझे जंगल के एक मार्ग से लैजाने लगे और मैंने रास्ते से ही सुदूर पर एक प्रकाशपुञ्ज देखा ॥२०॥

मैंने उनसे पूछा क्या अभी सूर्योदय हो रहा है ? क्यों कि यह प्रकाशपुञ्ज सूर्य के तरह ही लग रहा है । क्या समग्र रात्री व्यतीत हो गई ? उस मार्गदर्शक योगी ने मुझे कहा मृदुहास्य पूर्वक, यह मध्य रात है । सुदूर पर जो प्रकाश मण्डल देख रहे हो वह भगवान् भाष्करका प्रकाश नहीं है किन्तु वह स्वर्ण महल चमक रहा है । और साथ ही यह भी तुम जानलो कि यह स्वर्णभवन भगवान् बाबाजी महाराजने तुम्हारे लिए बनाया है । जिसे पूर्व जन्म में तुमने इसकी इच्छा की थी, जिसे आज गुरुदेव स्वर्ण भवन वनाकर तुम्हे उस में दीक्षा देने की तयारी कर रहे हैं । साथ ही तुम्हारी कामनारूपी बन्धनको भी वे

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रोक्तमासीत् त्वया तेन गुरुणा निर्मितं हि तत् ।
तवेच्छा पूर्तये त्वद्य किञ्च बन्धननाशये ॥२५॥
पूर्वसंस्कारनाशोऽपि तव तेन भविष्यति ।
अस्मिन्नेव स्वर्णमये प्रासादे विपुले गुरुः ॥२६॥
दीक्षयिष्यति त्वां नूनं साम्प्रतं ज्ञायतां त्वया ।
तव दीर्घप्रवासोऽपि साम्प्रतं तु समाप्यते ॥२७॥
तेनैव तव सौख्याय सर्वे ते गुरुभ्रातरः ।
समागताः स्वागताय तवैव सद्मनि गुरोः ॥२८॥
समक्षं च भवष्यन्ति दीक्षाकाले न संशयः ।
तावद्वयं च संप्राप्ता विशालस्वर्णमन्दिरम् ॥२९॥

समाप्त करने जा रहे हैं । तुम्हारे पूर्व संस्कारों का भी उससे नाश हो ज़ाएगा । इसी स्वर्णभवन में गुरु तुम्हे आज दीक्षित करेंगे । साथही तुम्हारा सुदीर्घ प्रवास (जन्म और कर्मका चक्र) भी आज ही समाप्त हो जाएगा ॥२१-२७॥

इसी लिए तुम्हारे खुसी के लिए तुम्हारे गुरु भाई तुम्हारे स्वागतार्थ यहाँ उपस्थिति हैं, वे श्रीगुरुदेव के सामने दीक्षा के समय उपस्थित रहेंगे। इस में कोई भी सन्देह नहीं है। जब यह वातचीत हो ही रथी थी हम लोग उक्त विशाल स्वर्ण भवन के समक्ष पहुँच ही गए ॥२८-२९॥

रत्नों से युक्त विचित्र प्रकाशयुक्त मणि माणिक्य खचित वह भवन विशाल था उसका वर्णन करना भी कठिन है । उक्त भवन के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रत्नखचितवैचित्र्यप्रकाशमणिमण्डितः ।
स प्रासादो महानासीत् वर्णतुं नैव शक्यते ॥३०॥
भवनं परितश्चासन् ह्युद्यानानि मनोहर-
निर्झरा विपिनान्यत्र सर्वमलौकिकं यतः ॥३१॥
सरांसि परितश्चासन् भवनं स्वर्णसन्निभम् ।
छाया बिम्बं हि तत्रासीत् तेषु दिव्यसरःसु च ॥३२॥
भव्यमलौकिकं दिव्यमतुल्यं प्रतिविम्बकम् ।
आसीत्तत्रैव सहसा दृष्टिगोचरतां गतम् ॥३३॥
विचित्रमणिमाणिक्यदिव्यरत्नैर्विनिर्मिते ।
स्वर्णभवनसंविष्टे द्वार आसन् महत्तमाः ॥३४॥

चारों और मनोहर उद्यान, झरने, उपवन वन और जो कुछ भी था प्रायः सभी अलौकिक ही दिखता था। चारों तरफ दिव्य तालाब थे। उन में उक्त भवन की छाया अच्छी तरह से दिखाई देरही थी। वह दृश्य भव्य, अलौकि, दिव्य, अतुलनीय प्रतिबिम्ब सहसा ही मेंरे समक्ष दिख रहा था ॥३०-३३॥

विचित्र मणिमाणिक्य, विचित्र दिव्य रत्नों से विनिर्मित उक्त विशिष्ट स्वर्ण भवन के द्वारपर बडे बडे सिद्ध, योगी, विरक्त साधु जो मुक्तिमार्ग में लगे हुए थे सब के सब उपस्थित थे। उन सभी जो श्रीगुरुके शिष्य थे, को देखकर मैं हर्ष और आश्चर्य से भाव विभोर हुए विना नहीं रहं सका, उसी समय मेंरे सहयोगी योगी ने उन सभीको

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

साधवो योगिनः सिद्धा विरक्ता मुक्तिमार्गगाः ।
विलोक्य किल तान् सर्वान् शिष्यान् श्री गुरूणां तदा ॥३५॥
हर्षाश्चर्यमयश्चाहं जात इत्यवधार्यताम् ।
मम सहायकर्तासौ निर्दिश्य तान् महत्तमान् ॥३६॥
पुण्यात्मनः स्वागतार्थं तवैवेति जगाद माम् ।
विशालं स्वर्णभवनं पुरतस्तु तदा मया ॥३७॥
दृष्टं साश्चर्यनेत्राभ्यामुद्यानैर्वेष्टितं महत् ।
प्रविष्टोऽहं सुरम्यस्य कक्षस्याभ्यान्तरं तदा ॥३८॥
दीपानां समूहस्तत्र मन्दालोकश्च सर्वतः ।
मन्द-सुगन्ध-शैत्यैश्च युक्तो वायुश्च तत्क्षणम् ॥३९॥

दिखाते हुए मुझ से कहा – वे सब तुम्हारे ही स्वागतार्थ उपस्थित हैं। आश्चर्य चकित नेत्रों से अपने सामने मैंने विशाल स्वर्ण भवनको देखा। उद्यानों से सुशोभित वह भवन विचित्र था। उसके बाद मैंने क्रमशः सुन्दर प्रकोष्ठों में प्रवेश किया ॥३४-३८॥

वहाँ दीपोंका समूह और मन्द आलोक चारों तरफ फैला हुआ था। वहाँ मन्द, सुगन्ध और शीतल वाहु वह रहा था। मैंने स्पष्ट रूपसे अनुभूत किया। वहाँ विरक्तों की मण्डली थी। बाबाजी के शिष्यों में कुछ गोरे और कुछ काले वर्ण के थे। वे सब मन्त्र के उच्चारंण पर ध्यान में मग्न थे। वे सब के सब आनन्दित थे साथ ही शान्त और ज्ञान में निष्ठ थे। उसी समय मेरे सहयोगी ने मुझ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अनुभूतस्तदा तात ! विरक्तानां च मण्डली ।
भक्तेषु केचन गौराः श्यामाश्चासन् हि केचन ॥४०॥
मन्त्रोच्चारणमग्नास्ते ध्याने वाऽसन् न संशयः ।
आनन्देन समायुक्ताः शान्ताः चासन् प्रतिष्ठिताः ॥४१॥
साश्चर्यं मां तदा सोऽपि सम्यक् विलोक्यताम् त्वया ।
तव सुखाय वै चैतद् भवनं वर्तते कृतम् ॥४२॥
पप्रच्छ तं महाभागमहं भ्रातर्न वेद्म्यहम् ।
रहस्यं खलु निर्माणे किमस्ति वद सम्प्रति ॥४३॥
अबोध्यं कारणं नैव किञ्चिद् लाहिडिन् जानीहि ।
ब्रह्माण्डं सकलं चास्ति सृष्टिकर्तुर्न संशयः ॥४४॥

से कहा लाहिडी तुम इसे ठीक से देख लो ! यह तुम्हारे लिए ही विशेष रूप से वनाया गया है। तुम्हे यह अवश्य ही सुखकर एवं रुचिकर लगेगा ॥३९-४२॥

उस समय मैंने अपना साहस बटोरकर अपने सहयोगी योगी से पूछा भैया, इस के निर्माण में क्या रहस्य है ? कृपया यह मुझे वताइए। उन्होंने कहा लाहिडी, इस में कुछ भी अबोध्य कारण नहीं है। क्यों कि यह सारा ब्रह्माण्ड सृष्टि कर्ताका घनीभूत विचार मात्र है। उसी प्रकार यह भी निर्मित है। यह तुम जान लो। लाहिडी, महावतार बाबाजी भी स्वेच्छा से सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका निर्माण कर सकते हैं। उस में परमात्माका कोई भी विरोध नहीं है। क्यों कि यह सारा ब्रह्माण्ड परमात्माका स्वप्न मात्र है। उस परमात्मा के साथ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

घनीभूतविचारो हि तेनैवात्राप्यरच्यत ।
महावतारदेवोऽपि स्वेच्छया सकलं शुभम् ॥४५॥
निर्माति किल वस्तूनि न तद् ईशविरोधिता ।
ईशस्य स्वप्नमात्रं हि ब्रह्माण्डं किल विद्यते ॥४६॥
अद्वैतं विंद्यते तस्य हीशेन सह लाहिडिन् ।
आदौ सङ्कल्प्य मनसा जगदीशो विनिर्ममे ॥४७॥
अददाद् गतिर्मत्वं हि पश्चादित्यवधार्यताम् ।
अणुशक्तेः पुनर्द्रव्यवस्तूनां समजायत ॥४८॥
प्रादुर्भाव ईश्वरस्य स्वेच्छया विद्धि लाहिडिन् ।
यदा संवृयते स्वेच्छा तदानीं चाणुशक्तयः ॥४९॥

बाबाजी महाराज एकाकार हैं। जिस प्रकार इस ब्रह्माण्डका निर्माण पहले विचार-सङ्कल्प करके वनाया फिर उसे गतिशील वनाया। अणु शक्ति से फिर द्रव्यादि पदार्थोंका निर्माण किया। यह सब प्रादुर्भाव परमात्माकी इच्छामात्र से हुआ है। जब उनका विचार विलीन हो जाएगा वे सब के सब पदार्थ विलीन हो जायेंगे। क्यों कि वे सब चैतन्य में परिणत होंगे। जगत् लुप्त हो ज़ाएगा। यह उस समय मेरे मार्गदर्शक ने मुझे वताया। इसी प्रकार लाहिडी! महावतार बाबाजी भी सभी वस्तुओं के निर्माण में समर्थ अपने विचार और सङ्कल्प मात्र से सभी परमाणुओं से सारे पदार्थों का निर्माण करते हैं। एक मुहुर्त मात्र में निर्मित यह स्वर्ण राजमहल भी उतना ही सत्य हैं जितना की यह

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

चैतन्ये परिवर्तन्ते जगल्लुप्तं भविष्यति ।
इत्याह मां स मार्गस्य दर्शको हिमसन्निधौ ॥५०॥
सर्वार्थसाधकेच्छाभिर्युक्तो महावतारकः ।
निर्माति सर्ववस्तूनि मूलैस्तैः परमाणुभिः ॥५१॥
मुहूर्तमात्रवेलायां निर्मितं स्वर्णसन्निभम् ।
भवनं विद्यते सत्यं यथा पृथ्वी विराजते ॥५२॥
भगवत्कल्पना नूनं निर्ममे पृथिवीं यथा ।
महावतारपुरुषो भवनं कृतवान् तथा ॥५३॥
ईश्वरेच्छैव सततं पुष्णाति सकलं जगत् ।
तथैव स्वर्णभवनं रक्षति स गुरुर्महान् ॥५४॥

पृथ्वी । जैसे जगदीश्वर की कल्पना से यह पृथ्वी वनी हुई है उसी प्रकार यह स्वर्ण भवन बाबाजी की इच्छा मात्र से निर्मित है ॥४३-५३॥

इस सारे जगत्‌को ईश्वर इच्छा ही निरन्तर पोषित करती रहती है। उसी प्रकार बाबाजीकी इच्छा ही इसे यों परिपोषित करती रहती है। इस स्वर्ण भवनका उद्देश्य जब पूरा हो जाएगा तब बाबाजी इसे विसर्जित कर देंगे। यह जो भवन है लाहिडी यह सब मानवीय प्रयत्न के कारण निर्मित नहीं है ॥५४-५६॥

यहाँ प्रयुक्त विविध विचित्र बहुत ज्यादा रत्न भूगर्भ से प्राप्त

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उद्देश्यं पूर्णतां गच्छेद् यदैव स्वर्णसन्निभ-
भवनस्य तदा सर्वं विसृक्ष्यति गुरुर्महान् ॥५५॥
इदं च भवनं यद्धि लाहिडिन् विद्यते पुरः ।
मानवीयप्रयत्नेन निर्मितं नैव वर्तते ॥५६॥
अत्र प्रयुक्तरत्नानि विचित्राणि बहून्यहो ।
भूगर्भान्नैव प्राप्तानि जानीहि लाहिडिन् यतः ॥५७॥
महावतारगुरुवत् स्वात्मानं यो युनक्ष्यति ।
सार्धमीश्वरतन्त्रेण स चेत्थं कर्तुमर्हति ॥५८॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे सप्तमोऽध्यायः ॥

नहीं हैं। क्यों कि जो भी व्यक्ति अपने आपको महावतार बाबाजी के तरह विकसित कर लेगा, अथवा ईश्वर के साथ तादात्म्य कर लेगा वह निश्चय ही वैसा कर सकता है ॥५७-५८॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथाष्टमोऽध्याय:

इत्थं पुनरपि प्राह स साधुर्लाहिडिमुनिम् ।
क्रमश: किल श्रृण्वन्तु श्रीलाहिडिमुखादिह ॥१॥
स्वल्पे पाषाणखण्डेऽपि अणुशक्तिस्तु विद्यते ।
आत्मभावमविज्ञाय न तद् बोद्धुं हि शक्यते ॥२॥
क्षुद्रसाधारणो मर्त्यो दिव्यशक्तियुतो भवेत् ।
यदापि भगवद्रूपं जानाति विद्धि साम्प्रतम् ॥३॥
एतत् स्वर्णनिभं भव्यं रमणीयं विचित्रकम् ।
भवनं वर्तते तात ! तवार्थे निर्मितं स्वयम् ॥४॥

अध्याय-८

इसी प्रकार उक्त योगी ने और भी श्री लाहिडी महाशय से कहा वह सब श्री लाहिडी के मुख से ही आप सब सुनें ॥१॥

हे लाहिडी ! छोटे से पाषाण खण्ड में भी अणुशक्ति निश्चित रूप से हैं। किन्तु आत्मसाक्षात्कार किए विना यह नहीं जाना जा सकता है ॥२॥ क्षुद्र साधारण मनुष्य निश्चय ही दिव्य शक्ति से युक्त हो जाता है जब वह भगवत साक्षात्कार कर लेता है। यह जान लेना चाहिए ॥३॥

'लाहिडी ! यह भव्य स्वर्ण भवन, जो विचित्र है यह तुम्हारे लिए ही निर्मित है। स्वयं महावतार बाबाजी ने तुम्हारी इच्छा के पूर्ति के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

महावतारपुरुषैः तवेच्छा पूर्तये ऽनघ ! ।
जन्मनि तव पूर्वस्मिन् आसीत् तादृशी कामना ॥५॥
तेनैव साम्प्रतं रम्यं सर्वं यद् यद् इहास्ति च ।
तवार्थ एव सर्वस्य सृष्टिस्तैस्तु विधीयते ॥६॥
तत्र भवनमध्ये तु स्वर्णसिंहासने ।
महावतारगुरव आसन् स्वयं विराजिताः ॥७॥
परितस्तान् महाभागान् तच्छिष्या बहवस्तदा ।
आसन् सिद्धा महात्मानो योगिनश्चापि तादृशाः ॥८॥
मां विलोक्य तदा तत्र प्राहुस्ते गुरवः स्वयम् ।
लाहिडिन् कामनाः सर्वाः किं पूर्णा नाभवन् इह ॥९॥

लिए किया है। तुम्हारे पूर्व जन्म में इस प्रकारकी इच्छा तुमने की थी उसी की यह पूर्ति है। इसी लिए तुम्हारे लिए यह सृष्टि है जो बाबाजी महाराजने की है। इसके बाद मैंने देखा कि उक्त भवन के मध्य भाग में स्वर्ण सिंहासन है उस में स्वयं बाबाजी महाराज विराजमान हैं। उनके चारों ओर उनके शिष्य योगी, सिद्ध, तपस्वी महात्मा आदि विराजमान थे। उस समय मुझे देखकर श्रीगुरुदेवने कहा - अरे लाहिडी क्या तुम्हारी सभी कामनायें पूर्ण नहीं हुई हैं ? क्या स्वर्ण भवन के विषय में तुम्हारी जो इच्छा थी वह पूर्ण नहीं हुई ? अवश्य ही हुई होगी। वे स्वयं भी स्वयं निर्मित उक्त भवन में विस्मित लगते थे। न जाने वे क्यों चकित थे ? उस अलौकिक अदृष्टपूर्व भवन में मैं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्वर्णप्रासादसम्बन्धे या आसन् पूर्वजन्मनि ।
स्वयं निर्मितप्रासादे स्थितास्तेऽपि च विस्मिताः ॥१०॥
आसन् तत्रैव गुरवो किमर्थं नैव वेद्म्यहम् ।
अलौकिकमदृष्टं तत् पूर्वस्मिन् केनचित् क्वचित् ॥११॥
प्रासादं किल स्वर्णस्य दृष्ट्वाऽऽसं चकितोऽप्यहम् ।
जागृहि लाहिडिन् अद्य भौतिक्यः कामना इह ॥१२॥
नश्यन्त्येव तात सर्वा उत्तिष्ठ वत्स साम्प्रतम् ।
परमात्मनो यद्राज्यं महत्तमं विराजते ॥१३॥
तदर्थं यत्यतां तात क्रियायोगाच्च लभ्यताम् ।
परमात्मनो यद्राज्यं तदर्थमिह लाहिडिन् ॥१४॥

वह सब देखर स्वयं भी अत्यन्त आश्चर्य चकित था । स्वर्ण भवन स्वयं में मेरे लिए आश्चर्यका विषय था ही, इस प्रकार आश्चर्य चकित मुझे उन्होंने उसी समय कहा - लाहिडी ! आज तुम अब इन भौतिक कामनाओं से सदा के लिए जाग जाओ । सारी भौतिक इच्छायें नष्ट हो जायेंगी, प्यारे वच्चे ! तुम जाग जाओ । क्यों कि परमात्माका जो राज्य है वह निश्चय ही अत्यन्त विशाल है । विचित्र है । उसके लिए तुम यत्न करो । क्रिया योगसे उसे तुम प्राप्त करो । परमात्माका जो विशाल राज्य है उसके लिए क्रियायोग सर्वश्रेष्ठ साधन है । इसी लिए इस समय उस महान् क्रियायोगकी दीक्षा ग्रहण कर लो ॥४-१५॥

उसके बाद सब कुछ तुम स्वयं ही जान लोगे । श्रीगुरुदेव ने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

क्रियायोगेन तत्सर्वं प्राप्यते नात्र संशयः ।
इदानीं योगश्रेष्ठं हि क्रियायोगमवाप्नु हि ॥१५॥
ततः परं स्वयं सर्वं ज्ञास्यसि त्वं यथार्थतः ।
इत्याहुर्गुरवस्तत्र मां स्थितं पुरतः स्फुटम् ॥१६॥
उत्तिष्ठ वत्स चोत्तिष्ठ क्रियायोगं हि साम्प्रतम् ।
आशीर्वादयुतं मन्त्रोच्चारणं तैः स्वयं कृतम् ॥१७॥
उत्तिष्ठ वत्स योगस्य स्वरूपं किल ज्ञायताम् ।
दीक्षया क्रियायोगस्य सर्वस्वं त्वमवाप्नुहि ।१८॥
इत्युत्वा चकितैस्तैस्तु हस्तौ प्रसारितौ तदा ।
विशालं हव्यकुण्डं हि पुरतस्तु समागतम् ॥१९॥

सामने खडे मुझे इस प्रकार कहा ॥१६॥

उसके बाद प्यारे, बच्चे उठो, उठो और क्रियायोग ग्रहण कर लो ऐसा कहकर स्वयं भी कुछ मन्त्रों का उच्चारण किया जो आशीर्वाद से परिपूर्ण थे । प्यारे वच्चे तुम उठो । योगका जो मूल स्वरूप है उसे तुम जान लो । इस क्रियायोग के दीक्षाद्वारा तुम सर्वस्व प्राप्त कर लोगे ॥१७-१८॥

ऐसा कहकर चकित चकित बाबाजी ने स्वयं अपने दो हाथों को फैलाया वस इतने में ही विशाल अग्निकुण्ड जो हवनीय था सामने ही प्रकट हुआ । उस हवन कुण्ड के चारों ओर आवश्यक सभी सामग्री मौजुद थी । उसी अग्नि कुण्ड के समक्ष भगवत् कृपासे मैंने श्री

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अग्निरासीत् किञ्च सर्वपदार्थसन्निभस्त्विह ।
मुक्तिदायी क्रियायोगस्तत्रैव भगवत्कृपाम् ॥२०॥
प्राप्यैव गृहीतस्तात महावतारपक्षतः ।
ब्राह्मे मुहूर्ते सर्वेऽपि संस्कारा अभवन् यतः ।२१॥
आनन्दमयकालेऽस्मिन् सुषुप्तिर्बाधिका न हि ।
कक्षेषु भवनस्यास्य परिभ्रमणपूर्वकम् ॥२२॥
दृष्टवान् सकलं रम्यं तत्त्वजातं हि स्वेच्छया ।
उद्यानानि च दृष्टानि तदानीं ज्ञायतां त्वया ॥२३॥
निकषा तत्र संदृष्टा गुहाः पूर्वतना मया ।
वनं पर्वतश्रेणी वा दृष्टा तत्रैव पूर्ववत् ॥२४॥
किन्तु तत्र स्वर्णयुतं भवनं ह्यस्तने दिने ।

बाबाजी महाराज से मुक्तिदायी क्रियायोग प्राप्त किया । ब्राह्म मुहुर्त में मेरे सारे संस्कार पूर्ण हो गए थे । उस आनन्दमय काल में निद्राकी किसी प्रकारकी बाधा नहीं हुई । उसके बाद सारे कक्षों में परिभ्रमण पूर्वक स्वेच्छा से सभी अकल्पनीय तत्व, पदार्थ आदिका निरीक्षण करता रहा । बहुत से उद्यानों को भी मैंने देखा । उस भवन के समीप ही पूर्वतन गुफाओं को भी मैंने देखा । वन, पर्वत खण्ड आदि सब कुछ पूर्ववत् ही देखा । गत रात्रिका स्वर्ण भवन भी वहीं था । वह उद्यान आदि सभी रमणीयता सब कुछ वैसा ही था । प्रातः काल हो चुका था और सूर्य किरणों के साथ वह भवन वैसा ही चमक रहा था । मैंने फिर उसके भीतर प्रवेश किया, उसी स्वर्ण सिंहासन में बाबाजी महाराज विराजमान थे । शान्त योगी शिष्यों से घिरे हुए स्वयं भी वे शान्त थे

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आसीत् तादृशमुद्यानमपि रम्यम् इहास्ति तत् ॥२५॥
सूर्यरश्मिभिः संयुक्ते सुन्दरे भवने पुनः ।
आभ्यन्तरं गतो नूनं दृष्टवान् स्वगुरून् पुनः ॥२६॥
सिंहासने स्थिता नूनमिदानीमभवन् किल ।
शान्तशिष्यैर्वृतास्तत्र स्वयं शान्ता न संशयः ॥२७॥
लाहिडिन् त्वां तु निश्चित्य बुभुक्षा बाधतेऽधुना ।
चक्षुषी त्वं स्वीये तात निमीलयेति पुत्रक ! ॥२८॥
यदा मयोद्घाटितेऽत्र नेत्रे किञ्चिद् विचित्रकम् ।
दृष्टं तत्स्वर्णभवनं नासीत्तत्र पुनर्वयम् ॥२९॥
भूमावेव स्थिता आस्म सर्वेऽपि योगिनस्तथा ।
महावतारपुरुषाः स्वयं भूमौ स्थिता यतः ॥३०॥

इसमें सन्देह नहीं है ॥१९-२७॥

उसके बाद स्वयं बाबाजी महाराज ने कहा लाहिडी ! तुम्हें जोर की भूख लग रही है। तुम अपने दोनों चक्षुओंको बन्द कर लो ॥२८॥

जब मैंने अपने आँखाको खोला तो क्या देखता हूँ कि वह विशाल स्वर्ण भवन नहीं था। हम सब लोग पृथ्वी पर ही थे। सभी योगी लोग और स्वयं बाबाजी महाराज भी भूमिपर ही थे।

वह पहलेका विचित्र स्वर्ण भवन, वह सब वैभव कुछ भी नहीं था। केवल पर्वत, वन और हम सब लोग भूमि पर ही थे। इस समय मुझे और भी आश्चर्य लग रहा था। मुझे देखकर बाबाजी महाराज ने कहा—वे कुछ मुस्कुरा रहे थे, अरे पुत्र लाहिडी तुम क्या सोचरहे हो ? मन में मेरा भाव यही था कि अब क्या देखना ही बाँकी है ? उसी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

न पूर्वभवनं रम्यं न वैभवं पुरातनम् ।
केवलं पर्वते खण्डे भूमावेव वयम् तदा ॥३१॥
स्थिता अभूम सर्वेऽपि साश्चर्यं दृष्टवान् अहम् ।
मम मनःस्थितिं वीक्ष्य स्मयमानास्तु पूरुषाः ॥३२॥
प्रेम्णा प्राहुस्तदा तात किं चिन्त्यते त्वयाऽधुना ।
मनसि भावना चासीत् किं द्रष्टव्यं मयाऽधुना ॥३३॥
शिष्यते किल ते प्राहुस्तदानीमेव मां स्वयम् ।
यदुद्देश्यं स्थिरीकृत्य भवनं निर्मितं पुरा ॥३४॥
अधुना सकलं पूर्णमगाज् जानीहि लाहिडिन् ।
नाश्चर्यं किल तत्रास्ति ममेच्छा ननु कारणम् ॥३५॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डेऽष्टमोऽध्यायः ॥

समय उन्होंने कहा - जिस उद्देश्यको लेकर वह भवन निर्मित था इस समय उसका सम्पूर्ण उद्देश्य पूरा हो गया है लाहिडी तुम यह जान लो। उस में आश्चर्य नहीं करना चाहिए क्यों कि उस में मेरी इच्छा ही कारण है ॥२८-३५॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ नवमोऽध्यायः

यथा यथा सुघटनां गुरुभिः सह सोऽकरोत् ।
तत्सर्वं लाहिडिविप्रो वदति स्वमुखादिह ॥१॥
उत्थाप्य मृण्मयं पात्रं भूमेर्मह्यञ्च ते ददुः ।
प्राहुश्च यादृशं भोज्यमीष्यते कल्प्यतां हि तत् ॥२॥
तदेव प्राप्स्यति पुत्र भोज्यतां च यथेच्छया ।
मृण्मयपात्रस्पर्शेन मयाप्तं भोजनं तदा ॥३॥
मिष्ठान्नानि व्यञ्जनानि ह्यपूपादीनि तत्क्षणात् ।
घृतपक्वानि सर्वाणि स्वादिष्टानि यथार्थतः ॥४॥

अध्याय-९

अपने गुरुके साथ जैसी जैसी घटना हुई स्वयं लाहिडी महाशय इसे वतारहे हैं आप सब लोग सुन लें ॥१॥

उसके वाद श्री बाबाजी महाराज ने एक मिट्टीका पात्र उठाकर मुझे मे दे दिया और कहा जैसा भोजन करना चाहते हो वैसी कल्पना कर लो वैसा ही भोजन तुम्हे मिल जाएगा। और यथेच्छ तुम खालो। उसके वाद उक्त मृण्मय पात्र संस्पर्श मात्र से मुझे भोजन मिल गया ॥२-३॥

उक्त पात्र में मिष्ठान्न, सब्जियाँ, मालपूवा आदि घी में पके हुए थे और खाने पर अलौकिक स्वाद से भरपूर थे। मैं जितना जितना खाता हूँ पात्र में कुछ भी कमी नहीं आती थी यह मेरे लिए अत्यन्त

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यावत्खादामि तत्पात्रं न किञ्चिदपि रिक्तताम् ।
गच्छतीति तदाश्चर्यकरमासीच्च मत्कृते ॥५॥
अन्ते जलं च संप्राप्तुं मया दृष्टमितस्ततः ।
गुरुभिस्तत्र पात्रे हि संकेतस्तु तदा कृतः ॥६॥
शिष्टं पूर्णं भोजनं तु ह्यदृष्यतां तदा गतम् ।
तत्रैव हि समायातं स्वच्छं पेयं च पानीयम् ॥७॥
भुक्त्वा पीत्वा च सानन्दं गुरूणां कृपया तदा ।
अपूर्वं किल सौभाग्यं लब्धं मया नु तद्दिने ॥८॥
प्राहुश्च गुरवस्तावद् न्यूना एव हि मानवाः ।
जानन्ति भगवद्राज्ये भोज्यं प्रभूतमस्तीति ॥९॥

आश्चर्यजनक अनुभव था । खानेके अन्त में जब मैंने पानी के लिए इधर उधर देखा तव श्रीगुरु देवने उसी पात्रकी और संकेत किया, आश्चर्य !! तत्काल ही उक्त भोजनपात्र से भोजन लुप्त हो गया और उसी पात्र में अत्यन्त स्वच्छ पानी आ गया । इस प्रकार यह अपूर्व सौभाग्यका अनुभव मैंने श्रीगुरु के कृपा से उस दिन प्राप्त किया ॥४-८॥

उसके बाद श्रीगुरुदेव ने कहा देखो लाहिडी ! भगवान् के राज्य में भी बहुत भोजन उपलब्ध है, किन्तु यह बात बहुत ही कम लोगों को मालुम है । साथ ही ईश्वर से जो लोग भौतिक कामनाओं की पूर्तिकी इच्छा करते हैं वे अवश्य ही उसकी पूर्तिकर देते हैं, इस में

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भौतिककामनानां हि पूर्तयेऽपि च ये जनाः ।
इच्छन्ति हीश्वरात्तेऽपि प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥१०॥
दिव्यक्षेत्रे पृथिव्या हि समावेशोऽस्ति पुत्रक ।
परन्तु पृथिवी मायाप्रधानास्तीति ज्ञायताम् ॥११॥
तेनैव वर्तते न्यूनं सत्तत्वमिह भूतले ।
स्वर्गस्य मर्त्यलोकस्य संयोगस्तु तदा प्रभो ! ॥१२॥
दर्शितः कृतकृत्योऽस्मि भवतां कृपया गुरो ।
एवंविधे स्वर्णकृते भवने केनचिन्न हि ॥१३॥
योगिना गृहीता दीक्षा भवेदित्यपि चिन्त्यते ।
आत्मनो गूढतत्त्वस्य ज्ञानाय सर्वदा किल ॥१४॥

कोई सन्देह नहीं है ॥९-१०॥

दिव्य क्षेत्र में पृथिवी तत्व का भी समावेश है किन्तु पृथिवी अपने आप में माया प्रधान है इस लिए यहाँ बहुत ही कम सत्तत्व हैं। उसके बाद मैंने निवेदन किया हे गुरुदेव स्वर्ग और मर्त्यलोक दोनोंका संयोग आपने दिखा दिया, इस लिए मैं कृतकृत्य हुआ हूँ। साथ ही इस प्रकार के स्वर्ण भवन में शायद किसी भी योगी ने क्रियायोग की दीक्षा नहीं ली होगी। आत्माके गूढरहस्यको जानने के लिए प्रायः लोग साधारण स्थानों में क्रिया योग की दीक्षा लेते हैं। उस स्थानपर पूर्ण ज्ञानी योगीवृन्द उपस्थित थे। वे सभी उस गुफा के निकट पर्वत प्रान्त में श्रीगुरुदेव के चारों और वैठे थे। वे सभी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

योगिनो प्रायो गृह्णन्ति दीक्षाः साधारणे स्थले ।
तत्रासन् बहवः पूर्णज्ञानिनो योगिनस्तदा ॥१५॥
सर्वेऽपि पर्वतप्रान्ते गुहानिकटसंस्थिताः ।
गुरून् परित वै प्रेम्णा भक्त्या वा श्रद्धया स्थिताः ॥१६॥
देवदूतसदृक्तेषां स्वरूपमिह ज्ञायताम् ।
तद्दिनान्ते ह्यहं पूर्वजीवनस्य तु कम्बले ॥१७॥
स्थितवान् गुरूणां पूर्णकृपां प्राप्यैव श्रद्धया ।
गुरुभिः शिरसि स्पृष्टः प्रविष्टोहं तदा स्वयम् ॥१८॥
निर्विकल्पसमाधौ हि सप्तदिनावधिस्थितः ।
परमानन्दमग्नो हि समाधिभावभूमिसु ॥१९॥

पूर्णश्रद्धा, भक्ति और प्रेम से संयुक्त थे ॥११-१६॥

वे सब योगी गण देवदूत सदृश प्रतीत होते थे । उस दिनके अन्तिम वेला में मैं अपने पूर्वजीवन के उन कम्बलों पर वैठा श्रीगुरुदेवकी पूर्णकृपा पाकर श्रद्धापूर्वक, उसके बाद श्रीगुरुदेव ने मेरे शिर में स्पर्श किया तत्काल मैं समाधि में प्रविष्ट हो गया । इस प्रकार निर्विकल्प समाधि में मैं सात दिन तक वैठा रहा । निश्चित ही परमानन्द में निमग्न हुआ था उस समाधि भावभूमि में आनन्द की जो पराकाष्ठा की उपलब्धि हुई थी वह अवर्णनीय है। इस विषय में महात्मा बुद्धकी वह प्रथम सातदिनकी समाधिका मुझे स्मरण होता है जिन्हें गया में वह आनन्दकी प्राप्ति हुई थी, उसी प्रकार मैं भी उस समय महाज्ञान,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आनन्दस्य पराकाष्ठा तत्रासीत् ज्ञायतां किल ।
स्मरामि बुद्धदेवस्य सप्तदिनावधि पुरा ॥२०॥
समाधिभावसंस्पर्शः गयायामभवद् तथा ।
तथैवाहं महाज्ञान-महा-बोध-महत्पद-
निर्विकल्पसमाधौ हि स्थितवानिति ज्ञायताम् ॥२१॥
गुरुणां कृपया चैतत् तदानीमभवद् यथा ।
अतिक्रम्यैव वैभिन्नस्तरान् ज्ञानस्य चात्मनः ॥२२॥
सत्यलोकञ्च संप्राप्तो ह्यमरधाम्नि भूयसा ।
मायायाः सर्वदा सर्वबन्धनानि स्वतोऽधुना ॥२३॥

महाबोधि, महान् पद रूप उस निर्विकल्प समाधि में उपस्थित हुआ था यह जान लेनां चाहिए ॥१७-२१॥

उस पवित्र वेला में श्रीगुरुकी कृपासे विभिन्न ज्ञानकी अवस्थाओं को पार करते हुए सत्यलोक की उस अमर भावभूमि में भी प्रविष्ट हो गया । उस अवसर में माया के सम्पूर्ण बन्धन स्वतः नष्ट हो गए । मेरे पूर्व प्रारब्ध से प्राप्त समग्र बन्धन भी नष्ट हो गए, मैं आत्मबोध में या परमात्मा में पूर्णरूपसे अवस्थित हो गया । क्यों कि मायाका वह पर्दा जिससे मेरा ज्ञान ढका हुआ था अब पूर्णरूप से हटगया था । इस प्रकार आठवें दिन मैं अपने गुरुके चरण कमल में साष्टाङ्ग दण्डवत प्रणाम किया । साथ ही मैंने यह निवेदन भी किया हे गुरुदेव ! हे

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नष्टानि मम पूर्वस्य प्रारब्धवशगानि च ।
परमात्मनि तत्रैव पूर्णरूपेण साम्प्रतम् ॥२४॥
मम ह्यात्मा स्थितस्तावद् मायाभ्रमनिवारणात् ।
अष्टमे दिवसे तात गुरूणां चरणौ मया ॥२५॥
साष्टाङ्गेन प्रणम्यैव निवेदितं च श्रद्धया ।
महावतारगुरवो भवतामन्तिके स्वयम् ॥२६॥
वाञ्छामि सर्वदा स्थातुं कृपया ह्यनुगृह्यताम् ।
प्रेषयन्तु न मां लोके पुनर्मृत्युभये यतः ॥२७॥
आत्मज्ञाने स्थितस्तावदत्रैव निवसाम्यहम् ।
तच्छ्रुत्वा गुरवस्तावदालिङ्गनेन बाहुभ्याम् ॥२८॥

महावतार बाबाजी महाराज ! मैं अब हमेशा आपके चरण कमलों के सान्निध्य में ही रहना चाहता हूँ कृपया मुझे अनुगृहीत करें । मुझे अब इस मृत्युलोक में, मृत्यु भय के वातावरण में कृपया न भेजें । आत्मज्ञान में अवस्थित होकर अब मैं यहीं आप के सान्निध्य मे ही रहना चाहता हूँ । यह सुनकर श्रीगुरुदेव ने मुझे अपने बाहुपाश में आवद्ध किया और प्रेमपूर्वक कहा हे लाहिडी ! तुम्हारा अत्यन्त बडा कर्तव्य लोक के लिए अवस्थित है इस लिए तुम्हे जाना चाहिए । यहाँ नहीं रहना चाहिए ॥२२-२९॥

हे पुत्र लाहिडी ! तुम्हे अब लौकि जीवन में ही जाना चाहिए । वहीं पर तुम्हारा विशेष कर्तव्य अवस्थित है । तुम पूर्वजन्मों के तपस्या

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

बद्ध्वैव मां तदा प्रोचुः प्रेम्णा स्वयं महत्तमम् ।
कर्तव्यं विद्यते लोके तदर्थं नैव स्थीयताम् ॥२९॥
त्वया ममान्तिके तात गम्यतां लोकजीवनम् ।
तत्रैव तव कर्तव्यं शिष्यते पूर्वजन्मसु ॥३०॥
त्वं तु धन्यतमो जातो ज्ञानयोगविधानतः ।
संसाराणां कृतार्थाय त्वया लोके यदृच्छया ॥३१॥
क्रियायोगस्य दानेन दीक्षया वापि स्थीयताम् ।
एतावत्कालपर्यन्तं साक्षात्कारो मया सह ॥३२॥
नासीत् तत्रास्ति गभीरं रहस्यमिति ज्ञायताम् ।
यावत्सांसारिकं पूर्णदायित्वं त्वयि नाभवत् ॥३३॥

और साधना से धन्य हो गए हो । ज्ञान प्राप्ति कर लिए हो । अब संसार के श्रद्धालु लोंगों के कृतार्थता के निमित्त यदृच्छा से क्रियायोग दीक्षादेकर संसार में रहने के लिए तुम जाओ । अब तक तुम्हारा साक्षात्कार मेरे साथ नहीं हुआ था इस में गंभीर रहस्य विद्यमान है । जब तक सांसारिक दायित्व तुम्हारे उपर नहीं आया, जब तक तुम्हारा विवाह नहीं हुआ, तब तक हमारा मिलन नहीं हुआ । जब तुम सांसारिक कर्म में पूर्णरूपसे निमग्न हो गए हो तभी हम दोनों का मिलन हुआ यह तुम जान लो ॥३०-३५॥

इस समय तुम्हारे मन में यहीं रह जानेकी जो इच्छा है उसे तुम त्याग दो । इस जीवन में तुम्हे विशिष्ट आदर्शकी स्थापना

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यावद्विवाहसंस्कारो न जातस्तव पुत्रक ! ।
व्यावसायिकता नैव जीवने नाभवत् यदा ॥३४॥
यदा त्वं तु पूर्णतया संसारकर्मणि रतः ।
अभूः तदैव चास्माकं समवायस्त्वजायत ॥३५॥
इदानीमिह मण्डल्यां स्थातुं येच्छा तवास्ति ताम् ।
त्यज जीवनकालेस्मिन् आदर्शः स्थाप्यतां त्वया ॥३६॥
गृहस्थेऽपि च योगिनामुदाहरणपूर्वकम् ।
नागराणां च सम्मर्दस्थल एव हि जीव्यताम् ॥३७॥
व्याकुलानां नराणां वा नारीणामपि सर्वदा ।
आर्तनादाः सदाऽस्माभिः श्रूयन्त एव प्रत्यहम् ॥३८॥

करनी चाहिए । गृहस्थ जीवन में भी योगियोंका उदाहरण तुम्हे स्थापित करना है । इस लिए नागरिकों के भीडभरे स्थलों में ही तुम्हे रहना है ॥३६-३७॥

व्याकुल नर एवं नारियों के आर्तनाद हमेशा हम सुन रहे हैं इस लिए असङ्ख्य उत्साहित लौकिक जनों के, जो साधक हैं, उनके कल्याणार्थ क्रियायोग के माध्यम से निरन्तर पृथ्वी में आध्यात्मिक शान्ति दान कर्म में तुम नियुक्त किए जाते हो । जो भी लौकिक कर्म के दायित्व में निरन्तर रत हैं वे भी तुम्हे देखकर निश्चित रूप से आशान्वित होंगे । तुम्हे उन्हें समझाना होगा कि गृहस्थ जीवन में भी योग, जो योगियों के ही लिए है, असम्भव नहीं है । संसार में या

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

असङ्ख्यानां समुत्साहवतां पृथिवीजन्मनाम् ।
साधकानां क्रियायोगमाध्यमात् सततं भुवि ॥३९॥
आध्यात्मिकशान्तिदानकर्मणि त्वं नियुज्यसे ।
येऽपि लोकस्य दायित्वकर्मसु निरताः सदा ॥४०॥
त्वां विलोक्य भविष्यन्ति ह्याशान्विता न संशयः ।
त्वया ते बोधयितव्या गृहस्थेऽपि च जीवने ॥४१॥
सर्वोच्चयोगधर्माणां दुष्प्राप्यत्वं न विद्यते ।
संसारेऽपि स्थितो योगी ह्यासक्तिस्वार्थहानतः ॥४२॥
पूर्णनिष्ठायुतो भूत्वा योगे प्रतिष्ठितो भवेत् ।
ज्ञानमार्गस्य वेत्तासौ न मुह्यति कथञ्चन ॥४३॥

गृहस्थ जीवन में भी योगी आसक्ति और स्वार्थरहित होकर योग में पूर्ण निष्ठावान् होने पर निश्चय ही योग में प्रतिष्ठित होगा । साथ ही ज्ञान मार्ग का वेत्ता होकर वह समग्र मोहों से मुक्त होगा ॥३८-४३॥

क्रियायोग में अवस्थित व्यक्ति के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है । साथ ही तुम्हारे लिए संसारका परित्याग भी उचित नहीं है ॥४४॥

तुम्हारे समग्र कर्म बन्धन ज्ञानयोगद्वारा नष्ट हो गए हैं । इस प्रकार संसार के विलोप होने पर भी तुम्हे संसार में ही रहना हैं । इस समय अनेक वर्ष तुम्हारे लिए कर्तव्य हेतु अवशिष्ट हैं । उन वर्षो में तुम्हे सांसारिक लोगों के कल्याणार्थ काम करना है । विशेष रूप से आध्यात्मिक कर्म करना है । इस सम्बन्ध में कुछ भी भयका स्थान नहीं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

क्रियायोगरतस्यात्र ह्यसम्भाव्यं न विद्यते ।
संसारपरित्यागोऽपि तवार्थे नैव युज्यते ॥४४॥
निरस्तानि बन्धनानि ज्ञानयोगेन पूर्णतः ।
संसारस्य विलोपेऽपि तत्रैव स्थीयतां त्वया ॥४५॥
अनेकानि हि शिष्यन्ते वर्षाणि त्वत्कृतेऽधुना ।
तेषु वर्षेषु संसारकर्तव्यानि विशेषतः ॥४६॥
आध्यात्मिकानि कर्माणि कर्तव्यानि यथार्थतः ।
किञ्च नैवात्र भेतव्यं सर्वं सम्यग् भविष्यति ॥४७॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे नवमोऽध्यायः ॥

है । सब कुछ ठीक होगा ही ॥४५-४७॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ दशमोऽध्यायः

महाज्ञानी पुनरपि महावतारपूरुषः ।
यदाह सकलं वक्ति ज्ञानी लाहिड़िपुङ्गवः ॥१॥
संसारमानवानां ते कार्येण तु प्ररोहति ।
सुदिव्योत्साहसन्दोहः पुत्र तत्रैव यत्यताम् ॥२॥
तव योगमयात् पूर्णयुक्तियुक्तसुजीवनात् ।
मुक्तेराधाररूपं तु ज्ञास्यन्ति दर्शनात् तव ॥३॥
आन्तरिकविरागेण योगस्याश्रयतः सदा ।
मुच्यन्ते न तु बाह्यात्मत्यागेनेत्यवधार्यताम् ॥४॥

अध्याय-१०

उसके बाद महाज्ञान महावतार बाबा जी ने उनसे जो कुछ कहा वह सब श्री लाहिडी महाशय स्वयं वता रहे हैं -

हे लाहिडी ! सांसारिक मनुष्यों के लिए काम करने से, तुम्हारे उस पवित्र कर्म से, सुदिव्य उत्साह निश्चिय ही उनलोगों में उत्पन्न होगा इस लिए मेरे पुत्र उसी काम में लग जाओ ॥१-२॥

तुम्हारे योगमय, पूर्णयुक्तियुक्त सुजीवन से निश्चित रूपसे लौकिक लोग मुक्ति के आधार को यथार्थरूप से जान जायेंगे । साथ ही तुम्हारे दर्शनमात्र से उन्हें यह प्रतीत होगा कि मुक्तिका आधार आन्तरिक वैराग्यपूर्वक योगका पूर्ण अभ्यास है, न कि बाह्य रूप से दिखनेवाला हल्का त्याग । यह उन्हें बोध होगा तुम्हे ऐसा ही करना और समभना है ॥३-४॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शृण्वन् श्रीगुरुवाक्यानि दूरे हिमालये मया ।
गृहं कार्यालयः परिजनास्तु सुदूरे तदा ॥५॥
मनसि चिन्तितास्तात तदाश्चर्यकरं महत् ।
गुरूणां किन्तु सा चाज्ञा शिरसि धारिता मया ॥६॥
शिक्षणविधिरत्रैव गुरुभिः शिक्षितोऽप्यहम् ।
केवलं योग्यशिष्येभ्यो दातुं ते ह्यादिशन् तथा ॥७॥
येऽपि चान्यत् परित्यज्य हीश्वरं प्राप्तुमिच्छया ।
क्रियायोगपथं गन्तुमिच्छन्ति तेभ्यो दीयताम् ॥८॥
स एव जीवने लोकरहस्यं ज्ञास्यति ध्रुवम् ।
यो हि ध्यानेन चात्मानं प्राप्स्यति नात्र संशयः ॥९॥

गुरुदेव के इन वाक्यों को जब सुदूर हिमालय में सुन रहा था उस समय मुझे मेरा घर, मेरा कार्यालय और परिवार जन अत्यन्त दूर हैं ऐसा भी बोध हो रहा था। उस समय मैं मन में ही उन सभी विषयों को सोच रहा था। और अत्यन्त आश्चर्य भी हो रहा था। किन्तु गुरुदेव की वह आज्ञा मैंने स्वीकार कर लिया ॥५-६॥

शिष्यों को कैसे यह योग सिखाना है यह शिक्षण विधि भी उन्होंने मुझे सिखायी। किन्तु केवल योग्यतम शिष्यों, उचित पात्रों को ही दीक्षा देने का निर्देश भी उन्होंने मुझे दिया ॥७॥

जो भी शिष्यगण अन्य सबकुछ त्यागकर केवल ईश्वर प्राप्ति इच्छा से ही आते हैं उन्हें क्रियायोगी दीक्षा तुम देना ॥८॥

वही व्यक्ति इस जीवन में ही इस संसारका रहस्य जान लेगा जो

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

महावतारगुरवो भवद्भिः साम्प्रतं यथा ।
पुनरुद्धारितो लुप्तक्रियायोगस्तु लौकिक-
जनानां पुण्यभागानां कल्याणाय यथार्थतः ॥१०॥
तथा कठोरनियमान् कृपया लौकिकान् जनान् ।
स्मृत्वा प्रारंभकाले तु प्रोत्साहनाय तान् प्रति ॥११॥
न कुर्वन्तु तत्र येऽपि जिज्ञासां स्थापयन्ति च ।
तेभ्यो दातुं क्रियाकुञ्जीमनुमत्या जनं हीमम् ॥१२॥
कृतार्थयन्तु ते सर्वे भृशं दुःखेन पीडिताः ।
कदाचित्तेऽपि मुच्यन्ते भवतां योगशिक्षणात् ॥१३॥

भी ध्यानद्वारा आत्मसाक्षात्कार कर लेगा इस में कोई भी सन्देह नहीं है ॥९॥

हे पुज्य गुरुदेव ! इस समय जिस प्रकार आपने लुप्त क्रियायोगका पुनरुद्धार लौकिक पुण्यात्माओं के लिए महाकरुणा से किया है, इस लिए प्रारंभ में वैसे कठोर नियमों को कृपया न रखने के लिए मैं आप से अनुरोध करता हूँ। क्यों कि संसारताप से दग्ध जिज्ञासुओं को प्रोत्साहन की भी जरुरत है। इस लिए जो भी उचित श्रद्धा से आएगे उन्हें यह क्रियायोग देने के लिए आप मुझे अनुमति देने की कृपा करें। क्यों कि संसार के लोग अत्यन्त दुःसह दुःखसे अतिशय पीडित हैं। हो सकता है आपकी इस क्रिया कुञ्जी से उन्हें मुक्ति मिल जाय। जब मैंने ऐसी प्रार्थना की तो उन्होंने गंभीर होकर तथास्तु कहा और साथ ही यह भी कहा कि ईश्वर की इच्छा ही तुम्हारे मुख से

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इति प्रार्थनया तेऽपि तथास्तु कथनाच्च माम् ।
ईश्वरेच्छैव व्यक्ताभूत् तव मुखान्न संशयः ॥१४॥
येऽपि विनम्रभावेन सहयोगं च श्रद्धया ।
याचिष्यन्ते तेभ्यः क्रिया दीयतां पुत्र दीयताम् ॥१५॥
किञ्चिन् मौनतया ते तु प्राहुर्मां तदनन्तरम् ।
श्रीगीतावचनं सर्वान् सदा श्रावय लाहिडिन् ॥१६॥
"स्वल्प्यमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्" ।
अपरे दिवसे प्रातः गमनाय मतिर्मम ॥१७॥
नास्तीति गुरवो ज्ञात्वा प्राहुर्मां प्रेमपूर्वकम् ।
न वियोगोऽस्ति लाहिडिन् अस्माकं ज्ञायतां त्वया ॥१८॥

व्यक्त हुई है। इस लिए जो भी विनम्र होकर श्रद्धा से तुम से सहयोग मागे उन्हें अवश्य इस क्रियायोगका सञ्चार करो ॥१०-१५॥

फिर कुछ देर मौन होकर उन्होंने यह भी कहा लाहिडी ! तुम सभीको श्रीमद्भगवद्गीताका यह वचन सुनाया करो – 'यह जो धर्म – "क्रियायोगका अभ्यास" थोडा सा भी महान् भय से निश्चित ही रक्षा करेगा, – महान् भय = जन्म और मृत्यु का भय'। इस प्रकार दूसरे दिन जब मेरा लौटनेका समय हो गया तो मेरे मन में लौटने की इच्छा नहीं थी यह जानकर श्रीगुरुदेव ने प्रेमपूर्वक ऐसा कहा –

लाहिडी ! हम लोगों के बीच में कोई भी वियोग नहीं है। मैं जहाँ भी रहूँ तत्काल तुम्हारे पास जाउँगा तब तुम मुझे पुकारोगे। उनके ऐसा कहने के बाद मैंने नतजानु होकर उनके चरणों में प्रणाम

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सुदूरस्थोऽपि तत्कालं तत्रायास्यामि पुत्रक ! ।
भविष्यति च त्वं यत्र तवाकारान्न संशयः ॥१९॥
नतजानुरहमपि प्रणम्य चरणौ ततः ।
दशमे दिवसे स्वीयकार्यालयं समागमम् ॥२०॥
चकिताः खलु ते सर्वे हिमालये निगूहितः ।
पुनरयं समायात इत्यहं स्वागतीकृतः ॥२१॥
मुख्यकार्यालयात् शीघ्रं पत्रं तत्र समागतम् ।
प्रत्यावर्ततु श्रीश्यामाचरणलाहिडी ततः ॥२२॥
अनवधानतस्तस्य स्थानान्तरणं तत्र वै ।
जातं तत्रान्यपुरुषो नियुज्यत इति क्रमात् ॥२३॥

किया और अपने कार्यालयको लौटा । दशवें दिन में जब मैं कार्यालय लौटा तो सभी लोगों का आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा क्यों कि हिमालय में खोया हुआ ऐसा वे समझ रहे थे और मेरा हार्दिक स्वागत उनलोगों ने किया ॥१६-२०॥

उसके बाद मेरे मुख्य कार्यालय से एक पत्र आ गया, उस में था श्री श्यामाचरण लाहिडीको शीघ्र ही लौट जाना चाहिए । क्यों कि असावधानी से वह पत्र आ गया था और उस स्थान के लिए दूसरे व्यक्तिको भेजा जा रहा है । वस्तुतः लाहिडीका स्थानान्तरण नहीं हुआ है । इसके बाद मैं भी वहाँ से लौटा और अपने पारिवारिक घर वाराणसी लौट आया । क्रमशः दृढ मनसे यौगिक कर्म में संलग्न हुआ । अनेक प्रकार के गृहस्थ कर्मों में संलग्न होनेके बाद भी वह

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

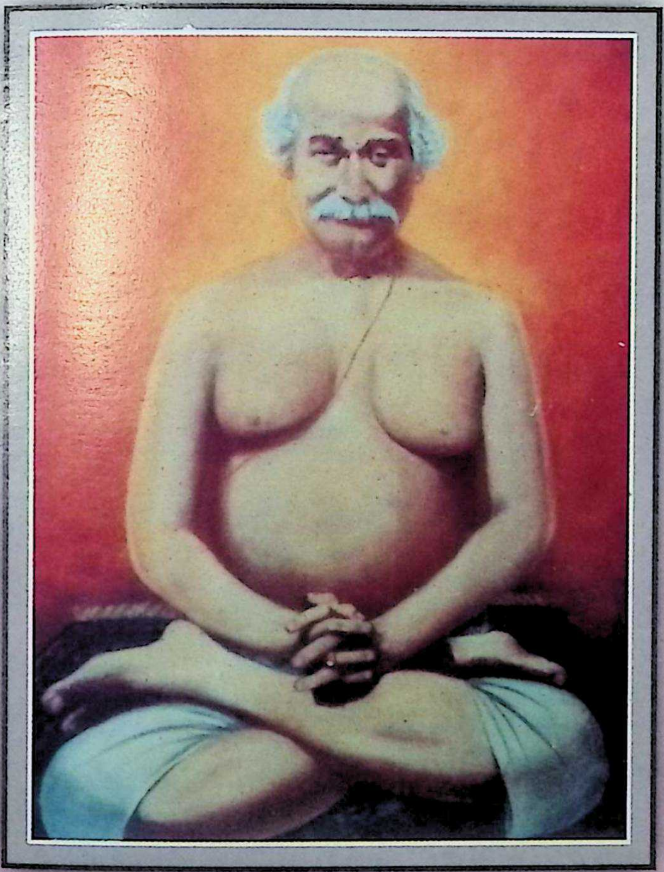

श्री श्यामाचरण लाहिड़ी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्वधाम नगरं वाराणसीपुरीं समागतः ।
दृढेन मनसा योगकर्मसु संस्थितस्तदा ॥२४॥
अनेकविधगार्हस्थकर्मस्वपि सदा तदा ।
संपृक्तो बाह्यतः किन्तु दृढेन मनसा सदा ॥२५॥
आत्मनि संस्थितस्तत्र गृहस्थे जीवने ततः ।
अभवं पुत्रकाः सर्वे क्रियायोगस्य माध्यमात् ॥२६॥
क्रियायोगं विना नैव यूयं शक्ता जगत्कृतम् ।
मायाजालं च संरोद्धुं क्रियायां युज्यतां सदा ॥२७॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे दशमोऽध्यायः ॥

सब बाह्य आवरण मात्र था किन्तु आन्तरिक रूप से मैं पूर्ण रूप से योगमार्गका ही पथिक था । क्रियायोगके माध्यम से मैं पूर्णरूप से आत्मा में ही स्थित था ।

हे पुत्रों ! हे शिष्यों ! क्रियायोग के विना इस संसार के जाल को काटना संभव नहीं है इस लिए माया जाल से मुक्ति के लिए क्रिया में पूर्ण रूपसे लग जाओ ॥२१-२७॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथैकादशोऽध्यायः

श्रीमहावतारचरितम्

स्वगुरोः चरितं रम्यं यथास्ति लाहिडी महान् ।
तत्सर्वं स्वयमेवात्र सर्वान् वक्ति यथार्थतः ॥१॥
पर्वते शिखरे रम्ये हिमालस्य चोत्तरे ।
बदरीकाश्रमपार्श्वे सशरीरं महान् गुरुः ॥२॥
अवतारस्तु योगस्य चाद्यापि विहरत्यसौ ।
न हि पूर्वजशास्त्रेषु समुल्लेखोऽस्ति कुत्रचित् ॥३॥
तथापि परमात्मासौ लोकस्योद्धारपूर्वकम् ।
पावयत्येव सततं हिमवन्तं युगाद् युगम् ॥४॥

अध्याय-११

श्रीमहावतार बाबाजीका जैसा पवित्र चरित्र है उसे स्वयं ही श्री लाहिडीमहाशय वतारहे हैं उसे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है –

हिमालय के उत्तर भाग श्री बदरीकाश्रम के समीपवर्ती गुफाओं में, पर्वत शिखरों में आजभी महान् गुरु सशरीर उपस्थित हैं। वे योग के अवतार हैं। किन्तु किसी पूर्व लिखित पुराण आदि शास्त्रीय ग्रन्थों में उनका उल्लेख नहीं है। फिर भी परमात्मा अपने इच्छा से इन गुरु के रूप में आज भी लोक उद्धार हेतु युगों से उन हिमालय प्रदेशोंको पवित्र कर ही रहे हैं ॥१-४॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

न कालस्य क्वचिद् दृष्टः प्रभावोऽस्मिन् गुरौ यतः ।
न वा देशस्य भाषाया नापि सम्बन्धिनः क्वचित् ॥५॥
मुमुक्षूणां हितायैव प्रचोदयति मानवान् ।
येषां भावोऽस्ति संशुद्धो येऽपि रक्ता न लौकिके ॥६॥
भोगे ह्यात्मनि वै येषां निष्ठा चैकान्तिकी मता ।
दीक्षयित्वा क्रियायोगात् तारयत्येव तान् यतः ॥७॥
एकान्तवासी निरतो योगे सशरीरं सदा ।
युगेभ्यो वर्तते लोकान् मोक्तुं भारतवर्षकम् ॥८॥
रक्षयितुञ्च तत्रैव लग्नोः तपसि श्रद्धया ।
मृत्युञ्जयोऽयं पुरुषः ह्यवतारस्तु विद्यते ॥९॥

श्री महावतार गुरु में कालका कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता, इसी प्रकार देशका प्रभाव, भाषाका प्रभाव और किसी जाति कुल सम्बन्धका प्रभाव भी दृष्टि गोचर नहीं होता । वे तो केवल मुमुक्षु जनों के हित के लिए कार्य करते रहते हैं । जिनका भाव शुद्ध हो, जो लौकिक उपलब्धि के लिए मात्र संलग्न नहीं हैं, जो भोग में आसक्त नहीं हैं, जिनकी निष्ठा आत्मज्ञान में है वैसे लोगों को श्री बाबाजी महाराज अवश्य ही क्रियादीक्षा के द्वारा संसार से मुक्त करते हैं ॥५-७॥

वे एकान्तवासी बाबाजी महाराज योग में, समाधि मे रत होते हुए सशरीर युगों से लौकिक जनों के मुक्ति एवं भारतवर्ष के रक्षा के लिए तपस्या में संलग्न हैं । वे मृत्युञ्जय पुरुष हैं, लगता है

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्वेच्छया परमात्मैव शरीरं धृतवान् इति ।
अवतारशब्दगम्यश्चार्थो भवति शास्त्रतः ॥१०॥
मानवकल्पनातीता ह्यवस्था तस्य विद्यते ।
क्षुद्रा मानवदृष्टिस्तु न भेत्तुं शक्नुयात् क्वचित् ॥११॥
तस्य स्वरूपमित्येव वक्तुं सम्प्रति शक्यते ।
अतीन्द्रियदिव्यदृष्टियुक्तो जानाति कुत्रचित् ॥१२॥
नान्ये तस्य स्वरूपन्तु विजानन्ति यथार्थतः ।
योगैश्वर्यमयीं शक्तिं न वयं युक्तितः क्वचित् ॥१३॥
शास्त्रतोऽपि च तज्ज्ञातुं प्रभवामः कथञ्चन ।
अबोध्यत्वं किञ्च रम्यचरित्रं तदीयं मतम् ॥१४॥

परमात्मा ही स्वेच्छा से शरीर धारणकर के रहते हैं और 'अवतार' शब्दका अर्थ भी शास्त्रीय दृष्टि से यही होता है ॥८-१०॥

उनकी जो अलौकिक अवस्था है उसे मानवकल्पनातीत कहना चाहिए । उन्हें क्षुद्र मानवीय दृष्टि कभी भी पता नहीं लगा सकती ॥११॥

उन्हें तो, अथवा उनका वास्तविक स्वरूप अतीन्द्रिय, दिव्यदृष्टि संपन्न कोई योगी अथवा देवता ही जान सकता है ।

उनकी योगैश्वर्यमयी विशिष्ट अवस्थाको यथार्थरूप से कोई भी जान नहीं सकता । किसी तर्क या शास्त्रीय दृष्टिकोण से उन्हें और उनकी वास्तविक अवस्थाको हम नहीं जान सकते । क्यों कि उनका चरित्र अबोध्य, विशिष्ट एवं अगम्य है ॥१२-१४॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जीवनेषु हि ये मुक्ता ज्ञानाद् येऽपि च सिद्धताम् ।
याता ये किञ्च सम्पूर्णमुक्तौ याता यथार्थतः ॥१५॥
मायापाशेषु नैवात्र बध्यन्ते द्विविधा हि सा ।
विक्षेपावरणाभ्यां तु साच्यादयति लौकिकान् ॥१६॥
किन्तु मुक्तान् न सा किञ्चित् कर्तुं पारयति क्वचित् ।
जन्ममरणचक्राद् वा पूर्णतो निर्गता मताः ॥१७॥
तेनैव न हि ते लोके भौतिकं शरीरं क्वचित् ।
धारयन्ति किन्तु केचिल् लोकानां हितकाम्यया ॥१८॥
धारयन्त्येव नैवात्र स्वेच्छा कारणतां व्रजेत् ।
तादृशैः शरीरै-र्यत्नाल् लोकस्य क्रियते सदा ॥१९॥

जीवन में ही जो मुक्त है और ज्ञान के द्वारा जो सिद्ध अवस्था में है, और सम्पूर्ण मुक्ति के क्रम में जो प्राप्त है, वे ही उन्हें जान सकते हैं ॥१५॥

वे सबलोग माया के पाश में बँधे नहीं होते । मायाकी दो अवस्था होती हैं आवरण और विक्षेप । उन्हीं से लोगों को माया हमेशा ढकती है किन्तु मुक्त पुरुषों को वह नहीं ढक सकती । महावतार बाबाजी भी उसी अवस्था में हैं इसीलिए माया या प्रपञ्चका उन तक पहूँच ही नहीं है । इसीलिए वे बाबाजी जन्ममरण चक्र से पूर्ण मुक्त हैं ॥१६-१७॥

इसीलिए महावतार बाबाजी महाराज भी कभी भी भौतिक रूप से लोगों के समक्ष सार्वजनिक रूप से उपस्थित नहीं होते हैं । किन्तु कभी कभी लौकिक जनों के कल्याणार्थ शरीर धारण करते भी हैं । इस में और कोई कारण नहीं है केवल करुणा के कारण स्वेच्छा से ऐसा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कल्याणमिति नैवात्र स्वार्थं स्वीयं भवेत् क्वचित् ।
महावतारपुरुषा येऽपि मुक्ता हि जीवने ॥२०॥
तुच्छलौकिकसम्बन्धव्यवस्थायाः कथञ्चन ।
अधीना न भवन्त्येव सर्वतन्त्रस्वतन्त्रताम् ॥२१॥
स्वीकृत्यैव सदा ह्यात्मरता भवन्ति पारगाः ।
त एव सततं तुच्छस्वार्थहीना परार्थतः ॥२२॥
लोककल्याणकामास्तु तत् कुर्वन्ति यथार्थतः ।
तेषां देहास्तु लोकस्य किं वा प्रकृतितो न हि ।२३॥
सम्बधास्तु प्रजायन्ते शुद्धाः स्फटिकसन्निभाः ।
ऋृषि+ऋृणात् तथा देव+ऋृणात् पितृ+ऋृणात् पुनः ॥२४॥

करते हैं। ऐसे शरीर के द्वारा प्रयत्न पूर्वक लोककल्याण करते रहते हैं इस में सन्देह नहीं है। इस कार्य में उनका कोई भी स्वार्थ नहीं होता। क्यों कि ऐसे महावतार पुरुष और जो भी मुक्त पुरुष हैं वे तुच्छ सांसारिक सम्बन्ध और व्यवस्था के अधीन कभी भी नहीं होते वे तो सर्वतन्त्रस्वतन्त्र होते हैं। इसी लिए सदा अमर होते हुए, संसार सागर से पार होते हुए वे मुक्त हैं और तुच्छस्वार्थरहित होते हैं। यथार्थ रूप से लोककल्याण कामना से भरपूर होते हैं। उनके शरीर लौकिक और प्राकृतिक भी नहीं होते। इसी लिए उनके सारे सम्बन्ध शुद्ध और पवित्र स्फटिक के तरह स्वच्छ होते हैं। वे ऋृषिऋृण, देवऋृण, और पितृऋृण से पूर्ण मुक्त, सभी लौकिक सम्बन्ध से भी मुक्त होते है और उनके शरीर प्रकाश किरणों अथवा पुञ्जों से निर्मित

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मुक्ता लौकिकसम्बन्धाच्चापि सर्वत्र ज्ञायताम् ।
प्रकाशपुञ्जवत्तेषां शरीराणि भवन्ति च ॥२५॥
शुद्धाः सर्वत्र सञ्चारशक्ताः सिद्धियुता हि ते ।
भवन्ति ह्याकृतौ किञ्चित् वैशिष्ट्यं नैव लक्ष्यते ॥२६॥
क्वचित्तेषां न वा च्छाया भूमौ पादो न दृश्यते ।
चित्रस्वभावपुरुषाः स्वेच्छया विचरन्ति च ॥२७॥
अनुशासति वै केचित् शिष्यान् केचन नैव तत् ।
कुर्वन्ति केवलं देशभ्रमणं किञ्च केचन ॥२८॥
समाधौ निरता गुह्यगुहासु ह्यपरे पुनः ।
लोकसेवासु संलग्ना जनाँश्च तारयन्त्यहो ॥२९॥

होते है । वे स्वेच्छासे शरीर धारण भी करते हैं ॥१८-२५॥

उनके शरीर शुद्ध और सर्वत्र सञ्चार के योग्य, सिद्धि से युक्त, विचित्र होते हुए भी आकृति में विशेषता परिलक्षित नहीं होती । कहीं कभी उनकी छाया नहीं दिखती, कभी पृथ्वी में पाव नहीं होता, वस्तुत इन सिद्धोंका स्वभाव, विचित्र ही होता है । वे स्वेच्छा से विभिन्न रूपों, आकृतियों में विचरण करते ही रहते हैं ॥२६-२७॥

कुछ सिद्धसन्त शिष्यों को शिक्षा देते हैं, कुछ यह कर्म भी नहीं करते, कुछ लोग केवल संसारका भ्रमण ही करते रहते हैं । कुछ सिद्ध मुक्तपुरुष गुप्त गुफाओं में केवल निर्विकल्प समाधि में रहते हैं । और कुछ सिद्ध लौकिक जनों के सेवा में संलग्न होते हुए जनताओं को संसार से तारते रहते हैं। इनसिद्ध पुरुषोंका काम ऐसा ही होता है यह

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इदमित्थं च कर्तव्यं तेषां नैवात्र दृश्यते ।
तेनैव किल ते सर्वे स्वात्मरामा मता बुधैः ॥३०॥
मठपर्वतदुर्गेषु गृहस्थेषु गुहासु च ।
संलग्नाः कर्मसु केचिन् निर्बन्धा अपरे मताः ॥३१॥
न गुह्यं ज्ञायते तेषां भिन्नरुचियुता हि ते ।
तेषां हृत्पटलं नैव केनचिज् ज्ञायते क्वचित् ॥३२॥
किन्तु कारुणिकाः सर्वे स्वात्मरामा बुधाश्च ते ।
प्रणम्याः सततं सर्वैः सज्जना बोधिचित्तकाः ॥३३॥
भिन्नलीलासु संलग्नाः भिन्नपरम्परासु च ।
भवन्ति ह्यभवन् पूर्वं भविष्यन्ति च भूतले ॥३४॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्ड एकादशोऽध्यायः ॥

कहा नहीं जा सकता, इसी लिए इन्हे 'आत्मराम' अपने में ही रमण करने वाले कहा जाता है। विचित्र स्वभाव से युक्त वे सब विभिन्न रूप, कर्म, अवस्थाओं में रहते हैं। कुछ मठों में, कुछ पर्वत, कुछ दुर्गमस्थानों में, कुछ गृहस्थ होकर और अन्य कुछ गुफाओं में रहते है। कुछ सिद्ध काम करते हैं कुछ केवल आत्मरमण में रत रहते हैं ॥२८-३१॥

उनका वास्तविकरूप नहीं जाना जा सकता । वे विभिन्न रुचियों में दिखते हैं। उनका हृदयका भाव जानना संभव नहीं है। किन्तु वे सब कारुणिक, स्वात्मराम, विद्वान् होते हैं। वे सब प्रणम्य हैं। सज्जन होते हैं और बोधिचित्त होते हैं। वे विभिन्न लीलाओं में लगे हुए विभिन्न परम्परा में होते हैं। और भूतकाल में भी थे और भविष्य में भी इस पृथ्वी लोकपर होंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥३२-३४॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ द्वादशोऽध्यायः

महापूरुषचरितं विचित्रं विविधं किल ।
तत्सर्वं वदति नूनं श्रीशिवेन्दुर्महाशयः ॥१॥
केचिद् उन्मत्तवल्लोके केचिन्मूकायिता: तथा ।
जडवच्चापि लोकेषु सिद्धाः चरन्ति गूढतः ॥२॥
तद्वदेव हि राजर्षेर्भरतस्य महीतले ।
उत्तरे हिमवत्प्रान्ते बदरीसन्निधौ सदा ॥३॥
गुहासु सततं शिष्यमण्डलेन वृता बुधाः ।
महावतारगुरवो वसन्ति साम्प्रतं तथा ॥४॥

अध्याय-१२

महापुरुषों के चरित्र विचित्र एवं विविध होते हैं, उनके स्वभाव और स्वरूप को श्री शिवेन्दुलाहिडी यहाँ वता रहें हैं ॥१॥

कुछ सिद्ध उन्मत्त के तरह प्रतीत होते हैं, कुछ मूक लगते हैं । कुछ जड प्रतीत होते हैं इस प्रकार वे आत्मगोपनापूर्वक विचरण करते ही रहते हैं । उसी प्रकार भारतवर्ष के उत्तर भाग हिमालय क्षेत्र बदरीनाथ के समीपवर्ती पर्वतगुफाओं में शिष्यों के सहित विद्वान् महाज्ञानी योगी महावतार बाबाजी महाराज इस समय रहते हैं ॥२-४॥

इस प्रकार के महापुरुष, जीवन और मृत्युको भी ठीक से जानते हैं क्यों कि वे सत्य और शाश्वत अवस्थाको भी जानते हैं । जिनका

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

एवंविधा हि पुरुषा जीवनं मुत्युमेव च ।
सम्यक्तया विजानन्ति सत्यं तत्शाश्वतं यतः ॥५॥
आभ्यन्तरे किञ्च बाह्ये येषां नष्टं हि बन्धनम् ।
सत्यं सर्वं यथारूपं चोद्घाटितं न संशयः ॥६॥
एते भागवताः प्रोक्ताः चैतन्यमयपूरुषाः ।
ईश्वरा एव ते सर्वे किञ्च ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥७॥
ब्रह्मविद् जायते ब्रह्म तथैवैते तु ज्ञानिनः ।
सर्वेषां वर्तते तावत् तथैवेहापि ज्ञायताम् ॥८॥
महावतारगुरूणां स्वरूपं चिन्तनं पृथक् ।
सर्वेभ्यो वर्तते तावन् महापुरुषजन्मसु ॥९॥

आन्तरिक एवं बाह्य बन्धन नष्ट हो चुका होता है उनके समक्ष वास्तविक सत्य यथार्थ रूप में उद्घाटित होता है। वे सब भागवत पुरुष हैं, चैतन्यमय पूरुष हैं, वे ईश्वर है, और ब्रह्म में ही अवस्थित हैं ॥५-७॥

ब्रह्मको जाननेवाला ब्रह्म ही होता है। इसी लिए वे ज्ञानी पुरुष भी ब्रह्म ही हैं। सभी ज्ञानियों की यही स्थिति होती है। यहाँ भी यह जान लेना चाहिए ॥८॥

महावतार बाबाजीका स्वरूप और चिन्तन कुछ भिन्न प्रतीत होता है। वे तो महापुरुषों के जन्म के विशेष प्रयोजनों की पूर्ति के लिए उनका सहयोग करते रहते हैं। साथ ही जिन लोगों की बुद्धि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रयोजनविशेषं यत् तस्यैव पूर्तये तदा ।
साहाय्यमथ लोकस्य व्यवस्थासु मतिर्न हि ॥१०॥
संलग्ना वर्तते येषां येऽपि निर्वाणमार्गगाः ।
तेषां सर्वत्र साहाय्यं क्रियायोगस्य माध्यमात् ॥११॥
कर्तुमेव हि ते तत्र वसन्ति ध्यानमार्गगाः ।
स्वयं ते सततं शिष्यान् शिक्षयन्ति स्वपार्श्वगान् ॥१२॥
लोकस्थान् शिष्यनिवहान् श्री लाहिडिमहाशय-
माध्यमेनैव सततं शिक्षयन्ति सदैव ते ॥१३॥
स्वयमपि च ते योग्यतमान् पूरुषपुङ्गवान् ।
शिक्षयन्त्येव सततं देशबन्धनवर्जिताः ॥१४॥

सांसारिकता से उपर है, अर्थात् जो मोक्षकी इच्छा रखते हैं या निर्वाण चाहते हैं उनका क्रियायोग के माध्यम से सहयोग करना भी इनका उद्देश्य है। वे निरन्तर ध्यान में रहते हैं और साथ ही शिष्यों का भी मार्गदर्शन करते रहते हैं। लोक कल्याण मूल भाव इनका रहता है। लौकिक शिष्यों को वे श्रीलाहिडी महाशय के माध्यम से ही शिक्षित करते रहते हैं ॥९-१३॥

वे स्वयं भी योग्यतम श्रेष्ठ शिष्यों को शिक्षित करते रहते हैं। वे सदा ही देश और कालके बन्धन से परे हैं ॥१४॥

अद्वैत दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य भगवत्पाद (शंकराचार्य) को भी, जो श्रीगोविन्दपाद के शिष्य थे, क्रियायोग की दीक्षा इन्होंने दी थी। श्री

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अद्वैतदर्शनविज्ञान् भगवत्पादसंज्ञकान् ।
गोविन्दपादशिष्यान् वै क्रियायोगं ददुः पुरा ॥१५॥
श्री कवीरान् महाभागान् मध्यकालगतान् पुरा ।
शिक्ष्ययामासुः ते युक्त्या क्रियायोगं न संशयः ॥१६॥
अन्यान् अपि महाभागान् काले काले महान् गुरुः ।
शिक्षयामास तद्योगं करुणावशगस्त्वसौ ॥१७॥
एकोनविंशशतकशिष्यो लाहिडिपुङ्गवः ।
येन लुप्तक्रियायोगः पुनः संस्थापितोऽभवत् ॥१८॥
महावतारगुरवः सर्वदा मोक्षदायकान् ।
तरङ्गान् प्रेषयन्त्येव जनान् इत्येव ज्ञायताम् ॥१९॥

कवीर महाशय, जो मध्य काल में हुए थे उन्हें भी इन्होंने दीक्षित किया था, इस में सन्देह नहीं है ॥१५-१६॥

और भी अनेक लोगोंको अपने करुणा के कारण विभिन्न समय में इन्होंने अपने क्रियायोग की शिक्षा दी है ॥१७॥

१९ वीं शताब्दी में श्री लाहिडी महाशयको इन्होंने शिक्षा दी जिससे यह लुप्त क्रियायोग फिर संसार में प्रतिष्ठित हुआ ॥१८॥

वे महावतार बाबाजी निरन्तर भक्तों, योगिओं और शिष्यों को मोक्षदायक तरङ्ग भेजते ही रहते हैं ॥१९॥

इस युग में लोगों का जैसै कल्याण संभव है उसी प्रकार आध्यात्मिक प्रक्रियाओंका निर्माण इन्होंने किया है ॥२०॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अस्य युगस्य चोद्धारो यथा सञ्जायते तथा ।
आध्यात्मिकप्रक्रियास्तु निर्मिताः सन्ति युक्तितः ॥२०॥
शरीरवन्तः ते नूनं महायोगाश्रयेण च ।
राष्ट्रेषु जायमानानां युद्धानामथ सत्वरम् ॥२१॥
जातिवादस्य त्यागाय धर्मभेदगता च या ।
मतिस्तु विद्यते यापि तस्या अपि च त्यागतः ॥२२॥
कल्याणं जायतां तावदित्येव विद्यते तथा ।
भौतिवादजातानामशुभानां क्रियात्मनाम् ॥२३॥
परित्यागाय सततं चोदयन्त्येव ते स्वयम् ।
आधुनिकस्य कालस्य युगस्यापि विशेषतः ॥२४॥

उन्होंने एक विशिष्ट शरीर धारण किया है, निश्चय भी वह यौगिक शरीर है । वे निरन्तर राष्ट्रों में होने वाले भयङ्कर युद्धों से मानवों की रक्षा करते हैं अथवा जातिवाद से पीडित मानवों की रक्षा तथा धर्म सम्प्रदायगतभेदद्वारा पीडित मानवों की रक्षा में लगे रहते हैं । इस प्रकार के विभेदों के त्यागद्वारा एवं योग आदि आध्यात्मिक उपायों से परस्पर सभी लोगोंका कल्याण हेतु निरन्तर प्रयासरत रहते हैं । भौतिकवाद से उत्पन्न अशुभ क्रियाओं के परित्याग के लिए मानवों को वे प्रेरित करते रहते हैं । इस आधुनिकयुग के, विशेष कर के आधुनिक युरोपीय सभ्यता की जो जटिलता है उसे वे भलिभाँती जानते हैं, उसका सारे मानवों पर जो प्रभाव है उसे भी वे ठीक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

युरोपीयसभ्यतायाः जाटिल्यं यद्धि वर्तते ।
मानवेषु प्रभावोऽपि यादृशो जायते तथा ॥२५॥
सर्वतथ्यं हि ते नूनं जानन्त्येव न संयशः ।
यादृशी सभ्यता तत्र युगात् प्रचारतां गता ॥२६॥
तया नूनं मानवानां मुक्तये योग एव हि ।
मार्गत्वेन स्थितस्तावत् तस्याश्रयणतो भवेत् ॥२७॥
भौतिकदुःखतप्तानां मानवानां भविष्यति ।
मुक्तिरित्येव वै ते तु शिष्यान् युरोपदेशकान् ॥२८॥
विरागभावनायुक्तान् कल्याणं किल योगतः ।
किञ्च पातालदेशाँश्च प्रेषयामासुः ते स्वयम् ॥२९॥

तरह से जानते ही हैं। सभी तथ्यों से वे पूर्ण परिचित हैं। जिस प्रकारकी सभ्यता संसार में प्रचलित हैं उससे मुक्ति के लिए केवल योग ही समर्थ है। योग ही एकमात्र मार्ग जिससे वे समस्त पीडित मानव मुक्त हो सकते हैं। इसी लिए भौतिक दुःखसे संतप्त मानवों की मुक्ति हो इसिलिए अपने युरोपीय शिष्यों को जो वैराग्य साधन संपन्न हैं उनके कल्याणार्थ साथ ही अमेरिकन जो शिष्य हैं उनकी भी कल्याणकामना से उन्होंने अपने प्रयासद्वारा योगमार्ग सिखाने के लिए अनेक आत्मदर्शी योगियों को उन उन देशों में भेजा है ॥२१-२९॥

जो भी लोग अपना कल्याण चाहते हैं और आत्मोन्नति की कामना करते हैं और कल्याणकी चाह रखते हैं और जिनके मन में

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

येऽपि वाञ्छन्ति कल्याणं ह्यात्मोन्नतिं च ये जनाः ।
भविष्यतीति कल्याणं येषां मनःसु विद्यते ॥३०॥
व्याकुलता सभ्यतायाः तेषां कृते तु निश्चयात् ।
आत्ममुक्तेस्तु मार्गस्य दाता योगो भविष्यति ॥३१॥
यूरोपेषु भारतेषु पातालेषु च सर्वदा ।
सेतुरूपेण योगोऽयं सामान्येनैव स्थास्यति ॥३२॥
उभयत्रैव योगस्य प्रचारः क्रियतां स्वयम् ।
सर्वैः सर्वस्य कल्याणं नूनं तेन भविष्यति ॥३३॥
महावतारगुरवः प्राहुरित्येव सर्वदा ।
स्वीयान् शिष्यान् महाभागान् लाहिडिप्रमुखान् यतः ॥३४॥

सभ्यताकी व्याकुलता विद्यमान है उनके लिए निश्चय भी आत्ममुक्तिका मार्ग यह योग ही है । यूरोप और अमेरीका और भारतीय सभ्यताओं के बीच में यह योग सेतुका काम करेगा, दोनों स्थानों पर इस योगका प्रचार करना चाहिए जिससे सभी लोगोंका कल्याण निश्चय भी होगा ही । यह वात स्वयं ही महावतार बाबाजी ने अपने सभी शिष्य जिस में श्री लाहिडी महाशय भी संमिलित थे को वताया था ॥३०-३४॥

संसार में जो दुःख विद्यमान हैं वे सभी मानवों में समान रूप से हैं । सभी मानव दुःख से घिरे हुए हैं । इसी लिए दुःख के नाश के लिए (सभी जीवों का) गुरु देवने प्रयत्न करने के लिए वताया है । देश, कुल, जाति आदि सभी के भिन्न हैं फिरभी दुःखतो सभी लोगों में

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

समानधर्मता चास्ति दुःखस्य मानवेषु च ।
सर्वे दुःखेन संश्लिष्टाः तेनैव यत्यतां सदा ॥३५॥
दुःखहानाय प्राणिनामाहुस्ते गुरवः पुरा ।
देशेषु किल भिन्नेषु सस्त्वपि समता मता ॥३६॥
दुःखेन व्यथितो लोकः सर्वत्रैवावधार्यताम् ।
महावतारगुरुणामैतिह्यं नैव विद्यते ॥३७॥
प्रमाणजातं तत् किञ्चिद् नाश्चर्यं तत्र चिन्त्यताम् ।
कस्यामपि शताब्द्यां ते न सार्वजनीना यतः ॥३८॥
आत्मगोपनभावेन गूढरूपेण सर्वदा ।
ईशवत् सर्वकार्याणि कुर्वन्ति नात्र संशयः ॥३९॥

समानरूपसे विद्यमान है । सारा संसार दुःख में निमग्न है यह जान लेना चाहिए ॥३५-३६॥

महावतार बाबाजी का कोई ऐतिहासिक विवरण उपलब्ध नहीं है । उनके विषय में कोई प्रमाण भी उपलब्ध नहीं है । क्यों कि किसी भी शताब्दी में वे सार्वजनिक नहीं हुए । आत्मगोपन करते हुए गूढ रूपसे ईश्वर के तरह ही अपना कार्य करते रहते हैं । इस में संशय नहीं है ॥३७-३९॥

उनकी इच्छा के विना कोई भी उन्हें कभी देख नहीं सकता । युगव्यापी उनके विशिष्ट कर्म में किसी भी प्रकारका लौकिक प्रचारात्मक भ्रम उनके विषय में कभी नहीं रहा है ॥४०॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तेषामिच्छां विना कोऽपि तान् द्रष्टुं नैव शक्नुयात् ।
युगव्यापककार्येषु भ्रमणूर्णस्य लौकिक-
प्रचारस्य क्वचित्स्थानं तेषां नैवात्र विद्यते ॥४०॥
रामकृष्णादयो लोके पृथिव्यां ते यदापि च ।
आविर्भवन्ति वै कर्तुं कर्मजातं विशेषकम् ॥४१॥
जाते कर्मणि ते यान्ति स्वलोकं पुनरेव हि ।
महावतारसदृशा अनेके पुरुषाः तथा ॥४२॥
न भवन्ति किन्तु तेषां पार्थक्यं तत्र ज्ञायताम् ।
महावतारगुरूणां तथा कार्यं न विद्यते ॥४३॥

भगवान् राम, कृष्ण आदि अवतार पुरुषों का विशिष्ट उद्देश्य रहता है अवतरणमें, किन्तु बाबाजी महाराजका इस प्रकारका उद्देश्य निहीत नहीं है। उन में अवश्य ही अवतार गतभेद विद्यमान है। वे तो केवल धैर्यपूर्वक मानवों के विकास हेतु कार्य करते रहते हैं। एक युग से दूसरे युग-इस प्रकार अपना शरीर धारण किए हुए वे आ रहे हैं। और आध्यात्मिक रूप से अपने काम करते रहते हैं। साथ ही मानवों पर विशिष्ट आध्यात्मिक कृपा की वर्षा भी करते ही रहते हैं। वे सर्वदा जनताकी स्थूल दृष्टि से दूर रहते हैं। किन्तु योग ऐश्वर्यद्वारा इच्छा मात्र से तिरोभाव और आविर्भाव होते रहते हैं। साथ ही सभी प्राणियों की मानसिकी अवस्था को वे स्वतः जानलेते

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मानवानां विकासाय कार्यं कुर्वन्ति धैर्यतः ।
युगाद् युगं हि ते स्वीयं शरीरं धारयन्ति च ॥४४॥
कर्माणि किल कुर्वन्ति चाध्यात्म्भावतः सदा ।
कृपां चापि च कुर्वन्ति मानवान् नात्र संशयः ॥४५॥
जनतानां स्थूलदृष्ट्या सुदूरं हि भवन्ति च ।
योगैश्वर्येण सर्वत्र हीच्छामात्रेण ते सदा ॥४६॥
तिरोभवन्ति दृश्यन्ते सर्वेषां मनसःस्थितिम् ।
जानन्ति लौकिकं कृत्यमकिञ्चित्करमेव तत् ॥४७॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे द्वादशोऽध्यायः ॥

हैं इसी लिए उनके समक्ष सब कुछ व्यक्त है और उनका कुछ भी कर्तव्य अकिञ्चित् कर ही समझना चाहिए ॥४१-४७॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ त्रयोदशोऽध्याय:

महावतारगुरूणां चरित्रं सकलं महत् ।
निबध्नाति स्वयं प्राज्ञः श्रीशिवेन्दुर्महाशयः ॥१॥
विदन्त्येव तथा सर्वप्राणिनां भावि कर्म च ।
भूतं तथा वर्तमानस्वरूपमपि ते स्वयम् ॥२॥
विदन्त्येवेति नैवात्र भ्रमावकाशो ज्ञायताम् ।
तेषां शिष्या अपि तेषां विषये न वदन्ति च ॥३॥
सामान्यतः पुस्तकानि चापि नैवात्र ज्ञायताम् ।
परम्परा गभीरास्ति तेषां गुप्ता हि धारणा ॥४॥

अध्याय-१३

श्री महावतार बाबाजीका जो विचित्र चरित्र है उसे स्वयं ही श्री शिवेन्दु लाहिडी जी यहाँ निम्नरूपसे वता रहे हैं ॥१॥

श्री महावतार बाबाजी सभी प्राणियों के भावी कर्म को और भूत तथा वर्तमान अवस्थाको भी निश्चय ही जानते ही हैं। वे सब कुछ जानते हैं इसलिए किसी भ्रमका कोई भी स्थान नहीं है। उनके शिष्य भी उनके विषय में कुछ वताते नहीं हैं। सामान्य रूपसे पुस्तकों में भी उनके विषय में कुछ नहीं मिलता है। उनकी परम्परा अत्यन्त

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विद्यते नैव लोकेषु न तथा बाह्यतः क्वचित् ।
प्रचारो विद्यते किञ्च धारा ह्यान्तरिकी मता ॥५॥
तेनैव नैव लोकेषु प्रचारस्तु विलोक्यते ।
लोकानां ज्ञानतः किञ्च प्रजाया अपि किञ्चन ॥६॥
तेषां प्रयोजनं नास्ति ह्यात्मरामा हि ते मताः ।
जन्मस्थानादिकं तेषां किञ्चिच्चापि न ज्ञायते ॥७॥
कालोऽपि नैव केनापि ज्ञायते साम्प्रतं तथा ।
केचिद् वदन्ति नैपाला हीम आसन् परे तथा ॥८॥
कूर्मधरैव वै तेषां जन्मस्थानं हि विद्यते ।
अपरे मन्वते ह्यन्यत् परे चान्यन्न संशयः ॥९॥

गंभीर एवं उनकी प्रचारयोजना भी गुप्त ही है । आन्तरिक और बाह्य लौकिक प्रचार उनके विषय में अत्यल्प ही है। केवल योगरूपी धारा आन्तरिक रूपसे बह रही है। अत एव लोक में उनका प्रचार नहीं के वरावर है। लोकमानसों के ज्ञान या प्रजा के ज्ञान से उनका कोई भी प्रयोजन नहीं है वेतो 'आत्मराम' हैं । इसी प्रकार इनका काल भी किसीको ज्ञात नहीं है। कुछ लोग इन्हे नेपाली बोलते हैं, कुछ लोग कुमाउँ के हैं ऐसा कहते हैं। और लोग और कुछ, वे अन्य लोग और ही कुछ मानते हैं। अथवा वे यहीं के हैं ऐसा कोई कुछ भी नहीं कहा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इदमित्थं न केनापि प्रोच्यते साम्प्रतं तथा ।
परिवारोऽपि नैवात्र ज्ञायते केनचित् क्वचित् ॥१०॥
सर्वासां किल भाषाणां ज्ञानयुक्ता हि ते बुधाः ।
हिन्द्यामेव हि भाषन्ते प्रायशो विदुषां मतम् ॥११॥
तेषां नामानि बहूनि भक्तैस्तु श्रद्धया सदा ।
प्रोच्यन्ते तेषु 'बाबाजी' प्रसिद्धं परमं गतम् ॥१२॥
महामुनिर्महाराजो महायोगी च त्र्यम्बकम् ।
शिवबाबा तथा हेडाखान-बाबा इति क्रमात् ॥१३॥
अनेकानि च नामानि सन्ति सम्प्रति ज्ञायताम् ।
महावतारबाबाजी इत्येव सुधियः स्वयम् ॥१५॥

जा सकता ॥२-१०॥

वे सभी भाषाओं को समझते हैं और प्रायः हिन्दी भाषा में ही बोलते हैं ऐसा विद्वान् व्यक्तियों का कहना है ॥११॥

उनके अनेक नाम हैं ऐसा उनके भक्त वतलाते हैं । श्रद्धा से लोग उन्हें बाबाजी बोलते हैं। यही नाम अत्यन्त प्रसिद्ध हो गया है । कुछ लोग उन्हें महामुनि, कुछ महाराज, महायोगी, त्र्यम्बकबाबा, शिवबाबा, हेडाखानबाबा आदि नामों से पुकारते हैं, जानते हैं। यद्यपि उनके अनेक नाम हैं फिर भी महावतार बाबाजी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वदन्ति तत्र तान् नूनं भक्ताः शिष्या हि श्रद्धया ।
यद्यपि सन्ति नामानि ह्युच्चार्यन्ते च श्रद्धया ॥१६॥
भक्तैः तानि च सर्वाणि ज्ञायन्ते साम्प्रतं न हि ।
वंशावलिस्तथा जन्मकालस्थानादिकं यदि ॥१७॥
ज्ञायते नैव चेत्तात किं तेनात्र प्रजायते ।
ईश्वराणां भवेन्नैव ज्ञानं तादृशजन्मनाम् ॥१८॥
किं तेन जायते तात ह्यजन्मानस्तु ते मताः ।
प्रातिनिध्यं गता येऽपि ईश्वरस्य यथार्थतः ॥१९॥
ते कथं जन्मकालादि स्थापयेयुर्मनुष्यवत् ।
युगानि यान्ति चायान्ति मृयन्ते जन्तवस्तथा ॥२०॥

ऐसा ही विद्वान् लोग बोलते हैं । उनके भक्त और शिष्य इसी नाम से श्रद्धापूर्वक उनका स्मरण करते रहते हैं । उनके भक्त कितने नामों से उन्हें पुकारते हैं यह सब कुछ जानलेना संभव नहीं है । उनकी वंशावली, जन्मस्थान आदि ज्ञान नहीं भी है तो इससे क्या फरक पडता है !! इस प्रकार के ईश्वर पुरुषों के विषय में प्रायः जानकारी नहीं ही होती है । क्यों कि वे तो निश्चय ही अजन्मा ही होते हैं । वे तो ईश्वर के प्रतिनिधि होते हैं । वे कैसे मनुष्यों के तरह जन्म-काल आदि रख सकते हैं । युग आते हैं जाते हैं, प्राणियाँ मरती

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जन्म गृह्णन्ति किन्त्वत्र ते तु भवन्ति संस्थिताः ।
मृत्युञ्जया इमे प्रोक्ता महावतारपूरुषाः ॥२१॥
पश्यन्ति सततं लोकान् शिष्यान् संचोदयन्ति च ।
जागरयन्ति वै तेषां क्रियायोगस्य माध्यमात् ॥२२॥
पूर्णमुक्ता महाभागा महावतारपूरुषाः ।
कल्याणाय सदा रक्ता मानवानां न संशयः ॥२३॥
येऽपि नामानि वै तेषां गृह्णन्ति श्रद्धया यदि ।
तदानीम् आशिषां वर्षा तेषु नूनं प्रजायते ॥२४॥
अत एव हि तच्छिष्या गृह्णन्ति श्रद्धया यतः ।
महावतारनामानि पुण्ययुक्तानि सर्वदा ॥२५॥

जन्मलेती हैं, किन्तु वे तो सदा अमर हैं रहते हैं । वे मृत्युञ्जय महावतार हैं । सब कुछ देखते हैं शिष्य और लौकिक जनों को प्रेरित करते रहते हैं । क्रियायोग के माध्यम से लोगोंको जगाते ही रहते हैं ॥१२-२१॥

पूर्णमुक्त महावतार बाबाजी सदा ही मानवों के कल्याणार्थ संलग्न रहते हैं । जो भी उनका नाम श्रद्धा से लेते हैं उसी समय आशीर्वाद वर्षा उनके उपर होती है इस में सन्देह नहीं है ॥२२-२३॥

इसी लिए उनके शिष्य उनका नाम श्रद्धा और भक्ति से लेते ही

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यदापि येऽपि गृह्णन्ति पुण्यनामानि श्रद्धया ।
कल्याणस्य तु वर्षैव तत्कालं किल जायते ॥२६॥
महावतारगुरूणां शरीरे नैव दृश्यते ।
आयुःप्रभाव इत्येव भवद्भिर्ज्ञायतां सदा ॥२७॥
पञ्चविंशतिवार्षिका इव एते सदैव हि ।
विलोक्यन्त इति नूनं भवद्भिर्ज्ञायतां सदा ॥२८॥
न गौरा न च ते कृष्णा गौरकृष्णा हि ते सदा ।
आकृत्या किल दृश्यन्ते ह्याकृतिर्मध्यमा यतः ॥२९॥
नेत्रे तु किल कृष्णे स्तः शटास्तु ताम्रवर्णकाः ।
देहात् ज्योतिर्निःसरति सर्वदा गुरूणां यतः ॥३०॥

रहते हैं वे निश्चय ही पुण्ययुक्त नाम हैं ॥२४॥

जो भी उनका नाम श्रद्धा से लेते हैं कल्याण की वर्षा उनके उपर अवश्य ही होती है तत्काल ॥२५॥

महावतार बाबाजी के शरीर पर आयुका कोई चिन्ह या प्रभाव दिखाई नहीं देता। वे सदा ही लगभग २५ वर्ष के युवक दिखाई देते है। वे न त गौर वर्ण के हैं न ही कृष्ण, किन्तु गौर कृष्ण मिश्रित स्वरूप के हैं । आकृति उनकी मध्यम प्रकारकी है । साधारण आकृति है । उनके नेत्र काले हैं जटा ताम्रवर्ण के हैं। उनके शरीर से निरन्तर

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दयार्द्रकरुणायुक्ते चक्षुषी किल ज्ञायताम् ।
कदाचिद् दृश्यते साम्यं मुखं तेषां विलोकनात् ॥३१॥
श्रीलाहिडिसमानं हि तदाश्चर्यकरं परम् ।
श्रीलाहिडी यथा प्राह चाकृत्या विषये पुरा ॥३२॥
तेषां साम्यं कदाचितु यथाश्चर्यमयं गतम् ।
अहं पिता ते तु पुत्रा इव तत्र विलोक्यते ॥३३॥
विचित्रं चरितं तेषां कीदृशं वर्तते महत् ।
ज्ञातुं न शक्यते सर्वम् इदमित्थमिति क्रमात् ॥३४॥
तेषां चरित्रस्मरणाद् आश्चर्यं किल जायते ।
लोकोत्तराणां चरितं विचित्रमिति ज्ञायताम् ॥३५॥

ज्योति निकलती ही रहती है, उनके नेत्रों में दया और करुणा सदा ही भरे रहते हैं। उनका मुख मण्डल देखने से आकृति में कभी कभी लाहिडी महाशय के सदृश प्रतीत होती है। लाहिडी महाशय ने भी उनकी आकृति के विषय में कभी कहा था- उनकी आकृति के समता से लगता था कि मैं पिता हूँ और वे मेरे पुत्र। उनका विचित्र चरित्र कितना आश्चर्यजनक है। इसीलिए उनके विषय में सव कुछ जाना ही नहीं जा सकता । उनका चरित्र आश्चर्यजनक है । लोकोत्तर पुरुषोंका चरित्र विचित्र ही होता है। हिमालय में भी वे

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हिमालयेऽपि विविधं चरितं तस्य विद्यते ।
जानन्ति तस्य वै शिष्या योगिनो नात्र संशयः ॥३५॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे त्रयोदशोऽध्यायः ॥

विचित्र चरित्र के कारण लीला में व्यस्त हैं । उनके शिष्य योगिलोग अवश्य ही जानते हैं ॥२६-३५॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

अनेके सन्ति वै शिष्या गुरूणां नात्र संशयः ।
तेषां मुखेभ्यः सकलं चरित्रं तन्निविद्यते ॥१॥
श्रीकेवलानन्दपादा यथाहुः तन्निवेद्यते ।
एकस्मात् शिखाराद् अन्यत् शिखरं यान्ति ते यदा ॥२॥
इच्छामात्रेण वै तेषां मण्डलं किल प्राप्यते ।
अन्यत्‌शिखरमित्येव वैचित्र्यमिदमेव तत् ॥३॥
एकस्माद् अपरं स्थानं भ्रमणं तैर्विधीयते ।
मण्डलं शिष्यवृन्दानां ह्यनुसरति सर्वदा ॥४॥

अध्याय-१४

महावतार पुरुष के शिष्य अनेक हैं, उसी प्रकार उनके शिष्य श्री लाहिडी महाशय के शिष्य भी अनेक हैं उन्ही लोगों के मुख से उनका चरित्र यहाँ वताया जा रहा है ॥१॥

श्री केवलानन्द महाराज, जो श्री लाहिडी महाशय के शिष्य थे, उन्होंने जो कुछ कहा वह यहाँ वताया जाता है। वे श्री बाबाजी महाराज जब अपने शिष्यों के साथ हिमालय के एक शिखर से दूसरे शिखर जब जाते हैं तव वे केवल इच्छा मात्र से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहूँच जाते हैं। यह अत्यन्त विचित्र वात है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर वे भ्रमण किया करते हैं उनका शिष्य समूह उनका अनुशरण करता रहता है। वे महावतार पुरुष एक दण्ड धारण करते हैं। यदि वे

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

एकं दण्डं धारयन्ति ते महापुरुषाः तथा ।
जिगमिषन्ति ते चेत्तु दण्डं स्थानं च धार्यताम् ॥५॥
उच्चारयन्ति हीत्येव तत्क्षणमेव ज्ञायताम् ।
स्थानान्तरस्य सम्प्राप्तिः कदाचित्तु तथा न हि ॥६॥
क्रियते गम्यते पद्भ्यां सर्वैः पर्वतमण्डलान् ।
इच्छामात्रेण ते सर्वं कर्तुं यातुं यथार्थतः ॥७॥
शक्नुवन्त्येव तेनैव तथा कुर्वन्ति सर्वदा ।
तेषामिच्छां विना कोऽपि न तान् द्रष्टुं च शक्नुयात् ॥८॥
स्वेच्छया दर्शनं भक्तान् स्वीयं ददाति ते सदा ।
भिन्नभक्ता भिन्नरूपयुक्तान् पश्यन्ति सर्वदा ॥९॥

दूसरे स्थान पर जाना चाहते हैं तो कहते हैं 'डेरा डण्डा उठाओ' इतना कहते ही वे सब दूसरे स्थानपर पहूँच ही जाते हैं । किन्तु हमेशा यही नियम लागू नहीं होता । कभी कभी वे सब अपने पैर से चलकर ही, या चढकर दूसरे शिखरोंपर जाते हैं । वस्तुतः वे सब इच्छा मात्र से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहूँच ही सकते हैं. । उनकी इच्छा विना कोई भी उनको कभी भी देख नहीं सकता ॥२-८॥

स्वेच्छा से अपने भक्तोंको कभी कभी वे दर्शन देते हैं । भिन्न भिन्न भक्तगण भिन्न भिन्न रूपों सें उन्हें देखते हैं । अक्षयदेह से युक्त वे भोजन नहीं करते । किन्तु कभी कभी भक्तों की खुसी के लिए भोजन कर भी लेते हैं । वे दही, खीर, मिठाइयाँ आदि लेते है । वे लौकिक आचार के दृष्टि से ही भोजन करते हैं । भूख के कारण कभी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अक्षयदेहयुक्तास्ते भोजनं नैव कुर्वते ।

परं भक्तजनानान्तु प्रीतये भुञ्जते यदा ॥१०॥

लौकिकाचारदृष्ट्यैव गृह्णन्ति ते न भोजनम् ॥११॥

बुभुक्षयेति विद्वासो जानन्ति नात्र संशयः ।

केवलानन्दविद्वांसो योगिनो ह्यवदन् पुरा ॥१२॥

श्रीयोगानन्दशिष्याय चरित्रं परमाद्भूतम् ।

तत्सर्वमिह वै ज्ञातुं यथार्थतो न शक्यते ॥१३॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे चतुर्दशोऽध्यायः ॥

भोजन नहीं करते ऐसा विद्वानों का कहना है, श्री केवलानन्द जी, जो विद्वान् एवं योगी थे उन्होंने अपने प्रिय शिष्य श्री योगानन्दजी को यह विचित्र चरित्र वताया था । उनका वास्तविक चरित्र जानलेना कठिन है या संभव नहीं है ॥९-१३॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

तेषां विचित्रचरितं न वै कल्प्यं कथञ्चन ।
प्राहुः श्रीकेवलानन्दाः तदिहैव निवेद्यते ॥१॥
एकदा वैदिके यज्ञ आसन् कर्मणि संस्थिताः ।
महावतारपुरुषाः सशिष्या वह्निसन्निधौ ॥२॥
ज्वलदङ्गारमुत्थाप्य महावतारपुङ्गवाः ।
पातयामासुः शिष्यस्य चैकस्य नग्नदेहके ॥३॥
आसन् लाहिडिविद्वांसस्त्रैव निकषा स्थिताः ।
किमर्थं क्रियते देव ज्वलदङ्गारपातनम् ॥४॥

अध्याय-१५

श्री महावतार बाबाजी का विचित्र चरित्र मानवीय कल्पना से बाहर है, वह सब श्री केवलानन्दजी ने वताया था वही यहाँ पर वताया जा रहा है ॥१॥

किसी एक समय महावतार बाबाजी वैदिक यज्ञ करने के लिए अग्नि के सामने वैठे थे । उसी समय उन्होंने जलती हुई लकडी उठाई और अपने एक प्रिय शिष्य के नग्न देह में रख दिया । वहीं पर श्री लाहिडी महाशय भी वैठे थे उन्होंने श्रीगुरुदेव से पूछा आप क्यों ऐसा कर रहे हैं गुरुदेव ! तव श्री बाबाजी महाराज ने उन्हें वताया क्या तुम

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तदाहुर्गुरवः पूज्या महावतारसंज्ञकाः ।
किमिष्यते त्वया चास्य भस्मसाज्ज्वलनेन वै ॥५॥
प्रारब्धाद् अस्य मृत्युस्तु वह्निदहनपूर्वकम् ।
इत्युक्त्वा पृष्टवन्तस्ते कृपया तच्छशरीरकम् ॥६॥
तदैव दाहपीडाऽपि नष्टाभूत् पुरतो मम ।
स्मयमानास्तदा प्राहुः वत्स त्वं मोचितो मया ॥७॥
मृत्युमुखाद्धि ते पूर्वकर्मफलं च नाशितम् ।
तव भोगोऽपि संनष्टश्चाग्निदहनपूर्वकम् ॥८॥
निर्भयं त्वं मया साकं स्थातुं शक्नोसि साम्प्रतम् ।
अपरा घटना चैका तन्मुखादेव श्रूयते ॥९॥

चाहते हो जलकर भष्म हो जाय, क्यों कि प्रारब्ध या पूर्व कर्म के हिसाव से इन्हें जलकर मरना निश्चित था । ऐसा कह कर जले हुए स्थान पर अपना वरदहस्त रख दिया । उसी समय उनकी ज्वलन पीडा समाप्त हो गई उसके वाद हँसते हुए उन्होंने उक्त शिष्य से कहा मेरे वच्चे तुम्हें मैंने आज मृत्यु के मुख से बचा लिया है । और तुम्हारा वह कर्मफल भी समाप्तकर दिया है । तुम्हारा वह भोग भी अग्निदाहपूर्वक मैंने नष्टकर दिया है ऐसा तुम समझो । अब तुम निर्भय पूर्वक मेरे साथ रहसकते हो । दूसरी एक और घटना भी उन्हीं के मुख से सुनागया है – एकवार श्री बाबाजी महाराज अपने शिष्यों

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

एकदा गुरवश्चासन् शिष्यैः परिवृताः स्वयम् ।
अत्युच्चशिखरे रम्ये पर्वते नात्र संशयः ॥१०॥
तदा कश्चिद् एकभक्तो गुरूणामागतस्तथा ।
दुर्लङ्घ्यं पर्वतं नूनमुल्लङ्घ्यैव सहेलया ॥११॥
आगत्य प्रोक्तवान् भक्त्या सप्रणामं सकातरः ।
भगवन् भवतां एतन् मण्डलं बहुधा मया ॥१२॥
अन्विष्यते नूनमत्र महावतारपूरुषाः ।
भवन्त एव सन्तीति निश्चित्य मम मानसम् ॥१३॥
वदति कृपया मह्यं स्थानं यच्छन्तु सन्निधौ ।
भवतां शिष्यसन्दोहे स्थातुमिच्छामि भो प्रभोः ॥१४॥

से घिरे हुए वैठे थे अति उच्च शिखरपर । उसी समय एक उनका अनन्यभक्त दुर्लङ्घ्य पर्वतों पर विचित्र रीति से चढता हुआ वहाँ पर पहुँच गया था । वहाँ पहुँचकर भक्तिपूर्वक गुरुदेवको प्रणामकर कातर दृष्टि से उन्हें देखते हुए कहा - हे प्रभो ! यह आप लगोंका मण्डल है । इसके विषय में मैंने बहुत सुना था और मैं आप को ही ढूँढ रहा था शायद आप ही महावतार बाबाजी हैं ऐसा मेरा मन निश्चित कर कह रहा है । इस लिए हे गुरुदेव ! कृपाकर मुझे अपने इस मण्डली में स्थान दें । मैं आपके शिष्य मण्डली में ही रहना चाहता हूँ । यदि मैं आपके साथ यहाँ नहीं रहपाता हूँ अथवा आप मुझे स्थान नहीं देंगे

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भवद्भिःसह चैवात्र स्थातुं न पारये यदि ।
शरीरपातनं कृत्वा भवतां पुरतोऽधुना ॥१५॥
मरिष्यामि न जीविष्ये भवतां सन्निधिं विना ।
जीवनं सकलं व्यर्थम् इति निश्चित्य चागतः ॥१६॥
इति तदीयवचनं श्रुत्वैवाह जगद्गुरुः ।
महावतारपुरुषो यथेच्छं मृयतां त्वया ॥१७॥
यादृशं जीवनं तेऽस्ति विकासस्य च यादृशी ।
स्थितिस्तवास्ति नैवात्र ग्रहीतुं शक्यसे मया ॥१८॥
इति श्रुत्वैव परमगुरुं प्रणम्य भक्तितः ।
सद्यः पर्वतशिखरात् पातयामास निर्भयः ॥१९॥

तव मैं यहाँ से कूदकर शरीर त्याग दूंगा । मैं अवश्य ही मर जाउँगा मैं फिर जी नहीं सकता । क्यों कि यदि आपका सान्निध्य प्राप्त न हो तो वह जीवन व्यर्थ ही है, निश्चयकर मैं यहाँ आया हूँ ॥२-१६॥

ऐसा उक्त व्यक्ति से सुनने के बाद जगद् के गुरु महावतार बाबाजी महाराजने उस क्यक्ति से गंभीरता से कहा तव तुम मर सकते हो । तुम्हारा जिस प्रकारका जीवन है, और विकासकी जैसी प्रक्रिया है, और तुम्हारी जैसी स्थिति है उसे देखते हुए मैं तुम्हे यहाँ स्वीकार नहीं कर सकता । जब ऐसा उसने सुना तव भक्तिपूर्वक बाबाजी महाराजको प्रणामकर उसी समय वह व्यक्ति उक्त पर्वत

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मृत्कायं तद् विलोक्यैव महावतारपूरुषाः ।
उक्तवन्तः स्वशिष्यांश्च गत्वा चानीयतामिति ॥२०॥
मृतं तन्मासपिण्डं च ह्यानयन् ते तदा गुरु-
कृपया जीवनं नव्यं तेन लब्धं तदा पुनः ॥२१॥
गुरूणां शिष्यसन्दोहे स बभूव व्यवस्थितः ।
अद्य त्वया परीक्षायां प्राप्ता सफलता यतः ॥२२॥
इतः परं न मृत्युर्वै त्वां पश्यति कदाचन ।
अमरस्त्वञ्च सञ्जातो ह्यमरे साधुमण्डले ॥२३॥
तव प्रवेशः सञ्जातो इत्याहुर्गुरवः स्वयम् ।
सोऽपि प्रसन्नवदनो भक्त्या नमान स्वं गुरुम् ॥२४॥

शिखर से विना किसी भय के कूद पडा ।

उसके बाद उसके उस मृत शरीर को देखकर उन्होंने अपने शिष्यों से उस शरीरको लाने के लिए कहा ॥१७-२०॥

उसके मांस पिण्डको जब उनके शिष्यों ने लाया तव श्रीगुरुके कृपा से फिर से उस व्यक्ति ने नयाँ जीवन प्राप्त किया । गुरुदेव के उक्त शिष्य मण्डली में उसने भी अपना स्थान प्राप्त किया । उसके बाद उन्होंने कहा आज तुमने एक विचित्र परीक्षा में सफलता प्राप्तकी, इसके बाद मृत्य कभी भी तुम्हारा स्पर्श नहीं कर पाएगा । तुम अमर हो गए हो और इस अमर साधु मण्डल मे तुम्हारा प्रवेश भी हो गया

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पुनः स्थानान्तरं ते तु गताः सद्यो न संशयः ।
एवंविधा बहुबिधा घटनास्तत्र सन्तीति ॥२५॥
बहवो ज्ञानसम्पन्नाः तच्छिष्याः सततं मुदा ।
वदन्त्येवेति तेषां नु कथा सन्ति विचित्रकाः ॥२६॥
अवतारास्तु पुरुषाः परमात्मनि सर्वदा ।
सर्वव्यापकसर्वज्ञे निवसन्ति न संशयः ॥२७॥
तेषां कृते न देशस्य न वा कालस्य जायते ।
प्रभाव इति देहस्य रक्षणे ते क्षमाः स्मृताः ॥२८॥
महावतारप्रभुभिरपि देहो युगाद् युगम् ।
धारितो नैव कालस्य प्रभावस्तत्र विद्यते ॥२९॥

है । ऐसा स्वयं ही गुरुदेवने उसे वताया । उसने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें श्रद्धा से प्रणाम किया । फिर उसके बाद उसस्थान से दूसरे स्थान में वे सब के सब चले ही गए । इस प्रकारकी बहुत सी घटनायें वहाँ उस मण्डली में होती ही रहती है । इस प्रकार बहुत ज्ञान सम्पन्न योगी जो उनके शिष्य हैं वे सदा ही इस प्रकार की विचित्र कथापूर्ण घटनाओं का वर्णन करते रहते हैं ॥२१-२६॥

सिद्ध और अवतार पुरुष विशेषरूपसे निरन्तर व्यापक परमात्मा में स्थित रहते हैं इस में संशय नहीं है । उनके लिए किसी देश और कालका कोई भी प्रभाव नहीं होता इसी लिए वे अपने शरीरकी रक्षा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तस्य देहस्य चोद्देश्यमेकमेवात्र ज्ञायताम् ।
मानवानां हि या लोके संभावना ह्यलौकिकी ॥३०॥
तां दर्शयितुमेवात्र ते देहधारणे रताः ।
चिन्मयदेहयुक्तास्ते भ्रमजालविगर्हिताः ॥३१॥
सर्वदा मानवान् मोक्तुमुदाहरणपूर्वकम् ।
स्वदेहं दर्शयन्त्येव प्रेरयन्ति ह्यनेकधा ॥३२॥
यदि देवत्वं नैवात्र स्वदेहे मानवाः स्वयम् ।
पश्यन्ति चेत्तु ते सर्वे मायापाशनिवीडिताः ॥३३॥
भवन्त्येवेति पुरुषा निदर्शयन्ति युक्तितः ।
अनागतवर्तमानभूतानां ज्ञायताम् यतः ॥३४॥

करने में समर्थ होते हैं ॥२७-२८॥

इसी प्रकार महावतार बाबाजी भी युगों से अपने शरीरको धारण कर रहे हैं। इस लिए उनपर कालका कोई भी प्रभाव दृष्टि गोचर नहीं होता, उनके देह धारणका एक ही मूल उद्देश्य हैं-मानवों की जो अलौकिक संभावना है उसे जागृत करना और अपने उदाहरणद्वारा उन्हें प्रेरित करना ही है। वे निश्चय ही चिन्मय देहयुक्त हैं और भ्रमका कोई स्थान उन के विषय में नहीं है। वे सर्वदा मनुष्योंको मुक्ति के मार्ग पर ले जाने के लिए उदाहरणपूर्वक अपने देहका दर्शन कराते हैं और अनेक विभिन्न और विचित्र उदाहरणद्वारा लोगों को

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नास्ति प्रभावः तेनैव ब्रह्मभूता इमे स्मृताः ।
प्रारंभादेव सर्वस्य जीवनस्य विशेषतः ॥३५॥
अवस्थानां च ज्ञातृत्वमेतेषां त्वं विजानीहि ।
तथापि जनतानान्तु ज्ञानरूपं विचार्य हि ॥३६॥
बहूनां पुरतः स्वस्य लीलास्तैस्तु प्रदर्शिताः ।
दिव्यजीवनसम्पन्ना दिव्यलीलायुता हि ते ॥३७॥
दिव्यकर्मसु संलग्ना महावतारपूरुषाः ।
अनेका दिव्यलीलास्तु दर्शिताः पात्रसम्मुखम् ॥३८॥
तेनापि बहवो लोका जानन्त्येव न संशयः ।
एतेषां दिव्यलीलानां प्रचारोऽपि च विद्यते ॥३९॥

प्रेरित करते रहते हैं ॥२९-३२॥

यदि मनुष्य अपने देह में देवत्वका दर्शन नहीं कर सकते हैं तो इस विषय में निश्चित यही है कि वे सब माया के पाश में बँधे होते हैं इसी लिए उक्त बन्धनों से मुक्तिहेतु वे प्रेरित करते रहते हैं। साथ ही कालका कोई प्रभाव इनपर नहीं हैं क्यों कि वे निश्चय ही 'ब्रह्मभूत' हैं साक्षात्परमात्मा हैं। प्रारंभ से ही सभीलोगों के जीवन के विषय में वे पूर्णरूपसे विज्ञ होनेके कारण बहुत लोगों के समक्ष उन लोगों के संस्कारों को विचार कर विभिन्न लीलाओंका प्रदर्शन वे करते रहते हैं ॥३३-३७॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तासां प्रभावतो लोका क्रियायोगे सुदीक्षिताः ।
तेषाममरलीलायाः साक्षी तु योगिराड् अभूत् ॥४०॥
रामगोपालपादो हि योगानन्दं जगाद ह ।
मुमुक्षूणां सदोत्साहो योगे भूयात्तदर्थताम् ॥४१॥
विचार्यैव महाभागैः प्रतिज्ञा विहिता पुरा ।
मानवानां हितायैव वाण्या प्रयोगो दृष्यते ॥४२॥
महापुरुषदेवैस्तु तथैवात्र विचिन्त्यताम् ।
रामगोपालपादस्तु यथा प्राहुस्तदुच्यते ॥४३॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे पञ्चदशोऽध्यायः ॥

दिव्य कर्म में संलग्न वे महापुरुष उचित पात्रों के संमुख विभिन्न विचित्र लीलाओं का प्रदर्शन करते ही रहते हैं। इसीसे अनेक लोग इन के लीलाओं को जानते हैं और उनके लीलाओंका प्रचार भी अवश्य हो गया है। उन लीलाओं के प्रभावों के कारण अनेक लोग क्रियायोग में दीक्षित हो गए। उनके अमर लीलाका प्रत्यक्षदर्शि योगिराज श्री रामगोपाल हुए हैं, जिन्होंने श्री योगानन्दजी को वताया था। मुमुक्षुओंका उत्साह सदा वना रहे। इसी लिए वे महापुरुष सर्वदा प्राणियों के कल्याणार्थ ही हमेशा ऐसा करते रहते हैं यह सब श्री रामगोपाल योगीजी ने जैसा वताया वैसा ही यहाँ वताया जारहा है ॥३८-४३॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ षोडशोऽध्याय:

श्रीमातुश्चरितं रम्यं श्रीलाहिडिमुनेस्तथा ।
विचित्रं किल ते प्राहु: रामगोपालपुङ्गवा: ॥१॥
कदाचित्तु गुहां त्यक्त्वा चैकान्तस्थानसंस्थिताम् ।
गुरुलाहिडिपादानां सेवायामगमं यदा ॥२॥
मध्यरात्रे महाभागा: प्राहुर्मां साम्प्रतं त्वया ।
गम्यतां भागीरथ्यास्तु तटे घट्टे पुरातने ॥३॥
दशाश्वमेधनाम्नैव ख्यात इत्याहु: तत्क्षणम् ।
अगमं भागीरथ्यास्तु तटं निश्चितस्थानकम् ॥४॥

अध्याय-१६

श्री रामगोपाल जी ने श्री माताजीका पवित्र चरित्र, और श्री लाहिडी महाशयका विचित्र चरित्र जैसा वताया है उसे यहाँ प्रस्तुत किया जाता है ॥१॥

श्रद्धेय रामगोपाल महाशयने कहा है –

किसी समय मैं अपनी एकान्त गुफाका त्यागकर श्री लाहिडी महाशयकी सेवा में उपस्थित हुआ था ॥२॥

उसी दिन मध्यरात्री में श्रद्धेय गुरुदेव श्री लाहिडी महाशय ने मुझे एक आश्चर्यजनक आदेश दिया और भगवती भागीरथी के तटपर पुराने दशाश्वमेध घाटपर जानेके लिए कहा। उन्होंने जहाँ जाने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रात्रिः प्रफुल्लतां याता आसीत् नक्षत्रमण्डलम् ।
प्रकाशभरितं रम्यमासीत् गङ्गातटं तदा ॥५॥
प्रतीक्षारतसञ्जातः किञ्चित्कालमहं तथा ।
दृढः प्रस्तरखण्डस्तु ह्युत्थित इव मे पुरः ॥६॥
दृष्टः साश्चर्यनयनः शनैः शनैः क्रमात् तथा ।
उत्थितः प्रस्तरखण्डो भूमौ गुहा तु निर्गता ॥७॥
प्रस्तरखण्डस्तत्रैव वायौ स्वयं स्थितोऽचलः ।
तदैव महिला चैकां सुवस्त्राच्छादिता तथा ॥८॥
लावण्यगुणसम्पन्ना निर्गता पुरतो मम ।
अन्तरिक्षं गता सापि तत्रैव सुस्थिराऽभवत् ॥९॥

के लिए कहा था मैं तत्काल ही उस स्थानपर पहूँच गया । वह रमणीय रात्री अत्यन्त मनोहर थी । पूरा रात जगमगा रहा था । गङ्गातट पर पूर्ण प्रकाश था नक्षत्र मण्डल प्रफुल्लित था । चाँदनी चारों और फैली हुई थी । गङ्गातट निश्चय ही रमणीय था ॥३-५॥

कुछ समय तक मैं प्रतीक्षा करता ही रहा था उसी समय अपने सामने ही आश्चर्य जनक ढंग से एक मजबूत पत्थर उठता हुआ दिखाई दिया । आश्चर्य जनक ढंग से उसे मैं देखता ही रहा और नीचे एक गुफा दिखने लगी । वह पत्थर भी वायुमण्डल में स्वयं रुकगया और वहाँ से एक अच्छे वस्त्रों से आच्छादित महिला प्रकट हुई । जो लावण्य गुण से सम्पन्न थी वह मेरे सामने से अन्तरिक्ष में रुक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

किञ्चित्कालात्परं सापि शनैः शनैः क्रमादिह ।
भूमौ चायाता तत्रैव स्थिताभूत् चान्तिकं पुनः ॥१०॥
प्रसन्नवदना रम्या ब्रह्मानन्दविवर्धिता ।
सापि तत्रैव निष्पन्ना स्थिताभूत् च शनैस्ततः ॥११॥
प्राह मधुरया वाचा चकितं मां पुरःस्थितम् ।
महावतारभगिनी माताहं वत्स जानीहि ॥१२॥
महावतारपुरुषं लाहिडिनं च साम्प्रतम् ।
विचाराय स्वयं स्वीयगुहायामद्य पुत्रक ॥१३॥
आहूतवती तेनैव त्वमपि चेह विद्यसे ।
तदानीमेव गङ्गायाः पुरो भागे ह्यदृश्यत ॥१४॥

गयी । कुछ क्षणवाद धीरे धीरे वह पृथ्वीपर आ गई और मेरे सामने ही खडी हो गई । वह अत्यन्त प्रसन्न वदन और ब्रह्मानन्द निमग्न सी दिखती थी और वह भी वहीं पर स्थित रही और मेरी ओर देखती हुई मधुर वाणी में वोली, जो मैं आश्चर्यजनक रूपसे सामने खडा था और कहा - वेटे मैं महावतार बाबाजी की वहन माताजी हूँ तुम जानलो ॥६-१२॥

आज मैंने अपने इस गुफा में श्रीमहावतार बाबाजी और श्री लाहिडी महाशय को भी कुछ विचार करने के लिए निमन्त्रित किया है और साथ में तुम भी उपस्थित हुए हो । जब माताजी ने यह कहा तभी गङ्गाजी के सामने एक प्रकाशपुञ्ज दिखाई दिया जो गङ्गाजल में

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रकाशपुञ्जं तत्रैव गङ्गाजलेऽपि ह्यद्भूतम् ।
दृष्टमेव परं रम्यं प्रतिबिम्बं सुनिर्मलम् ॥१५॥
आवयोर्निकटमेत्य तत्क्षणादेव मूर्तिमत् ।
अभूत् तत्रैव ह्याश्चर्यं श्रीलाहिडिमहाशयः ॥१६॥
आसीत् सोऽपि तदा मातुश्चरणावनमत् स्वयम् ।
विस्मयचकितश्चाहं तदा ह्यासं यथार्थतः ॥१७॥
किन्तु पश्यामि तत्रैव चास्माकं पुरतः पुनः ।
वर्तुलाकारभूतो हि प्रकाशस्तत्र सन्निधौ ॥१८॥
दृष्टः सर्वैस्तदा भूमौ चायातः क्रमशस्त्विह ।
सुन्दरो युवकस्तत्र दृष्टः सर्वै यथार्थतः ॥१९॥

भी छाया के रूप में दिखता था । वह प्रतिबिम्ब अत्यन्त सुन्दर था जल में, वह स्फुट रूप से चारों और दिखाई देता था । वह प्रकाश पुञ्ज हम दोनों के बीच में आकर रुकगया और तत्काल ही मूर्तिके रूप में परिणत हुआ । आश्चर्य !! वे तो स्वयं लाहिडी महाशय ही थे । उन्होंने भी तत्काल श्री माताजी के चरणों में अपना शिर रखदिया । मै. आश्चर्य चकित था । उसी समय एक वर्तुलाकार प्रकाशपुञ्ज हमलोगों के सामने आकर रुकगया और धीरे धीरे भूमिपर आ गया । वह सुन्दर युवक था और हम सभी ने सामने देखा । और हम सभी ने उन्हें पहचान लिया निश्चय ही वे महावतार बाबाजी महाराज थे और आकृति में वे श्रीलाहिडी महाशय जैसे प्रतीत होते थे, और युवा लगते

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ज्ञातं मयापि ते नूनं महावतारपूरुषाः ।
आकृत्या लाहिडिवद्हि ते युवानो विलोकिताः ॥२०॥
सटाः लम्बितताम्रास्तु प्रकाशिता इव स्थिताः ।
श्रीलाहिडी तथा माता चाहं सर्वे च श्रद्धया ॥२१॥
तेषां चरणयो, र्भक्त्या दण्डवद् अनमन् क्रमात् ।
तेषां संस्पर्शमात्रेण स्वर्गीयानुभूतिरभूत् ॥२२॥
अवर्णनीयतां यात आनन्दोऽपि यथा तथा ।
ततः पूर्वं तथा नैव ज्ञातमासीत् मयाऽधुना ॥२३॥
आनन्दस्य पराकाष्ठा प्राप्ता चेत्येव ज्ञायताम् ।
तदानीमेव ते प्राहु- र्महावतारपूरुषाः ॥२४॥

थे ॥१३-२०॥

उनकी जटा लम्बी थी प्रकाशित जैसी लगती थी। उसी समय श्री लाहिडी महाशय, श्रीमाताजी और मैंने भी भक्तिपूर्वक श्रद्धा से क्रमश सभी ने उनके चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया। उनके स्पर्शमात्र से स्वर्गीय आनन्दका अनुभव हुआ। वह आनन्द निश्चय भी अवर्णनीय था। उससे पूर्व ऐसा आनन्द मैंने कभी भी अनुभूत नहीं किया था ॥२१-२३॥

वह शायद आनन्द की पराकाष्ठा ही थी ऐसा समझना चाहिए। उसी समय महवतार बाबाजी महाराज ने कहा - प्यारी भगिनी मेरी कल्याणमयी वहन ! मैं अपना यह भौतिक शरीर सदाकाल के लिए

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कल्याणि भागिनि तात ! स्वभौतिकशरीरकम् ।
त्यक्त्वानन्तसागरेऽत्र विलोपयितुं साम्प्रतम् ॥२५॥
विचारयामि चेत्याहुस्तदाऽस्माकं पुरः पुनः ।
माता, तेषां तु भगिनी ह्यनुरोपुरःसरम् ॥२६॥
अपृच्छत् श्रद्धया भक्त्या सविनयं ह्यलौकिकम् ।
पूज्यगुरो ! अहं वेद्मि ह्यभिप्रायं ह्यलौकिकम् ॥२७॥
भवतां तेन वाञ्छामि विचारयितुं साम्प्रतम् ।
किमर्थं देहत्यागाय भवन्त उद्यता इह ॥२८॥
इत्युक्त्यैव कातरया दृष्ट्या सा मूकवत् स्थिता ।
गुरवः प्राहुर्युक्त्यैव स्मयमानास्तदा स्वयम् ॥२९॥

त्यागकर अनन्त सागर में अपने को हमेशा के लिए विलीन करता चाहता हूँ। जब उन्होंने ऐसा कहा तभी माता जी, जो उनकी वहन हैं, ने अत्यन्त वाक्चातुर्य के साथ श्रद्धा, भक्ति और अलौकिक विनयपूर्वक अनुरोध करते हुए कहा - हे पूज्य गुरुदेव ! मैं आपके इस अलौकिक अभिप्रायको जान गयीथी इसीलिए इस पर विचार करना चाहती हूँ इसी समय। कृपया आप वतायें आप क्यों शरीर छोडना चाहते हैं ? ॥२४-२८॥

ऐसा कहकर कातर दृष्टि से उनकी और देखती हुई मूकवत् खडी रही। उसी समय महावतार बाबाजी मुसकुराते हुए युक्तिपूर्वक स्वयं कहते हैं - प्यारी वहन ! परब्रह्मके सागर में परमात्मा के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

परब्रह्मसागरेस्मिन् तरङ्गाः परमात्मनः ।
दृष्टा वा स्युरदृष्टा वा को भेदस्तत्र विद्यते ॥३०॥
किं वा ब्रह्माण्डघटके भेदस्तत्र प्रजायते ।
तेनैवेच्छामि संत्यक्तुं देहं कल्याणि साम्प्रतम् ॥३१॥
तच्छ्रुत्वा प्राह मातापि वाणीवैदग्ध्यपूर्वकम् ।
मुत्युञ्जयगुरो भेदस्तत्र नास्तीति चिन्त्यते ॥३२॥
कृपया सर्वदा देहं स्थापयन्तु प्रभो मम ।
कदापि चिन्मयं कायं न त्यजन्तु कथञ्चन ॥३३॥
इयं मे प्रार्थना देव ! कृपया दयया यतः ।
स्थापयन्तु स्वकीयं तद् देहमित्याह श्रद्धया ॥३४॥

तरङ्ग दिखें या न दिखें क्या अन्तर है ? अथवा मेरे शरीर त्याग देने से इस ब्रह्माण्ड घटक में कोई भी अन्तर नहीं होने वाला है इसी लिए देह त्याग करना चाहता हूँ ॥२९-३१॥

यस सुनकर माताजी ने भी अत्यन्त तार्किक रूपसे कहा हे मृत्युञ्जय गुरुदेव यदि दोनों में कोई भेद नहीं हैं तो कृपाकर आप अपने शरीर का कभी भी त्याग न करें । हमेशा इसे स्थापित करें । यह चिन्मय देह त्यागने योग्य नहीं है । यह मेरी प्रार्थना है । हे देव ! दया से इस देहको सदा धारण करें यह श्रद्धापूर्वक माताजीने निवेदन किया । यह सुनकर गंभीर वाणी में महावतार गुरुदेव ने कहा - 'तथास्तु' मैं यह प्रकृति निर्मल देह सदा धारण करुंगा । निश्चय ही पृथिवी में

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तच्छ्रुत्वा प्राहु:र्गुरवो गभीरवचसा तदा ।
तथास्तु नैव त्यक्ष्यामि देहं प्रकृतिनिर्मलम् ॥३५॥
पृथिव्यां सर्वदा केचित् पश्यन्त्येव शरीरकम् ।
ईश्वरेच्छैव प्रत्यक्षं वक्ति तव मुखादिह ॥३६॥
श्रुत्वा दृष्ट्वा च तत्सर्वं चरित्रं परमाद्भूतम् ।
चकितश्चकितश्चापि विस्मितश्चाभवं तदा ॥३७॥
तस्मिन् पुण्यमये काले महावतारपूरुषा: ।
माँ विलोक्य कृपादृष्ट्या प्राहुर्गभीरया गिरा ॥३८॥
रामगोपाल मा भैषी: चाद्य यद्धि श्रुतं त्वया ।
यच्च दृष्टं प्रतिज्ञाया अलौकिक्या यथार्थत: ॥३९॥

पृथिवी में कुछ लोग इसे देखते ही रहेंगे। ईश्वर इच्छा ही तुम्हारे मुख से व्यक्त हो रही है ॥३२-३६॥

यह सब रहस्यमय अद्भूत चरित्र देखकर और सुनर मैं आश्चर्य चकित और विस्मित हुआ ही था कि महावतार बाबाजी ने उस पवित्र एवं विचित्र समय में कृपापूर्ण दृष्टि से देखते हुए मुझे कहा - हे राम गोपाल ! तुम मत डरो। आज तुमने जो सुना और देखा, साथ ही जिस अलौकिक प्रतिज्ञाको तुमने सुना है उसके साक्षी तुम भी हुए हो तुम निश्चिय ही भाग्यशाली हो। ऐसा कहकर तत्काल ही वे प्रकाशपुञ्ज में फिर परिणत हो गए। साथ ही श्री लाहिडी महाशय भी उसी प्रकार के प्रकाशपुञ्ज के रूप में परिणत हुए साथ ही धीरे धीरे उन दोनों की

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

साक्षी त्वं जायसे वत्स ! भाग्येन तव साम्प्रतम् ।
इत्युक्त्वा भगवान् सद्यः प्रकाशपुञ्जतां गतः ॥४०॥
लाहिडिगुरुः तेनैव यथा प्रकाशतां गतः ।
शनैः शनैः तयोर्मूर्ती गतवत्यौ ह्यदृश्यताम् ॥४१॥
ततः परं च मातापि स्वगुहां गतवत्यहो ।
गुहापि पूर्ववच्चैव निर्बन्ध इव संस्थिता ॥४२॥
इत्थं चरित्रसकलं दृष्ट्वा गुरुगृहं गतः ।
प्रणम्य स्थितवान् तत्र पुरतः श्री गुरोस्तदा ॥४३॥
तत्र ब्राह्मे मुहूर्तेऽत्र मां विलोक्य गुरुर्मम ।
श्रीलाहिडी तदा प्राह प्रसन्नवदनः स्वयम् ॥४४॥

मूर्तियां अदृश्य हो गयी । इसके बाद श्रीमाताजी भी अपने उसी गुफा में चली गई । गुफा भी पूर्ववत् बन्द हो गई ॥३७-४२॥

इस प्रकार यह अद्‌भूत चरित्र, विचित्र घटना देखने बाद श्रीगुरुदेव के गृह में उपस्थित हुआ और प्रणाम करके श्रीगुरुके सामने में खडा हो गया । उस ब्राह्ममुहूर्त में मुझे देखकर मेरे पूज्य गुरुदेव श्री लाहिडी महाशय प्रसन्न होकर स्वयं मुझ से कहने लगे - राम गोपाल आज मैं तुम्हारे लिए आनन्दित हूँ । तुम्हारी आकाङ्क्षा आज श्रीगुरुदेवक के दर्शन मात्र से पूरी हो गई । तुमने बहुत दिनों से यह प्रार्थना की थी कि श्रीमहावतार बाबाजी का दर्शन एवं माताजीका दर्शन भी करना चाहते थे । कब यह दर्शन होगा यह तुम कहते थे किन्तु विचित्र

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रामगोपाल चाद्यैव त्वत्कृते हर्षितोऽस्म्यहम् ।
तवाकाङ्क्षा गता पूर्तिमद्य श्रीगुरुदर्शनात् ॥४५॥
बहोः कालात् त्वया चैषा प्रार्थना विहिताऽभवत् ।
श्रीमातुर्दर्शनं किञ्च महावतारदर्शनम् ॥४६॥
कदा भवति मे चेति दिनं शुभमयं गतम् ।
आश्चर्यमयमार्गेण प्रार्थना पूर्णतां गता ॥४७॥
गुरोर्वाक्यानि श्रुत्वैव कृतकृत्यस्तदाऽभवम् ।
अन्यशिष्येभ्यः तत्रैव प्रातर्ज्ञातं मया तदा ॥४८॥
श्रीलाहिडी गुरुर्नैव ह्युत्थितोऽभूत् स्वगेहतः ।
किन्तु ह्यमरतां प्राह चात्मनः शिष्यसन्निधौ ॥४९॥

आश्चर्यजनक ढंग से तुम्हारी यह प्रार्थना पुरी हो गई। गुरुदेव के वे वाक्य सुनकर मैं कृतकृत्य हो गया। गुरुदेव के अन्य शिष्यों से मैंने प्रातः यह जान लिया कि वे उस आसन से उठे भी नहीं थे। किन्तु उक्त वेला में उन्होंने आत्मा की अमरता के विषय में अपूर्व प्रवचन दिया था ॥४३-४९॥

इस प्रकार मुझे भी यह ज्ञात हुआ कि आत्मज्ञानी पुरुष एक ही समय बहुत से शरीर धारण कर सकते हैं। एक ही समय बहुत स्थानों पर सरलता से उपस्थित होते है भगवत्कृपा ही वह कारण है ॥५०-५२॥

बाद में श्रीगुरुदेवने मुझे वताया जो अत्यन्त गंभीर एवं गुह्य

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

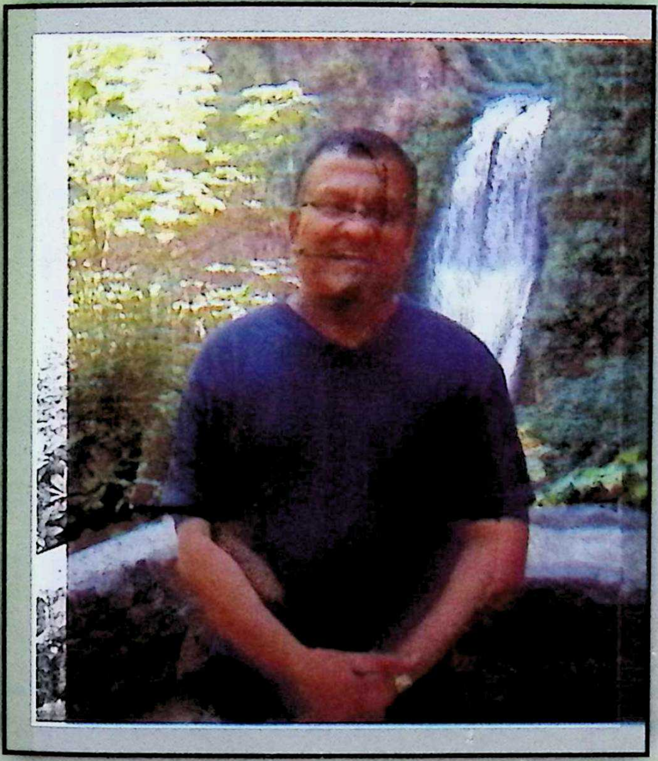

श्री शिवेन्दु लाहिड़ी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इत्थं ज्ञातं मया तत्र ह्यात्मदर्शनतो जनाः ।

शरीराणि बहून्यत्र धारयन्ति हि हेलया ॥५०॥

एकस्मिन्नेव काले नु बहुत्र सशरीरकम् ।

उपस्थिता भवन्त्येव भगवत्कृपया सदा ॥५१॥

पश्चात् श्रीगुरुणा प्रोक्ता गुह्यं गभीरसन्निभम् ।

भगवद्योजना या हि सापि रम्या न संशयः ॥५२॥

महावतारगुरवो विश्वचक्रावधिकृते ।

देहं सन्धार्य लोकेऽत्र स्थास्यन्त्येव प्रभोरिह ॥५३॥

इच्छयैव युगा यान्ति चायान्ति किन्तु निर्भयम् ।

अमरा गुरवस्तावत् स्थाष्यन्ति धरणीतले ॥५४॥

है - वह भगवान् की योजना है जो अति रमणीय है, इस में संशय नहीं है - महावतार बाबाजीको को इस विश्वचक्र के पूर्ण अवधितक रहने के लिए ईश्वर ने चुना है। इस लिए तव तक इस देहको धारण करके रहेंगे। यह सब परमेश्वर की इच्छा के कारण ही है। युग आयेंगे और जायेंगे किन्तु अमर गुरुदेव निर्भय इस धरतीपर रहेंगे। इन आने वाले शताब्दीयों के नोटकों को देखते हुए वे महापुरुष सदा रहेंगे। विश्वरङ्गस्थल में जो भी घटनायें होंगी वे सब देखते हुए र हेंगे। वैसे महापुरुष को मैं नमस्कार करता हूँ। साथ ही यह प्रार्थना करता हूँ कि सभी प्राणी सुखी हों। उन बाबाजी महाराजका अद्भूत चरित्रको जो भी श्रद्धापूर्वक सुनेंगे तत्काल ही उन सभी लोगों का दुःख नष्ट

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शताब्दीसु नाटकानां प्रभो-र्यद्धि भविष्यति ।
सर्वं द्रक्ष्यन्ति वै ते तु महापूरुषपुङ्गवा: ॥५५॥
विश्वरङ्गस्थले सर्वं पश्यन्त्येव यथार्थत: ।
तान्नौमि श्रद्धया भक्त्या स्मरामि च पुन: पुन: ॥५६॥
कृपां कर्तुं प्रार्थयामि सुखिन: सन्तु प्राणिन: ।
तेषामद्भूतचरितं येऽपि शृण्वन्ति श्रद्धया ॥५७॥
तत्क्षणं किल वै तेषां दु:खस्यान्तो भविष्यति ।
ब्रह्मज्ञानी स्वयं भूयाद् ब्रह्म एव न संशय: ॥५८॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे षोडशोऽध्याय: ॥

होगा । जो भी ब्रह्मज्ञानी होता है वह साक्षात् ब्रह्म ही होता है । इस में संशय नहीं है ॥५३-५८॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लाहिड़िक्रियायोगसंहितायां

द्वितीयपरिच्छेदः

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

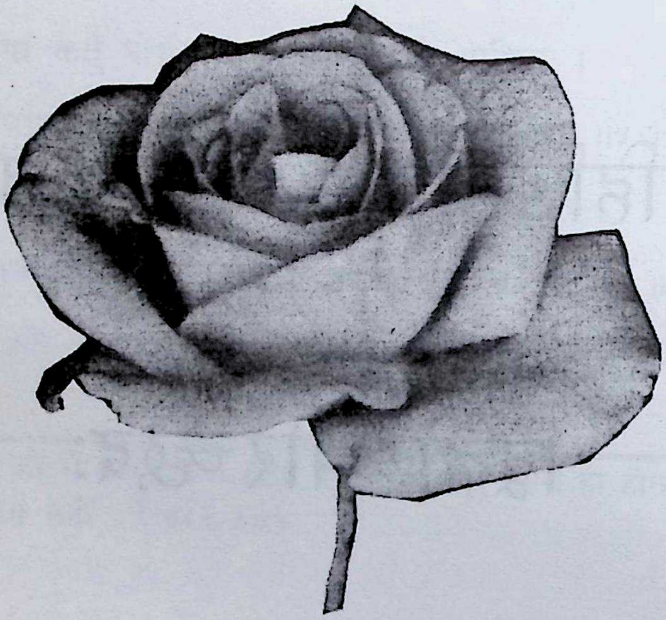

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ सप्तदशोऽध्यायः

साङ्ख्ययोगादि विषये यथा पूर्वं निरूपितम् ।
लाहिड़िमुनिना सर्वं यथावत् प्रतिपाद्यते ॥१॥
सांख्ययोगौ मतौ पूर्वैः साधनं सर्वसम्मतम् ।
वेदान्तप्रोक्तज्ञानस्य वेदशास्त्रे विशेषतः ॥२॥
ब्रह्मलोकेऽपि ते यान्ति सन्यासयोगतस्तु ये ।
शुद्धसत्त्वाः साङ्ख्ययोगाद् इत्याहुः पण्डिताः पुरा ॥३॥
नास्ति साङ्ख्यसमं ज्ञानं बलं योगसमं न हि ।
चित्तवृत्तिनिरोधाय योगो ज्ञानं परं मतम् ॥४॥

अध्याय-१७

साङ्ख्य योग आदि शास्त्रों के विषय में जैसा पूर्वजों ने वताया और श्रीलाहिडीमहाशयने जैसा उपदेश दिया वह यहाँ निरूपित किया जाता हैं -

साङ्ख्य और योगको सर्वसम्मत साधन के रूप में निरूपित किया गया है। विशेष करके वेदशास्त्रों में वेदान्तज्ञान के विषय में भी इसे स्वीकार किया गया है। साङ्ख्य-योगद्वारा सत्वविशुद्ध होता है ऐसा पण्डितों का कहना है ॥१-३॥

साङ्ख्य के समान ज्ञान नहीं है और योग के समान बल भी नहीं है। और चित्त वृत्ति निरोधके लिए योग ही परम साधन है ॥४॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ज्ञानं सम्यक्तया दृष्टिर्निरोधो योग उच्यते ।
केचिद् ज्ञानेषु निपुणाः केचिद् योगेषु निश्चितम् ॥५॥
विद्यते चोभयं यत्र साह्यवस्था परा मता ।
साङ्ख्यानां ज्ञानयोगेन कर्मयोगेन योगिनाम् ॥६॥
द्विधाऽपि भगवान् प्राह निष्ठामित्यपि युक्तितः ।
ज्ञातव्यं भवति तस्मात् पार्थक्यं न हि युज्यते ॥७॥
साङ्ख्ये योगे तयोः साक्षात् कारणत्वं नियम्यते ।
यत्साङ्ख्यै-र्लभ्यते तद्धि योगादपि च लभ्यते ॥८॥
एकत्वमुभयोर्येऽपि पश्यन्ति ते यथार्थतः ।
आत्मनः किल कुर्वन्ति साक्षात्कारं न संशयः ॥९॥

सम्यक् दृष्टि ही ज्ञान है और वृत्तिनिरोध ही योग है। कुछलोग ज्ञान में निपुण होते हैं कुछ योग में निपुण होते हैं। दोनों में जिनकी गति होती है वह परा अवस्था होती है। साङ्ख्योंका ज्ञानयोग से और योगियों का कर्मयोग से कल्याण वताया हैं श्री गीता में भगवान् ने, साथ ही दो प्रकारकी निष्ठाका उल्लेख भी भगवान् ने किया है। किन्तु दोनों में कोई भेद न होने की व्याख्या स्वयं भगवान् ने की है। साङ्ख्य और योग में उन दोनों का कारणत्व स्वीकृत किया है। जो साङ्ख्य से प्राप्त होता है वही योग से भी होता है। जो भी दोनों में एकत्व देखते हैं वे ही यथार्थ तत्वको जानते हैं। वे ही आत्मसाक्षात्कार करते हैं ॥५-९॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

योगं विना न संन्यासस्थितिः केनापि लभ्यते ।
योगयुक्तेन मुनिना हेलया तच्च लभ्यते ॥१०॥
अष्टौ प्रकृतयः सन्ति विकाराः षोडशस्तथा ।
प्रधानमथ तत्रैव महत्तत्वं ततःपुनः ॥११॥
पञ्चतन्मात्रिकाः प्रोक्ताः पञ्चभूतानि मानसम् ।
इन्द्रियाणि दशैवात्र विकाराणां स्थितिर्मता ॥१२॥
चेतनः पुरुषः प्रोक्तो जीवो हिरण्यगर्भकः ।
परमात्मेति तत्रैव वदन्ति साङ्ख्यवादिनः ॥१३॥
पुरुषस्य बहुत्वञ्च त्रैगुण्यस्य विपर्ययात् ।
करणजन्ममृत्यूनां प्रवृत्तिर्भेदतो मता ॥१४॥

विना योग के सन्यास की कल्पना असम्भव है । योगयुक्तमुनि के द्वारा सहज ही उसे प्राप्त किया जा सकता है ॥१०॥

साङ्ख्य सिद्धान्त के अनुसार आठ प्रकृतियाँ हैं, और १६ विकार तत्व हैं । प्रधान और महत्तत्व तथा पञ्चतन्मात्रा, पञ्चमहाभूत, मन, दश इन्द्रिय, यही विकारों की स्थिति है ॥११-१२॥

पुरुष चेतन है, जीवन हिरण्यगर्भ कहा जाता है । और पर मात्मा है ऐसा साङ्ख्य सिद्धान्तवादी कहते हैं ॥१३॥

पुरुषका बहुत्व, तीन गुणों के विपर्ययद्वारा यह सृष्टि स्थिति और लय संभव होता है । प्रवृत्ति भेदद्वारा करण और जन्मृत्यु प्रवृत्तिभेदा द्वारा ही होता है । वह पुरुष सहस्र शिरवाला कहा गया है । पृथ्वीके सभीओर

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सहस्रशीर्षा सम्प्रोक्तः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
पृथ्वीं सर्वतः संवृत्य अत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥१५॥
प्रकृतिस्तु मता तावत् त्रिगुणयुतयुक्तितः ।
सत्त्वं रजस्तमः प्रोक्तं शक्तय एव ता मताः ॥१६॥
गुणानां वास्तवं रूपं न दृष्टिपथमृच्छति ।
यत्तु दृष्टिपथं याति तदपि गुणतो भवेत् ॥१७॥
गीतायामपि संप्रोक्तं तदेव युक्तितो यतः ।
प्रकृतिः सूयते सर्वं मयाध्यक्षेण सर्वदा ॥१८॥
सम्भवो जायते मत्तः गर्भं दधामि युक्तितः ।
ब्रह्म एव महद्योनि र्भवतीति यथार्थतः ॥१९॥

से उठकर दश अङ्गुल उपर रहता है । वह प्रकृति त्रिगुणमयी कहा गया है । सत्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण प्रकृति के तीन शक्तियाँ हैं । गुणोंके वास्तविक स्वरूपको देखा नहीं जा सकता है । जो भी हम इन्द्रियाँ से अनुभव करते हैं वह भी गुणों के ही कारण संभव होता है ॥१४-१७॥

श्रीगीता में भी इस विषयको यो कहा है - भगवान् कहते हैं मेरी अध्यक्षता में प्रकृति सभी चीजों सृष्टि करती है । इसीलिए सब कुछ मुझसे ही उत्पन्न होता है । मैं ही सभी चीजों का गर्भधारण करता हूँ । ब्रह्म ही सब से बडी योनि है । सभी योनियों में शरीर परिलक्षित होते हैं । सभीका बीजदाता वही परमात्मा ही है । सृष्टि हो

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सर्वयोनिषु लक्ष्यन्ते शरीराणि च सर्वदा ।
बीजप्रदस्तु वै तेषां स एव जनको मतः ॥२०॥
सृष्टिर्वा प्रलयश्चापि गुणानां स्थितिरुच्यते ।
स्थूलरूपं परित्यज्य कारणेषु लंयस्तथा ॥२१॥
यदापि जायते तद्धि प्रलय इति प्रोच्यते ।
सृष्टेः प्रलयो जायेत प्रलयात् सृष्टिरुच्यते ॥२२॥
अनादिकालतश्चैव प्रवाहस्तु प्रवर्तते ।
अध्यात्ममधिभूतञ्च ह्याधिदैवं त्रिधैव हि ॥२३॥
सृष्टिः संचोदिता चास्ति तस्याः स्वरूपमुच्यते ।
बुद्धिरहं मनश्चैव इन्द्रियाणि शरीरकम् ॥२४॥

या प्रलय यह गुणों की स्थिति से ही होता है। लयका अर्थ हैं स्थूल रूप त्यागकर कारणों में लय होनेको कहा जाता है। जब भी कारणों में कार्यका लय होता है वही प्रलय है सृष्टि से लय और लयसे सृष्टि होती है। अनादिकाल से यह प्रवाह चलता ही रहता है। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीन प्रकारकी सृष्टि होती है। इस प्रकारकी सृष्टि होती है उसका स्वरूप भी यहीं वताया जाता है। बुद्धि, अहङ्कार, मन, दश इन्द्रिय गण, शरीर इस प्रकार साङ्ख्यशास्त्र में अध्यात्म सृष्टिका स्वरूप समझना चाहिए। अधिभूत सृष्टिका स्वरूप निम्न रूपसे वताया जाता है ॥१८-२५॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अध्यात्मसृष्टिर्ज्ञातव्या साङ्ख्यशास्त्रे विशेषतः ।
अधिभूतञ्च तत्रैव सृष्टेः स्वरूपमुच्यते ॥२५॥
गौरश्वपशुभूतानां स्थितिः संज्ञायते तथा ।
अधिदैवस्वरूपञ्च दिव्यमेव सदा मतम् ॥२६॥
पृथिवीसूर्यदिव्यानां सृष्टिः संजायते तथा ।
सुखं दुःखञ्च त्रिविधं भवतीति विनिश्चयः ॥२७॥
शास्त्रविद्भिश्च संप्रोक्तमाध्यात्मिकं द्विधा मतम् ।
दुःखं शरीरकं किञ्च मनोगतं द्वितीयकम् ॥२८॥
अन्यप्राणिलोकप्राप्तिः सुखं दुःखं द्वितीयकम् ।
प्रकाशवृष्टिसुभिक्ष-दुर्भिक्षादिस्वरूपकम् ॥२९॥

गौ, अश्व, पशु आदिकी उत्पत्ति ही यह अधिभूतकी स्थिति है। अधिदेवस्वरूप दिव्य क्षेत्र में ही होता है। पृथिवी सूर्य आदिदेवों की सृष्टि अधिदेव है। सुख और दुःख भी तीन प्रकार के होते हैं। यह सब शास्त्रविदों का मत है। वह आध्यात्मिक दुःख दोप्रकार का होंता है। प्रथम शारीरिक और दूसरा मानसिक है। अन्य लोक से होने वाले दुःख और सुख यह दूसरा प्रकार है। प्रकाश, वृष्टि, सुभिक्ष और दुर्भिक्ष आदि उसके स्वरूप हैं। तीसरा सुख और दुःखरूप होता है।

वृत्तियाँ पाँच प्रकारी होती हैं - स्मृति, निद्रा, विकल्प, विपर्यय और प्रमाण। प्रमाण तीन होते हैं प्रत्यक्ष, अनुमान और तीसरा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तृतीयं सुखदुःखादिस्वरूपं भवति क्रमात् ।
वृत्तयः पञ्चधा प्रोक्ताः स्मृतिनिद्राविकल्पकाः ॥३०॥
विपर्यय-प्रमाणे च प्रमाणं त्रिविधं मतम् ।
प्रत्यक्षमनुमानञ्च ह्यागमश्च तृतीयकः ॥३१॥
मिथ्याज्ञानं भवेत्तत्र विपर्ययस्तु सर्वदा ।
तत्सर्वं ज्ञायतां तावदिहैव प्रतिपाद्यते ॥३२॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे सप्तदशोऽध्यायः ॥

आगम । मिथ्या ज्ञानको विपर्यय कहा जाता है । वह सब कुछ यहाँ वताया जा रहा है जान लेना चाहिए ॥२६-३२॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथाष्टादशोऽध्यायः

अभेदे भेदबोधो वा भेदेऽभेदस्तु जायते ।
जलेन ज्वलितो हस्तः काष्ठपुत्तलिका यथा ॥१॥
विकल्प एष संप्रोक्तः साङ्ख्यशास्त्रे यथार्थतः ।
अभावस्य प्रतीतिस्तु यया संजायते सदा ॥२॥
सैव वृत्तिस्तु निद्रा स्यात् स्मृतिस्तु वक्ष्यते पुनः ।
पञ्चवृत्तिभिः सर्वत्र ज्ञानस्य स्मरणं भवेत् ॥३॥
आत्मबुद्धिस्तु संबुद्धौ चास्मिता किल प्रोच्यते ।
लोभवृत्तिरेव रागः शास्त्रे तत्रोच्यते पुनः ॥४॥

अध्याय-१८

अभेद में भेदका बोध और भेद में अभेदका ज्ञान ही विकल्प है। जैसे पानी से हाथ जल गया और काठकी पुतली इन दोनो वाक्यों में अग्नि और पानी के भेद में अभेदका ज्ञान है और काठ और पुतली के अभेद में भेदका ज्ञान है। अभावकी प्रतीति जिससे होती है उसे निद्रा कहते हैं। स्मृति उन पाँचो वृत्तियों द्वारा अनुभूत अज्ञानका स्मरण होना है। बुद्धि में आत्मबुद्धि अस्मिता है। लोभवृत्ति ही राग है। घृणा ही द्वेष है। मृत्युका भय अभिनिवेश है ॥१-५॥

बुद्धि वृत्तिकी अशक्ति २८ प्रकारकी है। ११ इन्द्रियोंकी अशक्ति,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

घृणा ह्ये द्वेषबुद्धिरभिनिवेशः प्रोच्यते ।
मृत्योर्भयस्य या वृत्तिः सोऽभिनिवेशो ज्ञायताम् ॥५॥
अशक्तिर्बुद्धिवृत्तेस्तु ह्यष्टाविंशतिधा पुनः ।
एकादशेन्द्रियाशक्तिः पुनः तुष्टिविरोधिता ॥६॥
तुष्टिश्च नवधा प्रोक्ता सिद्धिविरोधिता तथा ।
सापि ह्यष्टविधा प्रोक्ता ह्यष्टाविशंतिधा भवेत् ॥७॥
तुष्टिस्तु नवधा प्रोक्ता चतस्रोऽध्यात्मसंयुताः ।
पञ्चस्युर्बाह्यतस्तेन नवविधा हि सा मता ॥८॥
पञ्चविधा च या बाह्या शब्दस्पर्शादिभेदतः ।
प्राप्तौ दुःखं रक्षणे च नाशे भोगे च दुःखता ॥९॥

फिर तुष्टिका विरोध । तुष्टि ९ प्रकारकी है । सिद्धिविरोधि शक्ति आठ प्रकारकी है । और वह २८ प्रकारकी होती है । ९ तुष्टियों में चार आध्यात्मिक हैं । ४ बाह्य हैं । शब्द स्पर्श आदि भेदों के द्वारा ५ बाह्य हैं । जैसे पदार्थ की प्राप्ति में दुःख, रक्षा में दुःख, नाश में दुःख और भोग में दुःख है, परहिंसा भी दुःख है । इसी लिए तुष्टि से मुक्त होना चाहिए ।

अध्यात्मतुष्टिभेद में 'प्रकृति' प्रथम है ।

प्रकृतिद्वारा ही आत्माकी प्राप्ती होता है । यह प्रथम है ।

उपादान तुष्टि सन्यासद्वारा ही प्राप्त होती है । इसी से मुक्ति

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

परहिंसापि दु:खं हि तस्मात् तुष्ट्या विमुच्यते ।
अध्यात्मतुष्टिभेदस्तु प्रकृतिः प्रथमा मता ॥१०॥
प्रकृत्यैव हि लभ्येत आत्मा हीत्येव सा मता ।
उपादानतुष्टिरिह सन्यासादेव केवलात् ॥११॥
मोक्षः सिद्ध्येत चेत्येव द्वितीया तुष्टिरिष्यते ।
समये स्वयमेवात्र मुक्तिर्मम भविष्यति ॥१२॥
इत्येव दृष्टिरत्रैव कालतुष्टिर्निगद्यते ।
भाग्ये यदि भवेन्नूनं मुक्तिर्मम भविष्यति ॥१३॥
इत्येव तुष्टिरत्रैव मुच्चतामिति सर्वदा ।
निवेद्यते ग्रन्थकर्त्रा क्रिया तत्र विधीयताम् ॥१४॥

की उपलब्धि संभव है। समय में स्वयं ही मेरी मुक्ति होगी ऐसी आकाङ्क्षा कालतुष्टि है। यदि भाग्य में हो तो, मेरी मुक्ति होनी चाहिए। यह नियति तुष्टि है। इसी लिए क्रिया योग में लगना चाहिए। ऐसा इस लेखकका निवेदन है ॥६-१४॥

सिद्धियाँ आठ हैं। ऊह, शब्द, अध्ययन, सुहृत्प्राप्ति, और दान इसी प्रकार आध्यात्मिक दुःखहान, आधिभौतिक एवं आधिदैविक दुःखहान ।

ऊहसिद्धिः - पूर्वजन्मगत संस्कारोंद्वारा अपने आप इस सृष्टिको देखकर नित्य अनित्य, चित्, अचित् के निर्णयद्वारा २४ तत्वोंका यथार्थ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अष्टधा सिद्धिः सम्प्रोक्ता तत्रोह प्रथमो मतः ।
शब्दाध्ययने तत्रैव सुहृत्प्राप्तिश्च दानता ॥१५॥
आध्यात्मिकं दुःखहानिराधिभैतिकहानता ।
आधिदैविकदुःखस्य हानिश्चान्तिम उच्यते ॥१६॥
पूर्वजन्मगताद् बोधात् चतुर्विंशतितत्त्ववित् ।
यो जायते तत्र नूनमूहसिद्धिस्तु ज्ञायताम् ॥१७॥
शब्दोपदेशजा सिद्धिः, वेदाध्ययनतश्च सा ।
सिद्धसुहृत्समायोगाज् ज्ञानावाप्तिश्च जायते ॥१८॥
योगिनां सेवया सिद्धिर्नाम दानात् प्रजायते ।
तेभ्यो यद्दीयते तेन प्रीता ज्ञानं तु लभ्यते ॥१९॥

ज्ञान ऊहसिद्धि कहलाता है ।

गुरु के उपदेशद्वारा होने वाला ज्ञान ।

वेदाध्ययनद्वारा ज्ञान प्राप्त करना ।

सिद्ध पुरुष प्राप्ति और उनके द्वारा ज्ञान प्राप्त करना । योगी आदि सिद्ध पुरुषों की सेवाद्वारा ज्ञान प्राप्त करना । उपर्युक्त पाँच सिद्धि तत्वज्ञान के उपाय हैं और उसके बाद आध्यात्मिक दुःखोंका मिटजाना, आधिभौतिक दुःखोंका समाप्त होना और आधिदैविक दुःख से मुक्त होना ही इनका फल है । इसी प्रकार आठ प्रकारकी असिद्धियां बुद्धि की आठ अशक्तियाँ हैं। इसी प्रकार दश प्रकारके मूलधर्म हैं –

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

त्रिविधस्यापि दुःखस्य हानिस्तत्रैव ज्ञायताम् ।
दशविधाश्च तत्रैव मूलधर्मा भवन्ति च ॥२०॥
अस्तित्वं किल संयोगो वियोगः शेषवृत्तिता ।
एकत्वमर्थवत्वञ्च पारार्थ्यमन्यता पुनः ॥२१॥
अकर्तृत्वं बहुत्वञ्च दशविधा हि ते मताः ।
अव्यक्तपुरुषयोगात् सृष्टिः संजायते तथा ॥२२॥
निर्लेपो निर्विकारश्च पुरुषस्तु सदा मतः ।
येऽपि धर्मा सृष्टितत्त्वे कार्यजगततो मता ॥२३॥
ततो मूलपूरुषे तु ये धर्मा मौलिका हि ते ।
एकत्वमर्थवत्वञ्च पारार्थ्यं प्रकृतौ मता ॥२४॥

अस्तित्व, संयोग, वियोग, शेषवृत्तिता, एकत्व, अर्थवत्व, पारार्थ्य, अन्यता, अकर्तृत्व और बहुत्व । अव्यक्त और पुरुष के योग से सृष्टि होती है ।

पुरुष निर्लेप तथा निर्विकार होता है । सृष्टि तत्व में जो भी धर्म हैं वे मौलिक धर्म होते हैं । एकत्व, अर्थवत्व और पारार्थ्य ये प्रकृति के धर्म हैं । अन्यत्व और बहुत्व वे पुरुष में अवस्थि हैं, साथ ही अकर्तृत्व भी पुरुष में ही है । अस्तित्व, संयोगवियोग, शेषवृत्ति प्रधान और पूरष दोनों में हैं ॥१५-२६॥

महत्तत्वसे लेकर पञ्चभूतेन्द्रिय वे सब परार्थक हैं, अर्थात् पुरुष

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अन्यत्वं च बहुत्वञ्च पुरुषे ज्ञायतां तथा ।
अकर्तृत्वञ्च तत्रैव ज्ञायते नात्र संशयः ॥२५॥
अस्तित्वं किल संयोगवियोगौ शेषवृत्तिता ।
प्रधाने पुरुषे चापि लभ्यन्ते पुनरुच्यते ॥२६॥
महत्तत्त्वत आरभ्य पञ्चभूतेन्द्रियादिकम् ।
आरभ्यते परार्थाय पूरुषाय न संशयः ॥२७॥
प्रकृतिः कुरुते सर्वं पूरुषस्य कृते तथा ।
यावन्न जायते मुक्तः तावत्सा कुरुते सदा ॥२८॥
मुक्तेस्तु कुरुते नैव किन्तु चान्यकृते स्वयम् ।
कुरुत इति सर्वत्र साङ्ख्यविद्भिर्निगद्यते ॥२९॥
चतुर्दशविधो भूतसर्गस्तत्रैव चिन्त्यते ।

के लिए हैं। प्रकृति सबकुछ पुरुष के लिए करती है। जबतक वह मुक्त नहीं होता तव तक करती ही रहती है। जव वह मुक्त हो जाता है तव उसके लिए न करके औरों के लिए करती है यह साङ्ख्यवादियोंका कहना है ॥२७-२९॥

१४ प्रकारकी भूतसृष्टि मानी गई है। आठ प्रकारकी देवसृष्टि है। तिर्यक् पाँच प्रकारकी सृष्टि है। मानवीय सृष्टि एक ही प्रकार की है। देवसृष्टि सत्वगुण प्रधान है। मानवों की रजोगुण प्रधान है। पशुओं की तमोगुणात्मक सृष्टि है। दिव्य सृष्टि में- ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, देव, गन्धर्व, पितृ, विदेह वे दिव्य सृष्टि हैं। पशुपक्षी, सरीसृप,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अष्टविधा दैवसृष्टिः तिर्यञ्चः पञ्चधा मताः ॥३०॥
एक एव मनुष्याणां सृष्टिर्देवस्य प्रोच्यते ।
सत्त्वप्रधाना देवानां रजस्तु मानवी मता ॥३१॥
तमोयुक्तपशूनां स्यात् सृष्टिरित्यवगम्यताम् ।
ब्राह्म-प्राजापत्य-ऐन्द्र-दैव-गान्धर्व उच्यते ॥३२॥
पित्र्यविदेहप्रकृतिलया दिव्या न संशयः ।
पशुपक्षी सृरीसृपकीटस्थावरका इमे ॥३३॥
मध्ये मनुष्यश्चैकाकी हीत्थं सृष्टिर्विचारिता ।
त्रिविधो बन्धस्तत्रैव त्रिविधो मोक्ष इत्यपि ॥३४॥
वैकृतिक-दाक्षिणिक-प्राकृतिका हि ते मताः ।
एवमत्रैव ज्ञातव्यं जड्तत्त्वञ्च कीदृशम् ॥३५॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डेऽष्टादशोऽध्यायः ॥

कीट, स्थावर वे भूतसृष्टि हैं। और मनुष्य एक ही है।

तीन प्रकारका बन्धन और तीन प्रकारका मोक्ष भी वहीं पर साङ्ख्यवादियों ने विवेचन किया है।

दोनों वे क्रमशः वैकृतिक, दाक्षिणिक और प्राकृतिक ही कहे गए हैं। यहीं पर जडतत्वके विषय में भी जानलेना चाहिए ॥३०-३५॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथैकोनविंशोऽध्यायः

अनादि चेतनं तत्र जडतत्त्वञ्च तादृशम् ।
असङ्गं निष्क्रियं ज्ञानस्वरूपं निर्मलं ततः ॥१॥
निर्लेप-नित्य-कूटस्थं पुरुषत्व-मिहोच्यते ।
जडतत्त्वं सक्रियं स्यात् त्रिगुणात्मकमेव च ॥२॥
परिणामिनित्यरूपं जडतत्त्वं मतं बुधैः ।
गुणानां साम्यता तावत् प्रकृतिरिह ज्ञायताम् ॥३॥
अनुमेयं शब्दशास्त्रगम्यमेव सदा मतम् ।
पुरुषसंनिधे- र्जडतत्त्वे विरूपता भवेत् ॥४॥

अध्याय-१९

अनादिकालिक तत्व 'जड' और 'चेतन' दोनों हैं । 'पुरुष'- असङ्ग, निष्क्रिय, ज्ञानात्मक, निर्मल, निर्लेप, नित्य, कूटस्थ यही पुरुष है । जडतत्व सक्रिय और त्रिगुणात्मक है । वह जड तत्व निरन्तर परिणामी होता है । तीन गुणों की साम्यता ही प्रकृति है । यह अनुमान और आगमद्वारा जाना जाता है । पुरुषके सन्निधिमात्र से जडतत्व में विरूपता आती है । वह विषम परिणाम वाला हो जाता है ।

जैसे भगवान् सूर्य अपने प्रकाशके द्वारा अनन्त जलाशयों में अनन्तरूप से दीखते हैं उसी प्रकार चेतनात्मक ज्ञानराशि विशुद्धचित्त

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विषमपरिणामः स भवतीति न संशयः ।
यथा वा भगवान् सूर्यः स्वप्रतिभासनात् स्वयम् ॥५॥
जलाशयेष्यनन्तेषु दृश्यते तद्वदेव हि ।
चेतनस्य ज्ञानराशिः चित्ते विशुद्धके सदा ॥६॥
सत्त्वमये समष्टौ च व्यष्टौ सत्त्वादिचित्तके ।
पततीति नु सर्वत्र चेतनत्वं प्रतीयते ॥७॥
आत्मनि किल कर्तृत्वं नास्ति संगर्गतः सदा ।
कर्तृत्वं कल्प्यते तेन वस्तुतो नैव कर्तृता ॥८॥
सामीप्यात् कर्तृता कल्प्या रत्ने लोकप्रवर्तनम् ।
सत्तामात्रेण देवस्य प्रकृतौ गतिशीलता ॥९॥

में, सत्वमय-समष्टि में और व्यष्टि प्राणियों के चित्त में चेतनज्ञानराशि व्याप्त हो जाता है और वहाँ चेतनता प्रतीत होती है ॥१-७॥

आत्मा में किसी प्रकारका कर्तृत्व नहीं है किन्तु संसर्गद्वारा ही उस में कर्तृता कल्पित की जाती है वस्तुतः उस में कर्तृत्व नहीं है। सामीप्य के कारण ही उस में कर्तृत्व कल्पित होता है। जैसे रत्न में चमकीले पदार्थ में लौकिक जनताकी प्रवृत्ति होती है। सत्ता से ही, उपस्थितिमात्र से (आत्माकी) प्रकृति में गतिशीलता आती है। किन्तु पुरुष तो निर्भय और अविनाशी है। सबसे पहला परिणाम महत्तत्व है। प्राणियों में, गतिशीलता रजोगुण से आती है। वही गतिशीलता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भवतीति सदा देवो निर्भयो चाविनाशी च ।
महतत्त्वं मतं तावदाद्यं तत् परिणामकम् ॥१०॥
यत् सत्त्वे क्रियामात्रत्वं रजसा क्रियते हि तत् ।
सा क्रिया तमसा नूनं निरुध्यते यथार्थतः ॥११॥
इदं महत्तमं तत्त्वं सत्त्वस्यापि विशुद्धता ।
रूपेणापि समष्टौ तु विशुद्धके च सत्त्वके ॥१२॥
चित्तं तदुच्यते यत्र चाहङ्कारो हि बीजतः ।
अवतिष्ठति तन्नूनं चित्तं स्याद् ईश्वरीयकम् ॥१३॥
व्यष्टिरूपे तु तावत् तत् परित्यज्य विशुद्धताम् ।
तत् चित्तं स्यादनन्तं हि सत्त्वचित्ते ह्यनन्तके ॥१४॥

पदार्थों में तमोगुणद्वारा समाप्त की जाती है ॥८-११॥

यह महत्तम जो तत्व है, प्राणियों में विशुद्ध रूपसे और समष्टि में विशुद्ध सत्व रूपसे भासित होता है। चित्त उसीको कहते हैं जहाँ अहङ्कार बीज रूपसे रहता है वह चित्त निश्चयभी ईश्वरीय चित्त है। व्यष्टिरूप में तो वह विशुद्धताको त्यागकर अनन्त सत्वचित्तो में परिणत हो जाता है। उस में व्यष्टि अहङ्कार बीजरूपसे रहता है। इसे ही बीजचित्त कहा जाता है ॥१२-१५॥

चेतनों मे अपने ज्ञानका प्रकाश अवश्य ही हो जाता है और महत्तत्व में ज्ञानकी ग्राह्यशक्ति अवश्य ही है। यह योग्यता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

व्यष्टिश्चाहङ्कृतिर्नूनं बीजरूपेण तिष्ठति ।
एतानि बीजचित्तानि विज्ञातव्यानि सर्वदा ॥१५॥
चेतनेषु स्वीयज्ञानप्रकाशस्य तथा पुनः ।
महतत्त्वे तु ज्ञानस्य ग्राह्यता किल विद्यते ॥१६॥
अनादि योग्यता चैषा विद्यते सार्वकालिकी ।
महतत्त्वं चेतनत्वं वापि लोके क्वचिन्न हि ॥१७॥
लभ्यते तेन तद् द्रष्टुं केनापि शक्यते यतः ।
पुरुषप्रतिबिम्बेन महतत्त्वं यथार्थतः ॥१८॥
सत्वं रजस्तमोऽधिक्यात् विकृत्यापि स्वयमिह ।
अहङ्कारस्वरूपेण व्यक्तभावे बहिर्मुखम् ॥१९॥

अनादिकालिक है । महत्तत्व चेतन रूप में कहीं भी स्वीकृत नहीं है । इसी लिए उसे सभीलोग जान सकते हैं । पुरुष के प्रतिबिम्बद्वारा यथार्थ रूपसे महत्तत्व सत्व, रजस् तमस् के अधिकताद्वारा तथा विकृतिद्वारा भी अहङ्कार के रूप में बाह्य प्रकट होने पर यही अहङ्कार एकत्व, द्वित्व और बहुत्व, तथा व्यष्टि रूपसे भी विभिन्न रूप में पदार्थोंको उत्पन्न करता ही रहता है । ग्राह्य और ग्राहकता विभाजन अहङ्कार से ही होता है ॥१६-२१॥

ग्राह्य पाँच प्रकार के हैं । तन्मात्राओं के वे सभी विषय बहिर्मुख होते हैं क्यों कि तन्मात्रों के द्वारा सृष्ट हैं । अहङ्कार, इन्द्रियगण, मन

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तज्जातमित्यहङ्कारो ह्यहम्भावेन सर्वदा ।
एकत्वमथवा द्वित्वं बहुत्वं चापिसृष्टिकम् ॥२०॥
व्यष्टित्वेनापि सर्वत्र वैभिन्यं च प्रसूयते ।
विभाजकादहङ्काराद् ग्राह्यग्राहकता स्थिता ॥२१॥
ग्राह्याः पञ्चविधा मात्रशब्दादि विषया इमे ।
बहिर्मुखा भवन्त्येव तन्मात्ररूपतः सदा ॥२२॥
अहङ्कारस्य ग्रहणमिन्द्रियाणि मनस्तथा ।
बहिर्मुखानि भूत्वैव स्थिताः सन्ति न संशयः ॥२३॥
तन्मात्राणां विषमाद्धि परिणामाच्च तत्र वै ।
पञ्चस्थूलभूततत्त्वं जातं बहिर्मुखात्मकम् ॥२४॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्ड एकोनविंशोऽध्यायः ॥

वे सब बहिर्मुख होकर ही रहते हैं ।

तन्मात्राओं के विषय परिणामद्वारा ही पञ्चस्थूलभूत भी बहिर्मुखात्मक हैं ॥२२-२४॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ विंशोऽध्यायः

साङ्ख्ययोगौ पृथङ्नैव विद्वांसः किल मन्वते ।
तयोराधारभूतं तु दर्शनं समतां गतम् ॥१॥
यत्साङ्ख्यैर्लभ्यते स्थानं योगैरपि च लभ्यते ।
यच्च योगेन गम्येत साङ्ख्येनापि समं हि तत् ॥२॥
तस्मादुभयसाम्येन ह्युभयोरविभाज्यता ।
स्थीयते तेन सर्वत्र सामान्येन प्रयुज्यते ॥३॥
सङ्करश्चापि तत्रैव तैस्तु सम्यग्विधीयते ।
साङ्कर्याज् ज्ञानयोगाभ्यां कल्याणं किल चिन्त्यते ॥४॥
तस्मादत्रैव सततं दर्शनयो- र्यथार्थतः ।
स्वरूपमुच्यते रम्यमेकत्रैव प्रयत्नतः ॥५॥

अध्याय-२०

साङ्ख्य और योगको विद्वान् लोग अलग नहीं मानते उन दोनों का आधार तो समान है ॥१॥

साङ्ख्य से जिस अवस्था की प्राप्ति होती है योग से भी वही स्थिति प्राप्त होती है और योग से प्राप्तव्य स्थान साङ्ख्यद्वारा भी मिल ही जाता है ॥२॥ इसी लिए दोनों के समान होने के कारण दोनों में विभेद नहीं किया जा सकता। दोनों में साम्य है। दोनों सङ्करता भी किया जाता है। दोनों के मिश्रणद्वारा भी कल्याण संभव है ऐसा विद्वानों का कहना है। इसी लिए यहाँ दोनों दर्शनोंका यथार्थ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

योगस्य साधना भूमिः सांख्यैः संगृह्यते तथा ।
साङ्ख्यस्य चिन्तने भूमिः योगिभिः सापि गृह्यते ॥६॥
एकं साङ्ख्यञ्च योगञ्च यः पश्यति यथार्थतः ।
उभयत्रैव तस्य स्याद् गतिरित्यवगम्यते ॥७॥
योगेऽपि सततं तेषां गतिर्नूनं प्रजायते ।
तस्मादेव सदा योगयुक्तेन मुनिनापीह ॥८॥
साङ्ख्यं विज्ञायते सम्यङ् नास्ति कश्चन संशयः ।
चित्तमश्व इहैवास्ति स्वामी पूरुष उच्यते ॥९॥
प्रयोजनन्तु ह्यश्वस्य मुख्यं स्वस्वामिनं स्वयम् ।
योगरूपस्य मार्गस्य पूर्तिर्विधाय यत्नतः ॥१०॥
अपवर्गनामधेयं स्थानं प्रापणमुच्यते ।

स्वरूप उपस्थापित किया जाता है, प्रयत्नपूर्वक, जो अत्यन्त रमणीय है ॥३-५॥

योगकी जो साधना भूमि है वह साङ्ख्यों के द्वारा लिया जाता है और जो साङ्ख्य की चिन्तनभूमि है उसे योगियों द्वारा गृहीत होता है ॥६॥

साङ्ख्य और योगको यथार्थ रूप में जो एक ही देखता है वस्तुतः वही तत्वको यथार्थतया जानता है। उसी की उभयत्र गति होती है ॥७॥

उसी प्रकार योग में उनकी गति सदा बनी ही रहती है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विभक्तोऽस्ति चतुर्धा हि मार्ग एष न संशयः ॥११॥
स्थूलभूतानि आद्यःस्यात् सूक्ष्मादारभ्य यत्नतः ।
तन्मात्रावसिनो मार्गो द्वितीयो भाग उच्च्यते ॥१२॥
अहङ्कारः तृतीयः स्याद् अस्मिता च चतुर्थिका ।
इत्थं चतुर्विधो मार्ग इहैव प्रतिपादितः ॥१३॥
अन्ते तटे तु भेदात्मज्ञानरूपं हि घोटक-
शाला संविद्यते तत्र घोटकं परित्यज्यते ॥१४॥
लक्ष्यं चान्तिमतायातम् अपवर्गस्वरूपकम् ।
विशालं राजभवनं तत्रैव प्रापणं स्वयम् ॥१५॥
पुरुषस्यास्ति चोद्देश्यं मुख्यमित्यवधार्यताम् ।
सकामकर्मभिरेष अश्वारोही पतत्यहो ॥१६॥

इसीलिए हमेशा योगिलोग भी ठीक से साङ्ख्यका ज्ञान करते हैं । इस में सन्देह नहीं है । यहाँ पर एक रूपक (दृष्टान्त) के द्वारा यह विषय समझनेका प्रयास किया जाता है -

चित्तरूपी अश्व है । पुरुष अश्वारोही स्वामी है । उसका प्रयोजन अपने स्वामीको योगरूपी मार्ग से होकर यत्नपूर्वक अपवर्ग (मोक्ष) नामक स्थान में पहुचाना है । और यह मार्ग चार प्रकार से विभक्त है । सूक्ष्म से लेकर स्थूल एक है, उसी में स्थित रहना द्वितीय है । अहङ्कार तृतीय अवस्था है और अस्मिता चतुर्थी स्थिति है । इस प्रकार यहाँ चार प्रकार के मार्गका उपदेश किया गया है ॥८-१३॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तदिच्छया हि तस्यैव पृष्टगामी प्रजायते ।
असङ्ख्यगतयस्तस्य घोटकस्य तु सन्तीह ॥१७॥
वृत्तयः किल संप्रोक्ताः क्लिष्टा अक्लिष्टका हि ताः ।
क्लिष्टा हितविरोधिन्यो ह्यक्लिष्टा हितकारिकाः ॥१८॥
पञ्चविधा हिताः प्रोक्ता मूढक्षिप्तौ ततः पुनः ।
विक्षिप्तश्चार्थः चैकाग्रो निरुद्धश्चेति ज्ञायताम् ॥१९॥
आद्या तिस्रस्तु पुरुषे प्रतिकूलात्मिका मताः ।
चान्ते द्वयं तु सततमनुकूलतया स्थितम् ॥२०॥
आद्यत्रीभिर्मार्गजातैरेष घोटक उत्कटम् ।
अनन्तक्लिष्टवृत्तिभिर्विषयं परिसेवते ॥२१॥
तस्मात् पुरुषस्वामी तु जन्ममरणचक्रकम् ।

अन्तिम अवस्था में भेदात्मक ज्ञान रूप अश्वशाला है और वहीं पर अश्वको छोडदिया जाता है। अन्तिम लक्ष्य उसके बाद आता है अपवर्ग स्वरूप, उसी विशाल राज भवन में पहुँचना ही पुरुषका मुख्य लक्ष्य है। किन्तु सकाम कर्मोंद्वारा अश्वारोही का पतन निश्चित होता है। उसकी सकाम इच्छाओं द्वारा ही वह उस अश्वका पृष्टगामी होता है। उस अश्व के अनन्त गतियाँ (चाल) हैं। वृत्तियाँ दो प्रकार की हैं क्लिष्ट और अक्लिष्ट। क्लिष्ट वृत्तियाँ हित विरोधी हैं और अक्लिष्ट वृत्तियाँ हितकर हैं। पाँच वृत्तियों में मूढ, क्षिप्त विक्षिप्तार्थ, एकाग्र और निरुद्ध जानना चाहिए। मूढ, क्षिप्त और विक्षिप्त वे पुरुष के लिए प्रतिकूल हैं और वचे हुए दो हितकर हैं। पहले की तीन वृत्तियों

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सेवते सुखदु:खेसु भ्रमत्येव न संशयः ॥२२॥
स्वीयं वास्तविकं रूपं विस्मृत्यैव यथार्थतः ।
अश्वस्व विषयान् स्वीयभोग्यान् मत्वा सदैव सः ॥२३॥
तत्रैब रमते नूनं संसारे च विमुह्यति ।
ईश्वरानुग्रहादेव यदा चाध्यात्मशास्त्रीय - ॥२४॥
विषयान् वेत्ति यत्नेन गुरूणां कृपयाऽथवा ।
योगिनामपि सङ्गेन लोकस्य वास्तवीं स्थितिम् ॥२५॥
स्वस्य स्वरूपमथ च घोटकस्य तु वास्तवीम् ।
स्थितिं वेत्ति तथा स्वस्य लक्ष्यापवर्गरूपकम् ॥२६॥
साधनै- र्यमनियमैरश्वगृहीतक्लिष्टकान् ।
अक्लिष्टान् कुरुते सोऽयं वृत्तीरित्यवधार्यते ॥२७॥

द्वारा ही, अश्व उत्कट अनन्तवृत्तिद्वारा विभिन्न विषयोंका जन्ममरणरूप चक्रद्वारा सुख और दु:ख के संजाल में निरन्तर घूमता रहता है। साथ ही अपना वास्तविक स्वरूप भूलकर अश्व के जो विषय हैं उन्हीं को अपना उपभोग्य विषय समझता है और उसी में फंसा रहता है। संसार में ही फंसजाता हैं। उसके बाद ईश्वरानुग्रहद्वारा अथवा गुरुके कृपाद्वारा भी, योगियों के सङ्ग से भी लोक की वास्तविक स्थितिको जानता है साथ ही चित्तरूपी अश्व की अवस्था को भी समझजाता है। अब अपवर्ग रूप लक्ष्यको समझ जाता है। आसनों के अभ्यासद्वारा फिर यत्नपूर्वक अश्व में आरुढ होता है और अपने लक्ष्य को स्मरणपूर्वक प्राणायाम के अभ्यासद्वारा अश्वको अपने वश में करता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आसनाभ्यासतस्तत्र पुनः स यत्नपूर्वकम् ।
आरोहति स्वयमश्वं स्मरति चापवर्गकम् ॥२८॥
प्राणायामस्य योगेन पतति नैव चाश्वतः ।
प्रत्याहारवशात् तत्र घोटकं स्ववशे स्वयम् ॥२९॥
कुरुते स्वीयमार्गस्थं घोटकं च करोत्यहो ।
एतद्धि धारणा प्रोक्ता मार्गे च धावनं ततः ॥३०॥
घोटकस्य हि तद्ध्यानं मार्गान्ते प्रापणं ततः ।
समाधिरिति विद्वद्भिः याथार्थ्येन विवेचितम् ॥३१॥
वितर्काच् च विचाराच्च आनन्दादपि यत्नतः ।
अस्मितानुगतरूपात् चैकाग्रात् क्रमशस्तथा ॥३२॥
भोगरूपस्य मार्गस्य स्थूलसूक्ष्मस्वरूपयोः ।

है। धारणा के द्वारा अश्वको उसी मार्ग में ठीक से दौडाता है उसके बाद मार्ग के अन्तिम में पहुँचना ध्यानद्वारा होता है। उसके वाद समाधि में प्रवेश करता है। इसी प्रकार यथार्थ रूप में इसका यहाँ प्रतिपादन किया गया है ॥१४-३१॥

उसके बाद वितर्क, विचार और आनन्दकी स्थितियों से तथा अस्मितानुगतरूप एकाग्रताद्वारा क्रमशः भोगरूप मार्ग के स्थूलसूक्ष्म स्वरूपात्मक अहङ्कृति अस्मिता को समाप्त करके विवेक ख्यातिद्वारा अश्वको अश्वशाला में बाँधकर सर्ववृत्ति निरोधात्मक कर्मद्वारा अपवर्ग प्राप्त करता है। उसके बाद अपने आपको परमात्मा में विलीन करता है। इस में सन्देह नहीं है। यहाँ इस प्रकार योगका स्वरूप एक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अहङ्कृत्यस्मितारूपभोगान् समाप्य यत्नतः ॥३३॥
विवेकख्यातिद्वारेण घोटकं किल शालके ।
परित्यज्य सर्ववृत्तिनिरोधाद्धि प्रयत्नतः ॥३४॥
अपवर्गं च लभते स्वात्मानं परमात्मनि ।
विलीनयति वै तात नात्र कार्या विचारणा ॥३५॥
इत्थं रूपकरूपेण योगस्य स्वरूपं मया ।
प्रोक्तं तद्वास्तवं रूपं विद्यते नात्र संशयः ॥३६॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे विंशोऽध्यायः ॥

दृष्टान्तद्वारा प्रस्तुत किया गया है। यही वास्तविक स्वरूप है सभी लोगों को समझना चाहिए ॥३२-३६॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथैकविंशोऽध्यायः

यमश्च नियमश्चैवासनं वापि यथाक्रमम् ।
प्राणायामस्तथा प्रत्याहारस्तु बाह्यसाधनम् ॥१॥
एतेषां सहयोगेन ह्यान्तरैः साधनैः त्रिभिः ।
धारणया तथा ध्यानसमाधिभ्यां यथार्थतः ॥२॥
वृत्तिः चित्तस्य याथार्थ्यरूपेणात्र प्रजायते ।
साक्षात्कारः तथा वितर्कानुगतेन समाधिना ॥३॥
चित्तस्थान् स्थूलविषयान् भूतानामपि पञ्चकान् ।
अवस्थाजातविषयान् विजानाति न संशयः ॥४॥
विचारानुगतेनापि समाधिना यथार्थतः ।
सूक्ष्मान् चित्तस्वरूपान् हि वेत्ति तत्र स्वयं ततः ॥५॥

अध्याय-२१

यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार क्रमशः योगियों के लिए बाह्य साधन हैं। इनके सहयोगद्वारा आन्तरिक तीन साधनों के द्वारा धारणा, ध्यान और समाधियों से यथार्थ रूप में चित्तवृत्तिका साक्षात्कार और निरोध किया जाता है। उस में वितर्कानुग समाधिद्वारा चित्तगत स्थूल विषयोंको तथा पञ्च भूतों के अवस्था को भी ठीक से साक्षात्कार किया जाता है। उसके बाद विचारानुगत समाधिद्वारा चित्त के सूक्ष्म विषयों को ठीक से जाना जाता है। सूक्ष्मभूत उनके मात्रायें आदि सभीको यथार्थ रूपसे जाना जाता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सूक्ष्मभूतान् तथा तेषां मात्राणामपि वास्तवम् ।
स्वरूपं वेत्ति वै तावत् साधकश्च ततः पुनः ॥६॥
आनन्दानुगतेनापि समाधिना यथार्थतः ।
अहङ्कारस्वरूपं हि चित्तस्य क्रियते ततः ॥७॥
साक्षात्कार इति तस्मादस्मितानुगतेन तु ।
समाधिना ह्यात्मज्ञानप्रकाशितस्य यत्नतः ॥८॥
चित्तस्य स्वरूपं वेत्ति ततो विवेकनामक-
ख्यात्या चित्तात्मनोर्भेदो ज्ञायते नात्र संशयः ॥९॥
वैराग्याद् अथ भक्त्या च परमात्मनि साधकः ।
संस्थितो जायते तस्मात् प्राप्तव्यं नावशिष्यते ॥१०
चित्तवृत्तिनिरोधो हि योग इत्यवधार्यते ।
योगाद्धि संस्थितिस्तस्मात् स्वस्वरूपे न संशयः ॥११॥

उसके बाद अस्मितानुगत समाधिकेद्वारा आत्मज्ञान के द्वारा आत्मा और चित्त के भेदको जान लेता है । वैराग्य और परमभक्तिद्वारा परमात्मा में स्थित हो जाता है । अब जीवन में प्राप्तव्य कुछ भी नहीं रह जाता है ॥१-१०॥

'चित्तवृत्ति निरोध ही योग है इसी चित्तवृत्ति निरोधरूप योग द्वारा ही स्वरूप में अवस्थित हो जाने के बाद, द्रष्टा स्वयं अन्यत्र वृत्ति सारूप्य के द्वारा पदार्थों का साक्षात्कार कर लेता है । एक ही पदार्थ में पूर्ण अवस्थिति ही सम्प्रज्ञात समाधि कहा जाता है । उसका भी चार प्रकारका भेद किया जाता है । वितर्क, विचार, आनन्द और

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्वरूपावस्थिते चान्यस्थाने द्रष्टा स्वयं पुनः ।
वृत्तिसामान्यात्मरूपं प्रतीयते न संशयः ॥१२॥
मनसस्तु निरोधो हि द्विधा योगे विधीयते ।
एकस्मिन् वस्तुनि पूर्णस्थितिरेवात्र प्रोच्यते ॥१३॥
सम्प्रज्ञातसमाधिस्तु स एव स्थितिरुच्चते ।
तस्याप्यस्ति चतुर्धा हि भेद इत्यवगम्यते ॥१४॥
वितर्कश्च विचारश्च ह्यानन्दश्चास्मिता मता ।
स्थूलवस्तुनि चैकाग्रो वितर्क इति ज्ञायताम् ॥१५॥
सूक्ष्मवस्तुनि चैकाग्रो विचार इति मन्यताम् ।
अहङ्कृतौ तु चैकाग्र आनन्दो मन्यते बुधैः ॥१६॥
अहङ्कारहीनतया चैकाग्रश्चास्मिता मता ।
ततोऽपि च विवेकस्य ख्यातिरुच्चैर्मतं बुधैः ॥१७॥

अस्मिता, स्थूल पदार्थ में एकाग्रता वितर्क कहा जाता है । सूक्ष्म पदार्थों में चित्तकी एकाग्रता विचार है । अहङ्कार में एकाग्रता अस्मिता है । उसके बाद विवेकख्याति उच्च अवस्था है । चित्तकी सात्विकी वृत्ति ही विवेक ख्याति कहा जाता है । निरन्तर उसके अभ्यासद्वारा आत्मस्थिति की उपलब्धि होती है । 'नेति नेति' वाक्य में वर्णित स्वरूप इसी अवस्थाका नाम है। इस प्रकार 'सर्ववृत्तिच्छेदरूप' योग यही है। उसी समाधिको असम्प्रज्ञात समाधि कहा जाता है। उसका स्वरूप योग शास्त्र में जैसा वताया है उसे मैं वताने जा रहा हूँ॥११-२०॥

चित्त के स्वरूपका पूर्ण नाश ही निरोध है। नाशका अर्थ जड

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

चित्तस्य सात्त्विकी वृत्तिर्विवेकख्यातिरुच्यते ।
सततं तस्य चाभ्यासाद् भवेदात्मस्थितिः स्वयम् ॥१८॥
'नेति नेति' वाक्यगम्यं स्वरूपमिह लक्ष्यते ।
इत्थं सर्ववृत्तिच्छेदो योग इत्युच्यते बुधैः ॥१९॥
असम्प्रज्ञातनाम्नैव स समाधिर्निगद्यते ।
स्वरूपमस्य वक्ष्यामि योगशास्त्रे न संशयः ॥२०॥
स्वरूपस्य च सम्पूर्णनाशो निरोध उच्यते ।
जडचेतनसंयोगनाश इत्यवधार्यते ॥२१॥
अविवेकपूर्णयोगो द्वयोर्यद्धि विराजते ।
तस्य नाशो हि चैतन्यतत्त्वेनात्राभिधीयते ॥२२॥
जडचेतनसंयोगज्ञाननाशे यथार्थतः ।
परमात्मनि संशुद्धे द्रष्टुरवस्थितिर्भवेत् ॥२३॥

और चेतनाका संयोग नाशको कहा जाता है। दोनोंका अविवेक पूर्ण संयोगका पूर्ण नाश ही 'चैतन्य' कहा जाता है ॥२१-२२॥

जडचेतन दोनों के संयोगज्ञानका नाश हो जाने पर शुद्ध परमात्मा में 'द्रष्टा की अवस्थिति हो जाती है। सुखरूप, दुःखरूप, एवं मोहरूप चित्त हो जाता है। उसी से द्रष्टा भी सुख-दुःख एवं मोहरूप हो जाता है। वृत्तियों के निरोध के बाद दुःख सुख एवं मोह रूपात्मक नहीं होता। जैसै चन्द्रमाका बिम्ब जल में दिखता है जल के हिलने पर हिलता उसी प्रकार चित्तकी स्थिति भी होती है। चित्त, मन एवं बुद्धि वे पर्यायवाची हैं कभी इन्हें अन्तकरण भी कहा जाता है। सभी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सुखरूपं दुःखरूपं मोहरूपं हि चैतसम् ।
तेनैव भवति तद्वद् द्रष्टापि तेन प्रोच्यते ॥२४॥
वृत्तीनां हि निरोधे तु न दुःखसुखमोहभाक् ।
प्रतिबिम्बितचन्द्रोऽपि जलचलनतो चलेत् ॥२५॥
स्थिरे स्थिरो भवेत् तद्वद् चित्तस्यापि स्थितिर्मता ।
चित्तं मनस्तंथा बुद्धिरन्तःकरणमित्यपि ॥२६॥
पर्यायवाचिनः शब्दा भवन्त्येव क्वचित् क्वचित् ।
सर्वबन्धनदुःखानां मूलं तत् कारणं मतम् ॥२७॥
पञ्चैव क्लेशः संप्रोक्तोऽविद्यातु प्रथमो मता ।
अस्मितारागद्वेषौ च ह्यभिनिवेश इत्यपि ॥२८॥
अनित्ये नित्यदृष्टिर्वा ह्यशुद्धे शुचिता पुनः ।
दुःखे सुखमात्मदृष्टिरनात्मनि निगद्यते ॥२९॥

बन्धन एवं दुःखोंका मूल इन्हें ही कहा जाता है । क्लेश पाँच हैं । अविद्या प्रथम हैं । उसके बाद अस्मिता, राग, द्वेष, एवं अभिनिवेश हैं । अनित्य में नित्य दृष्टि, अशुद्ध में शुद्धि, दुःख में सुख, अनात्म में आत्मदृष्टि ही इसका लक्षण है । जड में चित्त चिति और शुद्ध पुरुष में भेद नहीं होता । अविद्या के कारण अविवेक अस्मिता होती है । चित्त और चिति में विवेक कभी भी नहीं होता । इसी लिए सुखकी वासना जडतत्वों में होती है । अस्मिता क्लेशद्वारा उत्पन्न वासना ही राग है । इस दुःख में विघ्नजन्य संस्कार ही प्रभावित होते हैं । वे ही द्वेष शब्द से कहे जाते हैं इस में सन्देह नहीं है । इसी प्रकार क्रमशः

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जडे चित्ते चितौ शुद्धपुरुषे भेदो नेष्यते ।
अविद्या कारणाज्जाता अविवेकास्मिता मता ॥३०॥
चित्ते चितौ च नैवात्र विवेको जातुचित् तथा ।
तेनैव जडतत्त्वेषु सुखस्य वासना भवेत् ॥३१॥
अस्मिताक्लेशतो जाता वासना राग उच्यते ।
अस्मिन् दुःखे विघ्नजन्यसंस्काराः प्रभवन्ति च ॥३२॥
त एव द्वेषशब्देन बोध्यन्ते नात्र संशयः ।
एवमन्येऽपि विषया ज्ञातव्याः क्रमशस्त्विह ॥३३॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्ड एकविंशोऽध्यायः ॥

अन्य विषय भी ज्ञातव्य हैं ॥२१-३३॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

दुःखस्य कारणात् स्वीयकायरक्षणवासना ।
उत्पद्यते च सैवात्र ह्यभिनिवेश उच्यते ॥१॥
कर्मणां वासनास्तत्र क्लेशेभ्यः किल ज्ञायताम् ।
उत्पद्यन्ते ततो जन्मवृक्षस्तत्रैव जायते ॥२॥
तत्र जातिरायुर्भोगो भवन्ति क्रमशस्त्विह ।
सुखं दुःखं च द्विविधस्वादो भवति निश्चितम् ॥३॥
हिंसारहितपुण्येन कर्मणा लभ्यते सुखम् ।
हिंसात्मकेन पापेन कर्मणा दुःखता भवेत् ॥४॥
तत्त्वविदां तु संदृष्टौ सुखं नात्र सुखं भवेत् ।

अध्याय-२२

दुःखों के कारण ही अपने शरीररक्षा की वासना उत्पन्न होती है । उसे ही अभिनिवेश कहा जाता है ॥१॥

क्लेशों के कारण ही कर्मों की वासना उत्पन्न होती है । उसी से ही जन्मरूपी वृक्ष खडा होता है । उसे जन्म, आयु और भोग क्रमश होते हैं साथ ही सुखदुःख रूप दो स्वाद उस में होते हैं । हिंसारहित पुण्यके द्वारा सुख प्राप्त किया जाता है । हिंसात्मक पापद्वारा दुःख प्राप्त किया जाता है। तत्वविदों के दृष्टि में सुख सुख नहीं है, उसे वे दुःख ही मानते हैं। वह तीन कारणों से होता है। विषयों में

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दुःखमेव हि तन् नूनं त्रिविधात् कारणाद् यतः ॥५॥
विषयेषु परिणामदुःखं तापस्य दुःखता ।
संस्कारदुःखता वापि भवत्येव न संशयः ॥६॥
त्रयाणां गुणजातानां चञ्चलत्वात् सदैव हि ।
सुखदुःखमोहवृत्तिरेकैव नैव तिष्ठति ॥७॥
परिवर्तनता तत्र सर्वदैव विलोक्यते ।
तस्मात् दुःखात् परं सुखं सुखाद् दुःखं प्रजायते ॥८॥
ऐकान्तिकं सुखं नैव विषये लभ्यते क्वचित् ।
तेनैव योगसूत्रेषु हेयं दुःखमनागतम् ॥९॥
कारणं हेयदुःखस्य संयोगो द्रष्टृदृश्ययोः ।

परिणाम दुःख, तापदुःख, और संस्कार दुःख होते हैं ॥२-६॥

तीन गुणों के चञ्चलता के कारण सुखवृत्ति, दुःखवृत्ति और मोहवृत्ति होते रहते हैं। हमेशा एक ही वृत्ति नहीं रहती है। उस में हमेशा परिवर्तनता होती रहती है। इसी लिए दुःख से सुख, सुख से दुःख हमेश होता रहता है। एकान्तिक सुख विषयों में कभी भी नहीं होता। इसी लिए योग सूत्र में कहा है 'अनागतदुःखं हेयं है। हेयदुःख का कारण द्रष्टा और दृश्य का संयोग ही है। दृश्य तीन प्रकारका है। प्रकाश सत्वगुणों से होता है। क्रिया रजोगुण से और तमःसे स्थिति होती है। पञ्चस्थूलभूत पाँच तन्मात्रों से होते है। पञ्चज्ञानेन्द्रिय,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दृश्यं तु त्रिगुणं प्रोक्तं प्रकाशः सत्त्वतो भवेत् ॥१०॥
क्रिया तु रजसा तावत् तमसा स्थितिरिष्यते ।
पञ्चस्थूलभूतजातं तन्मात्रा किल पञ्चकम् ॥११॥
पञ्चज्ञानेन्द्रियं पञ्च कर्मेन्द्रियं क्रमादिह ।
मनस् चित्तमहङ्काराः एतेषां तु प्रयोजनम् ॥१२॥
भोगापवर्गयोः तस्मै पुरुषाय यथार्थतः ।
स्वरूपदर्शनं नूनं दृष्टमेतद्धि वर्तते ॥१३॥
निर्मलो दृष्टिसम्पन्नो निर्विकारस्तु विद्यते ।
द्रष्टा चित्तवृत्तिज्ञाता भवतीति न संशयः ॥१४॥
प्रयोजनं तु दृष्टस्य ह्यपवर्गस्य प्रापणम् ।

पञ्चकर्मेन्द्रिय, और मन चित्त अहङ्कार इन सबोंका प्रयोजन भोग और अपवर्ग उसपुरुष के लिए उपस्थापित करना है। उसके स्वरूप दर्शन कराना भी है। चित्तवृत्तिका ज्ञाता द्रष्टा निर्मल, दृष्टिसम्पन्न, निर्विकार होता है ॥७-१४॥

उसका एक ही प्रयोजन है, अपवर्गकी प्राप्ति जो पुरुष के लिए है। जो योगी मुक्त हो जाते हैं उनका भी प्रयोजन शेष रहता है वह है अन्यों की मुक्ति। वे सब योगी लोग सम्प्रज्ञात समाधिद्वारा पुरुषोंकी उपलब्धि करते हैं और असम्प्रज्ञात समाधिद्वारा अपवर्ग (अन्योंका) उपलब्ध करते हैं। चित्त ही दृश्य है और पुरुष द्रष्टा है। भोग्य और

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पुरुषस्य कृते तावत् स्वरूपस्थितिरुच्यते ॥१५॥

मुक्तानां योगिवृन्दानां प्रयोजनात्परं पुनः ।

अन्येषामपवर्गस्य प्रयोजनं समं मतम् ॥१६॥

पुरुषस्योपलब्धिस्तु संप्रज्ञातसमाधिना ।

जायते चापवर्गस्त्वसम्प्रज्ञातसमाधिना ॥१७॥

दृष्यं तु प्रोच्यते चित्तं द्रष्टा पूरुष उच्यते ।

तयोरासक्तिजातस्तु भोग्यभोक्तृत्वभावतः ॥१८॥

स्वस्वामिभासम्बन्धः कैश्चिचदित्थं प्रकल्प्यते ।

तच्च संयोग इत्येव पतञ्जलिमुनेर्मतम् ॥१९॥

संयोगे कारणं तावदविद्या किल चोदिता ।

भोक्तृत्वभावद्वारा ही दोनों की आसक्ति होती है ।

कुछ दार्शनिक इसे स्व-स्वामिभाव सम्बन्ध के द्वारा होता है दोनों का संयोग, ऐसा कहते हैं। वह केवल संयोग है ऐसा पतञ्जलिमुनिका मत है। उन दोनोंका संयोग अविद्याके कारण से होता है । उसी अविद्या के कारण अविवेक पूर्ण संयोग होता है। दुःखका नितान्त नाश तभी होता है जब वह सम्बन्ध पूर्ण रूपसे नष्ट हो जाता है । अविद्या के नष्ट होने पर ही वह सम्बन्ध नष्ट हो जाता है । उसके बाद ही संयोग नाश होता है । दुःख नाशका कारण विवेकख्याति से उत्पन्न होता है । उसे ही अविप्लव कहा जाता है । वही हानोपाय है । उस

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अविवेकपूर्णयोगः तेनैव किल जायते ॥२०॥
नितान्तं दुःखहानिस्तु तस्य निवारणाद् भवेत् ।
अविद्यायां च नष्टायां संयोगः किल नश्यति ॥२१॥
एतदेव हि दुःखस्य हानमित्युच्यते बुधैः ।
चेतनस्य तु कैवल्यमिदमेव प्रकीर्तितम् ॥२२॥
दुःखाभावकारणं तु विवेकख्यातिरिष्यते ।
अविप्लवा च सा प्रोक्ता हानोपायः स एव हि ॥२३॥
तस्या विवेकख्यातेस्तु प्रज्ञा सप्तविधा मता ।
तत्सर्वमिह ज्ञातव्यं शास्त्रकारैर्निरूपितम् ॥२४॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे द्वाविंशोऽध्यायः ॥

विवेक ख्यातिद्वारा उत्पन्न प्रज्ञा सप्तविध है। यह सब शास्त्रों में वताया है उसे यहाँ निरूपित किया जाता है ॥१५-२४॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

ज्ञातव्यं यद्धि तज्ज्ञातं यद्धि गुणमयं मतम् ।
परिणाम-ताप-गुणवृत्तिविरोधसंस्कृति-
दुःखरूपं हि सर्वत्र हेयं तेनैव तन्मतम् ॥१॥
द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुरपाकृतः ।
तेनैव नैव तत्त्याज्यं शेषत्वेनात्र संस्थितम् ।
त्याज्यं तु सकलं त्यक्तमित्येव द्वितीया मता ॥२॥
साक्षात्कर्तव्यता यस्य चासीत् तच्च कृतं स्वयम् ।
हानस्य साक्षात्करणान् निरोधेन समाधिना ।
नास्ति किञ्चित् स्थितं सक्षात्कारायेति तृतीयकम् ॥३॥
कर्तव्यं यच्च तत्रासीत् कृतमेवात्र विद्यते ।

अध्याय-२३

१. जो कुछ जानना था जान जान लिया अर्थात् जितना गुणमय दृश्य है वह सब परिणाम, ताप और संस्कार दुःखों तथा गुणवृत्ति विरोध से दुःखरूप ही है। इसी लिए हेय है। अब कुछ जानने योग्य नहीं रहा ।

२. जो कुछ दूर करना था दूर करदिया, अर्थात् द्रष्टा और दृश्यका संयोग जो हेयहेतु है वह दूरकर दिया। अब कुछ दूरकरने योग्य नहीं रहा ।

३. जो कुछ साक्षात् करना था साक्षात् कर लिया, अर्थात् निरोध

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हानोपायो विवेकस्य ख्यात्या सम्पादितो मया ।
कर्तव्यं नावशिष्येत कृत्यं सर्वं समापितम् ।
इत्येव किल सम्प्रोक्ता प्रज्ञा चतुर्थी संमता ॥४॥
भोगापवर्गयोर्यद्धि प्रापणस्य तु विद्यते ।
अधिकारो हि चित्तस्य तदपि पूर्णतां गतम् ।
नास्ति कश्चन शेषस्तु अधिकार इति स्वयम् ॥५॥
वेत्ति सा पञ्चमी प्रज्ञा विवेकख्यातिसम्मता ।
भोगापवर्गयोर्यद्धि प्रयोजनं स्वयं तदा ।
स्वीये लीनं कारणे तु सिद्धं तच्च प्रयोजनम् ।
षष्ठी विवेकख्यातेस्तु प्रज्ञापीह निवेदिता ॥६॥
गुणात् परे शुद्धरूपे परमात्मनि संस्थितिः ।

समाधिद्वारा हानको साक्षात् कर लिया । अब कुछ भी साक्षात् करने योग्य नहीं रहा ।

४. जो कुछ करना था कर लिया, अर्थात् हानका उपाय अविप्लव विवेकख्याति सम्पादन कर लिया । अब कुछ करने योग्य नहीं रहा ।

५. चित्त ने अपने भोग अपवर्ग दिलानेका अधिकार पूरा कर दिया, अब कोई अधिकार शेष नहीं रहा ।

६. चित्त के गुण अपने भोग अपवर्गका प्रयोजन सिद्ध करके अपने कारणों में लीन हो रहे हैं ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पुरुषस्य प्रजायेत सप्तमी सा मता बुधैः ।
इत्थं सप्तविधा प्रज्ञा यथारूपावभासिनी ॥७॥
निवेदिता मया योगशास्त्रसम्मतवादिना ।
योगाङ्गानामनुष्ठानाद् अशुद्धिक्षयतस्तथा ॥८॥
ज्ञानदीप्तिर्विवेकस्य ख्यातिपर्यन्तमेव च ।
गच्छतीति तदा सर्वं योगिनां किल ज्ञायते ॥९॥
अष्टविधञ्च वै चाङ्गं योगस्येह निगद्यते ।
यमश्च नियमश्चैवासनप्राणायमौ ततः ॥१०॥
प्रत्याहारधारणे च ध्यानं समाधिभावना ।
सबीजस्य समाधेस्तु कारणं त्रितयं मतम् ॥११॥
धारणा च तथा ध्यानं किञ्च समाधिरुच्यते ।

---

७. गुणों से परे होकर शुद्ध परमात्मस्वरूप में अवस्थिति हो रही है ।

इस प्रकार सात प्रकारकी प्रज्ञा यथारूपावभासिनी है जिससे पुरुष मुक्त हो जाता है ॥१-७॥

यहाँ पर योगाङ्गों के अनुष्ठानद्वारा तथा अशुद्धिक्षयद्वारा ज्ञानदीप्ति और विवेकख्याति तक सभी योगियोंका पहुँच हो जाता है ॥८-९॥

योग के आठ अङ्ग वतलाए गए हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि । सबीज समाधि के ती कारण हैं धारणा, ध्यान और समाधि । तीनोंका समवाय ही संयम कहलाता है । वे तीन अन्य पाँचों के अपेक्षा अधिक आन्तरिक साधन हैं । किन्तु वे

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

त्रयाणां समवायस्तु संयमोऽत्र निगद्यते ॥१२॥
अन्येषां किल पञ्चानामपेक्षया तु चान्तराः ।
साधनत्वेन संख्याताः किन्तु बाह्या मताः पुनः ॥१३॥
निर्बीजस्य समाधेस्तु मुख्यं तु कारणं यतः ।
परमं किल वैराग्यमित्याहुर्मुनयः स्वयम् ॥१४॥
संयमस्य कारणात्तु सिद्धयोऽत्र भवन्ति च ।
सिद्धिभिर्योगशास्त्रे तु श्रद्धा भवेत् समुत्थिता ॥१५॥
असमाहितचित्तानां सहायकास्तु ता मताः ।
समाधौ सिद्धयः सर्वा विघ्ना एव न संशयः ॥१६॥
सर्वसिद्धिभिर्वैराग्याद् दोषबीजक्षयात् ततः ।
कैवल्यं किल प्राप्येत योगिना नात्र संशयः ॥१७॥

भी निर्बीज समाधि के लिए बाह्य साधन ही हैं। निर्बीज समाधिका मुख्य अङ्ग तो परम वैराग्य ही है ऐसा मुनियों का कहना है। संयम के द्वारा ही सिद्धियाँ सहायक हैं किन्तु वे सबके सब समाधिके तो विघ्न ही हैं। सभी सिद्धियों से वैराग्य प्राप्त होनेपर दोषबीज के नाश होने पर योगिलोग कैवल्य प्राप्त करते है। इस में संशय नहीं है ॥८-१७॥

चेतन, जिस चित्तकी वातकी जा रही है वह तो अपरिणामी, क्रिया से रहित, ज्ञानात्मक है, वह सर्वसाक्षी होते हुए भी किसी प्रकार से वह दृश्य के साथ सर्वाकार हो जाता है। चित्तका जो अपना स्वरूप

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यच्च संविद्यते तत्त्वं चेतनत्वं यथार्थतः ।
अपरिणामि क्रियया रहितं ज्ञानरूपकम् ॥१८॥
भवदपि साक्षिकत्वं कथञ्चनावहीयते ।
तथाद्रष्टृदृश्यचित्तं सर्वाकारं प्रजायते ॥१९॥
स्वकीयं स्वरूपं तस्य चित्तस्य किल विद्यते ।
पुरुषप्रतिबिम्बेन ज्ञानवत् तत् प्रजायते ॥२०॥
द्रष्ट्र्युपरक्तता तस्य स्वरूपं द्वितीयं मतम् ।
स्वरूपं स्वकीयं तस्य चित्तस्य किल विद्यते ॥२१॥
दृश्योपरक्तरूपं हि तदीयं किल बोध्यते ।
दर्पणमिव तच्चित्तं सर्वत्र विद्यते तथा ॥२२॥
यद्यद् बिम्बं तदायाति तत्स्वरूपं प्रजायते ।

है उस में पुरुषका प्रतिबिम्ब पडने के कारण यह ज्ञान वाला हो जाता है। द्रष्टा से उपरक्त होने के कारण वह द्रष्टा जैसा हो जाता है यह उसका दूसरा स्वरूप है। दृश्य से उपरक्त रूप ही उसका अपना रूप है। दर्पण के तरह ही चित्त होता है। इस में जो कुछ भी भासित होता है वह वही जैसा लगने लगता है। फिर भी उसकी भोक्तृता पारार्थ्य ही है। अनन्त वासनाओं के कारण चित्रित यह चित्त पुरुष के लिए ही है। क्यों कि यह पुरुष उसके साथ एकाकार हो जाने के कारण समाधि के साथ योगियों के चित्त में महान् भेद उत्पन्न हो जाता है । उससे आत्मभाव नष्ट होता है । मैं कौन हूँ कहाँ से आया यह भाव सर्वथा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तथापि भोक्तृता तस्य पारार्थ्यमेव ज्ञायताम् ॥२३॥
अनन्तवासनाभिस्तु चित्रितं यद्यपि स्वयम् ।
चित्तं तथापि तत्सर्वं पुरुषस्य कृते मतम् ॥२४॥
यतो हि पुरुषस्तावत् संहत्यकारी विद्यते ।
समाधिना च योगिनां पुरुषचित्तयोर्महान् ॥२५॥
भेदस्तु बोध्यते नूनमात्मभावश्च नश्यति ।
कोऽहं कुतश्च किञ्चाहं भावजातं विनश्यति ॥२६॥
प्रवृत्तिर्वै गुणानां तु भोगापवर्गयोः कृते ।
पुरुषस्येति तत् सिद्धं यदापि च प्रयोजनम् ॥२७॥
पुरुषं प्रति वै तस्य कर्तव्यं नावशिष्यते ।
तानि वै खलु लीयन्ते स्वीये कारणके ततः ॥२८॥

नष्ट हो जाता है । गुणों की प्रवृत्ति भोग और अपवर्ग के लिए ही है । तव पुरुष के प्रति उसका कर्तव्य शेष नही रह जाता । उसके बाद वे सब गुण अपने कारणों में विलीन हो जाते है । इस प्रकार पुरुष के कैवल्य सम्पादन करके स्वीय कारण गुण में वे गुण लीन होते है ऐसा चिन्तन किया जाता है ॥१८-२९॥

अथवा धर्मवाले चित्तका परिणाम क्रमद्वारा गुणों की लीनावस्था अपने कारणों में होती है किन्तु चिति स्वयं ही चित्तके साथ उनका सम्बन्ध होने नही. देती । उसके बाद शुद्ध परात्पर परब्रह्म में स्थिति ही कैवल्य है ऐसा योगविद विद्वान् बोलते हैं । अथवा चित्तिशक्ति की अपने स्वरूप में अवस्थिति ही कैवल्य है ऐसा विद्वान् वतलाते हैं ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इत्थं पुरुषकैवल्यसम्पादनात् परं स्वयम् ।
स्वकारणे लयश्चात्र गुणानां किल चिन्त्यते ॥२९॥
अथवा धर्मिचित्तस्य परिणामक्रमात्मनाम् ।
गुणानां लीनता स्वीयकारणेऽत्र चितिः स्वयम् ॥३०॥
चित्तेन सह सम्बन्धं नाददाति कथञ्चन ।
शुद्धपरात्परं ब्रह्मस्वरूपस्थितिरेव हि ॥३१॥
कैवल्यमिति योगज्ञा वदन्ति नात्र संशयः ।
अथवा चितिशक्तेस्तु स्वरूपवस्थितिः स्वयम् ॥३२॥
कैवल्यमिति विद्वांसो वदन्त्यत्र यथार्थतः ।
चितेः स्वरूपमथ च निवेद्यते यथार्थतः ॥३३॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

इसी लिए अब यहाँ चितिका स्वरूप वतलाया जाता है ॥३०-३३॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

चितिविमर्शः

केयं चितिर्न वै ज्ञाता सूत्रेषु नैव दर्शिता ।
रहस्यं सकलं रम्यं तदिहैव प्रकाश्यते ॥१॥
परा संविद् हि चित् प्रोक्ता चितिरित्यवगम्यताम् ।
निर्विकारं हि तत्तत्वं सा प्रोक्ता परमार्थसत् ॥२॥
यदा विज्ञायते सैव चितिस्तदा कथञ्चन ।
अहं न भासते चेदं नापि ज्ञानं न ज्ञेयता ॥३॥
स्फुरति केवलं सैव चितिः सर्वप्रकाशिका ।
ज्ञातृज्ञानग्रहकाणां ग्राह्यस्यापि च लोपतः ॥४॥

अध्याय-२४

यह चिति क्या है ? यह योग सूत्रों में व्याख्या नहीं है। उसका वास्तविक रहस्य अत्यन्त रमणीय है उसे यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है ॥१॥

'परा संवित्' ही चित् है। उसे ही चिति कहा जाता है। वह निर्विकार तत्व है। उसे ही परमार्थसत् कहा जाता है ॥२॥

जब वह चिति भासित होती है। उस समय अहङ्कार समाप्त हो जाता है। ज्ञान और ज्ञेय भी नहीं रहते ॥३॥

उस समय केवल सर्वप्रकाशक वह चिति मात्र भासित होती है ज्ञाता, ज्ञान और ग्राहक भी पूर्णरूपसे लुप्त हो जाते हैं। क्यों कि वहाँ अहङ्कार और इदन्ता के एकता होती है और अन्य कुछ भी भासित

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अहमिदन्तयोरैक्याद् न किञ्चित् तत्र भासते ।
स्वात्मनि चेतना सेयं तिष्ठति न परस्य तु ॥५॥
प्रकाशस्याऽप्यपेक्षास्ति चितेस्तावत् स्वतन्त्रता ।
प्रकाशस्य विमर्शोऽत्र कथ्यते शास्त्रवादिभिः ॥६॥
सैव प्रकाशते नित्यं चितिरित्यवगम्यते ।
तस्याः प्रकाशतः सर्वं प्रकाशते यथार्थतः ॥७॥
प्रकाशेत क्वचिन्नैव तत्प्रकाशं विना क्वचित् ।
तस्या एव प्रकाशेन सर्वं वस्तु विभासते ॥८॥
न केवलं प्रकाशः स्यात् किन्तु विमर्श इत्यपि ।
विमर्शो नाम वस्तूनामीक्षणमभिधीयते ॥९॥

नहीं होता। यह चेतना स्वयं आत्मा में अवस्थित होती है। वहाँ पर प्रकाशकी आवश्यकता नहीं रहती। क्यों कि चिति स्वयं स्वतन्त्र है। इसे शैवशास्त्र में प्रकाशका विमर्श कहा जाता है। वही निरन्तर प्रकाशित होती है वही नित्य चिति है। उसके प्रकाश के विना संसार में कुछ भी प्रकाशित नहीं होता। उसी के प्रकाश से सब कुछ भासित होता है ॥४-८॥

यहाँ केवल प्रकाश मात्र नहीं है किन्तु विमर्श भी साथ-साथ है। विमर्शका अर्थ है पदार्थोंका वास्तविक रूप में इक्षण=देखना=साक्षात्कार करना। अहन्ताका अकृत्रिम विस्फुरण यहाँ निरन्तर होता रहता है। अहं इदं के व्यवधान से पूर्ण रूप में रहित अहन्ताका ही यहाँ स्फुरण होता रहता है। इस अवस्था में अव्यवहित

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अकृत्रिमं विस्फुरणमहन्ताया निबोधत ।
अहमिदंव्यवधानशून्यमहं हि केवलम् ॥१०॥
अव्यवहितस्वात्मैव भासतेऽत्र यथार्थतः ।
तत्तत्त्वं चितिरित्याहुः शास्त्रज्ञा नात्र संशयः ॥११॥
विमर्शो यदि नैवात्र भवेत्प्रकाशमात्रता ।
जडत्वं तद् भवेन्नूनं विमर्शस्तेन गृह्यते ॥१२॥
चित्स्वयं वेत्ति स्वात्मानं चितिशक्त्यैव सर्वदा ।
एष एव विमर्शः स्यात् पराशक्तिश्च नामतः ॥१३॥
परावाक् किञ्च स्वातन्त्र्यमैश्वर्यमथ कर्तृता ।
स्फुरत्ता सार-हृदयं स्पन्द इत्यपि ज्ञायते ॥१४॥

आत्मा ही निरन्तर भासित होता रहता है । वह तत्व निश्चय भी चिति ही है जैसा शास्त्रज्ञोंका मत है । यदि यहाँ विमर्श न होगा केवल प्रकाशमात्र होगा तो निश्चय भी जडता उस में होगी इसी लिए विमर्शको भी साथ साथ लिया गया है ॥९-१२॥

चित् स्वयं ही अपने आपको जानता है अपने ही स्थिति से यही विमर्श है । अन्य कुछ भी नहीं । पराशक्ति के बहुत नाम हैं । परावाक्, स्वातन्त्र्य, ऐश्वर्य, कर्तृत्वम्, स्फुरत्ता, सार, हृदय, स्पन्द इत्यादि अनेक विध नामों से उसे जाना जाता है । वे सब उसी के नामान्तर हैं । वह केवल चिन्मात्र नहीं है । वह तो चितिशक्तिके रूप में प्रतिभासित होती रहती है । वह विश्वोत्तीर्णमयी, विश्वमयी तथा विश्वसिद्धि आदि है और सिद्धि कारिका है । सदाशिव से लेकर पृथ्वी पर्यन्तको विश्व

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नामान्तराणि तस्या हि शक्त्या इत्यवधार्यताम् ।
चिन्मात्रं नैव तेनैव चितिशक्तिस्वरूपिणी ॥१५॥
विश्वोत्तीर्णमयी किञ्च विश्वमयी च सा यतः ।
विश्वसिद्धिश्च चित्यैव स्वतन्त्रया भवेत् सदा ॥१६॥
विश्वं सदाशिवात् पृथ्वीपर्यन्तमिति प्रोच्यते ।
षड्त्रिंशत् किल तत्वानि सन्ति चित्या स्वतन्त्रया ॥१७॥
निरूपितानि शास्त्रेषु विद्वद्भिर्नात्र संशयः ।
सृष्टि-स्थितिश्च संहारः सिद्धिशब्देन गृह्यते ॥१८॥
सृष्टिस्तु क्रियते नूनं तया चित्या न संशयः ।
न माया प्रकृतिर्नैव सृष्टेकारणमुच्यते ॥१९॥

कहा गया है । ३६ तत्व यहाँ स्वतन्त्र चिति से निरुपित किए गए हैं । सिद्धिशब्दद्वारा सृष्टि, स्थिति, और संहारका बोध किया जाता है । यह सृष्टि उसी चिति के द्वारा किया जाता है । अथवा उसीका विलास मात्र है । माया और प्रकृति दोनों भी सृष्टि के कारण नहीं हैं । क्यों कि इस में चिति ही प्रमाण प्रमेय और प्रमाता है । इसी लिए वह चिति किसी प्रमाणके द्वारा सिद्ध नहीं होती ॥२३-२०॥

प्रमाण, प्रमेय और प्रमाताका प्रमाण स्वयं चिति के कारण ही है न कि उनके कारण चितिका । इसीलिए इसे स्वतन्त्र कहागया है ॥२१॥ भोग और मोक्ष की सिद्धि भी और उनका कारण भी वही स्वतन्त्र चिति ही है, ऐसा विद्वानों का कहना है । वही परमस्वतन्त्र चिति ही मानवों के परम पदका साधन है जिससे मनुष्य परम चैतन्य में अपनी स्थिति

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यतः चितिः प्रमाणं स्यान् मेयं माता च सर्वदा ।
अत एव प्रमाणैस्तन् न सिद्ध्यति कथञ्चन ॥२०॥
चित्या प्रमाणं क्रियते मातापि च तया मतम् ।
प्रमेयजनिका सैव तस्मात् स्वतन्त्रता मता ॥२१॥
भोगे मोक्षेऽपि सिद्धिः स्यात् तयोरपि च कारणम् ।
स्वतन्त्रा चितिरित्येव विद्वद्भिः परिकीर्त्यते ॥२२॥
हेतुर्नाम साधनं स्याद् येन मानव सर्वदा ।
चैतन्यं परमं गच्छेद् यत्र स्थितिं समश्नुते ॥२३॥
छिन्ना चितिः पराचित्या साहित्यं गृह्णते तदा ।
देशकालादिभिर्नैव परिच्छिन्नास्ति सा क्वचित् ॥२४॥

बना लेता है। परिच्छिन्न (वैयक्तिक) चिति (चैतन्य) परम स्वतन्त्र चिति से संयुक्त होकर उसे विमुक्त करती है। वह चिति देश काल आदि से कभी भी परिच्छिन्न नहीं होती। उसकी सहायिका अथवा सहयोगी कुछ भी नहीं है इसी से उसे स्वतन्त्र कहा गया है ॥२२-२५॥

वही चिति विश्वसिद्धिकी हेतु है। शिवत्व बोधिका भी वही है। वही परमार्थ भी है। उससे परे कुछ भी नहीं है। स्वेच्छा से निरन्तर आत्मभित्ति में चिति स्वयं ही विश्वको व्यक्त करती रहती है स्वेच्छा ही उस में कारण है पर प्रेरणा नहीं। वह अव्यक्त विश्व बाह्य्य जगत् के तरह प्रतीत होता है। वह जगत् ग्राह्य्य और ग्राहक रूप में विविध रूपसे भासित होता है। प्रमाता प्रमेय और प्रमाण आदि विभिन्नता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

न माया वर्तते तस्या सहायिका यथार्थतः ।
अतएव स्वतन्त्रास्ति चितिरित्यवगम्यते ॥२५॥
विश्वस्य हेतुः सा प्रोक्ता शिवत्वप्रपिका च सा ।
परमार्थं च सैव स्यात् तस्याः परं न किञ्चन ॥२६॥
स्वेच्छया सततं स्वात्मभित्तौ चितिः स्वयं किल ।
विश्वं व्यनक्ति सततं न परप्रेरणा क्वचित् ॥२७॥
अव्यक्तं किल तत् विश्वं बहिरिवावभासते ।
ग्राह्य-ग्राहकरूपेण तद् विश्वं विविधं मतम् ॥२८॥
प्रमातृ-मेयभेदेन नानात्वं तस्य कल्प्यते ।
नानात्वं विविधैस्तत्त्वै-र्यथावत्परिगृह्यते ॥२९॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

के कारण नानात्व उस में भासित होता रहता है, यथावत् उसका ग्रहण भी होता है ॥२६-२९॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

सदाशिवतत्त्वम्

सदाशिवात्मकं तत्त्वमहङ्कारयुतं मतम् ।
इदन्तेन भासतेऽत्र विश्वमाद्यस्थितौ तथा ॥१॥
योऽपि साधकः तत्स्थानमाप्नोति स तु प्रोच्यते ।
मन्त्रमहेश्वर इति निर्दिश्यते (सदा)शिवेन सः ॥२॥
अहमिदंपरामर्शो जायते तस्य वै तदा ।
इदन्न भिद्यते पूर्णतयाऽहन्तो निगद्यते ॥३॥
सदाशिवतत्त्वज्ञानं साक्षात्कृतं मयेति च ।
बोधस्तस्य तदा नूनं प्रमातुर्जायते स्वतः ॥४॥
अहंबोधः प्रधानं स्यादिदंबोधस्य गौणता ।
स प्रमाता भवेन्मन्त्रमहेश्वरस्तदा स्वयम् ॥५॥

अध्याय-२५

सदाशिवतत्त्व

सदाशिवात्मक तत्व सर्वदा अहङ्कारसे परिवेष्ठित होता है। इस अवस्था में विश्व 'इदं' के रूप में भासित होता रहता है। जो भी साधक उक्त अवस्था में पहुँच जाता है उसे मन्त्रमहेश्वर कहा जाता है। और वह सदाशिव के साथ एकाकार हो जाता है। उसे उस समय 'अहम्' और 'इदम्' यही परामर्श होता है। अहं से इदंका पूर्ण रूपसे भेद नहीं होता। उस समय मैंने सदाशिवात्मक तत्वका साक्षात्कार कर लिया है ऐसा बोध हो जाता है। वह प्रमाता सदाशिवं बन् जाता है। इस अवस्था में 'अहं' बोध प्रधान और इदं बोध गौण हो जाता है। इस समय वह प्रमाता मन्त्रमहेश्वर हो जाता है ॥१-५॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ईश्वरतत्त्वम्

महमिदन्तयोः तुल्यः परामर्शः प्रजायते ।

यस्य साधकविज्ञस्य चैतन्यं तादृशं भवेत् ॥६॥

स मन्त्रेश्वरनाम्नैव कीर्त्यते किल साधकः ।

विश्वं विभाति सुस्पष्टं तदा चाहङ्ग्रहो भवेत् ॥७॥

निर्दिष्यत ईश्वरेण तदायं साधकः क्रमात् ।

विद्यातत्त्वम्

विभेदो ज्ञायते तावदहमिदन्तयोः स्फुटम् ॥८॥

नानात्वञ्चापि तत्रैव भासते ह्येकताऽपि च ।

यस्यापि साधकस्यैवं चैतन्यं किल जायते ॥९॥

स प्रमाता भवेन्मन्त्रः शास्त्रकारैर्निरूपितः ।

निर्दिश्यतेऽनन्तभट्टारकेण साधकोऽधुना ॥१०॥

ईश्वरतत्व

अहङ्कारतत्व और 'इदं' तत्वका परामर्श वरावर इस स्थिति में होता है। जिस साधकका चैतन्य उस प्रकारका होता है उसे यह स्थिति प्राप्त होती है। उस साधकको उस समय 'मन्त्रेश्वर' कहा जाता है। उस समय विश्व स्पष्ट रूपसे ज्ञात होता है। अहङ्कार ग्रहण भी उसे उस समय हो जाता है। वह साधक उस समय ईश्वर द्वारा निर्दिष्ट होता रहता है ॥६-७/१॥

विद्यातत्व

इस अवस्था में 'इदं' और 'अहंका भेद पूर्ण रूपसे ज्ञात हो जाता है। उस में नानात्व और एकत्वका बोध भी हो जाता है। जिस साधकका चैतन्य इस अवस्थामा में पहुँच जाता है उसे 'मन्त्र' कहा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विज्ञानाकलः

सकलस्य भवेन्नूनं प्रलयाकलकस्य च ।

अनभूतिस्तु वै चास्य नीचैः स्यात् शुद्धविद्यया ॥११॥

उपरि मायया तावत् साधकस्य प्रजायते ।

प्रलयाकलः

मायायां संस्थितो विद्वान् प्रलयाकल उच्यते ॥१२॥

नाहङ्कारो भासतेऽत्र नेदं स्पष्टतया तदा ।

शून्यचैतन्ययुक्तोऽयं प्रलयकेवली भवेत् ॥१३॥

सकलः

मायया पृथ्वीपर्यन्तं ये जीवाः सन्ति साम्प्रतम् ।

सकलाः किल विज्ञेया नानात्वं तत्र स्थीयते ॥१४॥

साधारणाश्च ये जीवाः सकलाः किल ते मताः ।

जाता है और वह प्रमाता दोनों के भेद में पूर्ण समर्थ हो जाता है । साथ ही वह साधक इस समय अनन्तभट्टारकद्वारा निर्दिष्ट होता है ॥८-१०॥

विज्ञानाकल

इस अवस्था में साधकको प्रलयाकल तथा सकल दोनों का बोध हो जाता है । साथ ही इस के नीचे शुद्धविद्या रहती है वह साधक माया से उपर ही रहता है ॥११/१॥

प्रलयाकल

जो प्रमाता माया में स्थित है उसे प्रलयाकल कहा जाता है । उस अवस्था में अहङ्कार भासित नहीं होता । नहीं 'इदं' भी स्पष्ट रूपसे भासित होता । इस अवस्था में वह साधक शून्य चैतन्ययुक्त हो जाता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शिवस्तु विद्यते पारे जीवेभ्यो विद्यते मतम् ॥१५॥
सदाशिवात् समारभ्य जीवान्तं स्थितिरिष्यते ।
सर्ववस्तुषु तादात्म्यं शिवस्य सर्वदा भवेत् ॥१६॥
सर्वास्वपि ह्यवस्थासु स्फुरितः स्यात् स्वयं शिवः ।
आनन्दः शाश्वतस्तत्र सर्वदैव भविष्यति ॥१७॥
सोऽपि जीवो भवेद् विश्वमयो यत्र स्वयं चितिः ।
परिच्छिन्नेन रूपेण वसति ह्यथवा शिवः ॥१८॥
चेतनादवरं स्थानं प्राप्यैव चितिः सर्वदा ।
जीवानुकूलतां याति चित्तरूपे विराजते ॥१९॥
समष्टिचेतना प्रोक्ता चितिर्व्यष्टौ चिदुच्यते ।
व्यष्टौ प्राधान्यं चित्तस्य संकोचस्यापि कुत्रचित् ॥२०॥

है इसे प्रलयकेवली कहा जाता है ॥१२-१३॥

सकल

माया से लेकर पृथ्वीतक जो भी जीव हैं वे सब के सब 'सकल' कहे जाते हैं। उन्हीं में अनेकत्व विभेद रहता है। जो भी साधारण जीव हैं वे निश्चय ही सकल हैं। शिव उनसे अति सुदूर है अर्थात् जीव से पृथक् है ऐसा शास्त्रकार कहते हैं। सदाशिव से लेकर जीवतक प्राणियोंकी स्थिति रहती है। सभी वस्तुओं में शिवका तादात्म्य निरन्तर रूपसें रहता है। सभी अवस्थाओं में स्फुरण होने वाला तत्व शिव ही है। शाश्वत अकृत्रिम आनन्द उस में सर्वदा र-हता ही है। वह शिव भी विश्वमय अवस्था में जीव होता है। जहाँ स्वयं चिति परिच्छिन्न रूपसे निवास करती है। अथवा शिव भी उसी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्राधान्ये चित्तदेवस्य प्रकाशस्य प्रधानता ।
शुद्धविद्या प्रमाता स्यात् तत्र तत्र विजानीहि ॥२१॥
ईशस्य किञ्च स्यात्तत्र सदाशिवपदं यतः ।
अनाश्रितशिवस्यापि पदं तत्तु प्रजायते ॥२२॥
द्वितीयायामवस्थायां शून्यप्रमातृभाग्भवेत् ।
समष्टिचेतना नूनं संकोचं प्राप्य चित्तताम् ॥२३॥
गच्छति तदीयं ज्ञानं क्रियामायादिसंयुते ।
चेतने किल सत्त्वादिगुणानां विभृयात् स्थितिम् ॥२४॥
माया प्रमाता किल चिन्मयो भवेत् ।
चित्तं हि मायामयतां वज्रेत् तदा ।
व्यष्टौ तु सा चित्तमयी भवेत् सदा ।
समष्टिकाले खलु सा चितिर्मता ॥२५॥

परिच्छिन्न रूप से रहता है। चेतना से निम्न स्थान पर आकर चिति हमेशा जीवों के अनुकूल होकर चित्त के रूप में विराजमान होती है। समष्टि चेतना में उसे चिति कहा जाता है किन्तु व्यष्टि चेतना में उसे चित् अथावा चित्त कहा जाता है। व्यष्टि में चित्तकी प्रधानता रहती है। कहीं संकोच की भी प्रधानता रहती है। चित्त के प्राधान्य होनेपर प्रकाशकी प्रधानता होती है। उस अवस्था में शुद्ध विद्या प्रमाता होती है अथवा ईश्वरकी प्रधानता रहती है। वह सदा शिवपद होता है। अथवा अनाश्रित शिव का वह पद होता है।

उसके द्वितीय अवस्था में शून्य प्रमातृयुक्त हो जाता है। इस में समष्टि चेतना ही संकोचयुक्त अवस्था में प्राप्त होकर चित्त में परिणत होती है। और उसका ज्ञान क्रिया और माया संयुक्त चेतना में

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यद्यपि विद्यते चैक आत्मा तथापि दृश्यते ।
द्विरूपत्वं त्रिमयत्वं चतुर्मयत्वमित्यपि ॥२६॥
सप्तपञ्चस्वभावोऽयं विद्वद्भिः परिचिन्तितम् ।
चैतन्यं देशकालाभ्यां परिच्छिन्नं न जायते ॥२७॥
शिव एवात्र चैतन्यं स्थितं सर्वत्र सर्वदा ।
संकोचादेव चैतन्यं ग्राह्यग्राहकतां व्रजेत् ॥२८॥
इत्थं द्वैरूपतां याति नान्यत्कारणमिष्यताम् ।
आणवमायीयकार्म्ममलैराच्छादितं हि तत् ॥२९॥
त्रिमयत्वं च संयाति चैतन्यं नान्यकारणम् ।
शून्यमयत्वं प्राणत्वं पुर्यष्टकमयेन च ॥३०॥
स्थूलशरीरग्रहणात् चतुर्मयं भवत्यहो !
सप्तपञ्चकरूपत्वं सप्तगुणितपञ्चकम् ॥३१॥

सत्वादि गुणों की स्थिति होती है ॥१४-२४॥

जब प्रमाता मायामयचित्त से उपरत होता है तव वह निश्चित ही मायामय हो जाता है। किन्तु व्यष्टि अवस्था मे वह चित्तमयी हो जाती (माया) है। उसके बाद समष्टिकाल में वही चिति वन जाती है ॥२५॥

यद्यपि आत्मा एक है किन्तु वह दोरूपों में तीन रूपों में कभी चाररूपों में भी दिखता है। वही १२ प्रकारका भी होता है यह विद्वानों का कथन है। यह चैतन्य देश और काल से कभी भी परि-च्छिन्न नहीं होता। शिव ही यहाँ चैतन्य हो जाता है और सभी जगह ग्राह्य और ग्राहकता में वँट जाता है। इसी प्रकार यह शक्ति दो रूपों में बँट जाती है। और कोई कारण नहीं है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पञ्चत्रिंशत् तत्त्वजातं शिवान्नीचैर्न संशयः ।
शिवादारभ्य सकलपर्यन्तं सप्तधा हि तत् ॥३२॥
प्रमाता जायते तस्मात् कलाया नियत्यन्तकम् ।
पञ्चावरणयुक्तत्त्वाज् जीव एवं विधो मतः ॥३३॥
विचाराणां विभेदेषु ह्यात्मनः स्थितिकल्पनात् ।
आत्मैव कारणं भेदे विचाराणां च पद्धतौ ॥३४॥
चैतन्येन विशिष्टो हि देहश्चात्मा क्वचिन्मतः ।
गौतमा बुद्धिरेवात्र ह्यात्मा संसारवर्त्मसु ॥३५॥
मोक्षकाले तु शून्यत्वं यात्यात्मा चेति ते विदुः ।
अहं प्रत्ययगम्यत्वमात्मनः स्थितिकल्पनात् ॥३६॥
मीमांसकवराः सर्वे बुद्धिमाश्रित्य संस्थिताः ।
ज्ञानसन्ततिरूपं हि चात्मत्वं बौद्धमार्गगाः ॥३७॥

वही चैतन्य फिर आणव, मायीय और कार्ममलों से आच्छादित होकर तीन रूपों में बँट जाता है। पूर्यष्टक शून्य प्राणमय होकर स्थूल शरीर धारण करने के कारण चारप्रकारका होता है। इसी प्रकार शिव से नीचे ३५ तत्व हो जाते हैं। शिव से लेकर सकल तक वह सात प्रकारका होता है ॥२६-३३॥

कला से नियति पर्यन्त जो प्रमाता है वह पञ्च आवरण से युक्त होने के कारण वह 'जीव' कहलाता है ॥२६-३३॥

विचारों में विभेद होने के कारण, आत्माकी भी विभिन्न कल्पना के कारण उस में भेद दृष्टि वनी रहती है। आत्माकी विचित्रता होने से भी उस में स्वतः भेद बुद्धि वन जाती है। इसे कहीं कहीं चैतन्य विशिष्ट देह ही आत्मा है ऐसा कहते हैं। गौतम अनुयायी बुद्धिको ही

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्राणा आत्मेति वेदान्ता मन्वते शास्त्रचिन्तकाः ।
असत्तत्त्वं शून्यतत्त्वं वेदान्ता मध्यमाः पुनः ॥३८॥
वासुदेवं परं तत्त्वं पाञ्चरात्रा हि मन्वते ।
विज्ञानाकलरूपं हि सांख्याः चात्मेति ते जगुः ॥३९॥
ईश्वरमेव वेदान्ता अपरे चात्मतां ययुः ।
पश्यन्तीं शाब्दिकाःप्राहुः सदाशिवं हि केचन ॥४०॥
विश्वोर्त्तीर्णमात्मतत्त्वं तान्त्रिकाःप्राहुः सर्वदा ।
कौला विश्वमयं तत्त्वमात्मतत्त्वं प्रपेदिरे ॥४१॥
विश्वोत्तीर्णं विश्वमयमत्वं त्रिकानुयायिनः ।
आत्मतत्त्वमिति प्राहुः शास्त्रज्ञा नात्र संशयः ॥४२॥
इत्थं चिन्तनकालेषु नानात्वमात्मचिन्तनात् ।
लभ्यते तेन शास्त्रेषु मार्गभेदोऽपि गम्यते ॥४३॥

आत्मा समझते हैं और संसार दशा में आता है मोक्षकाल में वह सर्वप्रपञ्चशून्य हो जाता है ऐसा कहते हैं। मीमांसक आत्माको 'अहं' के रूप में भासित होने के कारण वह भी बुद्धि आश्रित ही आत्माको मानते हैं। ज्ञान सन्तति के रूप में आत्माको बौद्ध लोग मानते हैं। कुछ वेदान्ती आत्माको प्राण के रूप में समझते हैं। कुछ और वेदान्ती असत्तत्व और माध्यमिक शून्य तत्व के रूप में इसे मानते हैं ॥३४-३८॥

पाञ्चारात्र मतानुयायी 'वासुदेव' को ही परं तत्व समझते हैं। साङ्ख्य विज्ञानाकलरूप आत्माको समझते हैं। अन्य वेदान्ती ईश्वर ही आत्मा है ऐसा समझते हैं। वैयाकरण पश्यन्ती अवस्था को ही आत्मा मानते हैं और अन्य शैव दार्शनिक सदाशिवको आत्मा कहते

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ज्ञानं दर्शनमित्याहुः स्थितिर्विश्रान्तिरुच्यते ।
तद्भूमिका नाम चिदानन्दघनस्य दर्शनम् ॥४४॥
तेन सर्वं बोधजातं परमतत्त्ववन्मतम् ।
तत्स्वरूपस्य संवित्तिरूपायोऽत्र विमृश्यते ॥४५॥
या चितिशक्तिरत्रास्ति संकोचात्तत्र जायते ।
आणवमलसंयुक्ता संसारिणी प्रकल्प्यते ॥४६॥
इच्छाशक्तेस्तु संकोचाद् आविर्भवति ह्याणवः ।
आत्मा येन जीवरूपो भूत्वा संसारी जायते ॥४७॥
ज्ञानशक्तेस्तु संकोचान् मायीयमलता भवेत् ।
मायीयमलसंयोगाद् भेदबुद्धिस्तु जन्यते ॥४८॥
इत्थं शक्तेस्तु संकोचात् सर्वकर्तृत्वशक्तिः सा ।
किञ्चित्कर्तृत्वभाग्भूयात् सर्वज्ञत्वं पुनस्तथा ॥४९॥

हैं। कौल दार्शनिक विश्वमय को आत्मा मानते हैं। त्रिकानुयायी विश्वोत्तीर्ण, विश्वमय ही आत्मतत्व समझते हैं। इस प्रकार आत्मा के विषय में अनेकविध चिन्तन भेद होने के कारण विभिन्न रूपों में इसे जाना जाता है। इसी से मार्ग भेद भी यहाँ दिखता है ॥३९-४३॥

ज्ञानको दर्शन कहा जाता है। उस में स्थिति ही विश्रान्ति है। उसकी भूमिक=आधार चिदानन्दघन है। इसी से समग्रबोध परमतत्व के तरह माना जाता है। इस परमतत्व के ज्ञानका उपायका यहाँ विचार किया जाता है ॥४४-४५॥

जो चिति शक्ति है वही जव संकुचित हो जाती है तव आणवमल से युक्त वन जाती है। वही तव संसारीणी कहलाती है। इच्छाशक्ति के संकोचद्वारा आणवमल आविर्भाव हो जाता है। तव

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अल्पज्ञत्वेन रूपेण विद्या संजायते ततः ।
पूर्णत्वञ्चाप्यपूर्णत्वरूपेण रागवान् भवेत् ॥५०॥
नित्यत्वं कालरूपेण जन्यते नात्र संशयः ।
व्यापकत्वं च नियतेः स्वरूपात्तत्र जन्यते ॥५१॥
इत्थमात्मा जीवभावसंसारीति प्रजायते ।
पुनः शक्तेर्विकासेन शिवत्वं लभते स्वयम् ॥५२॥
पञ्चकृत्यं शिवस्यात्र शास्त्रकारैर्निरूपितम् ।
तद्वज्जीवोऽपि नियतं पञ्चकृत्यं करोति वा ॥५३॥
जीवो नाम संकुचितः शिव एवात्र गम्यते ।
तस्मात् शिवस्य तत् कृत्यं जीवोऽस्य कुरुते सदा ॥५४॥
सृष्टि-संहार-स्थितयो विलयानुग्रहौ मताः ।
शिवस्य किल कर्माणि जीवस्यापीति जानीहि ॥५५॥

वह व्यापक आत्मा जीव रूप में परिणत हो जाता है । इसी प्रकार जब ज्ञान शक्तिका संकोच हो जाता है मायीयमल से वह आवृत हो जाता है । उसी मायीयमल के द्वारा बुद्धिभेद पैदा होता है । इस प्रकार शक्ति के संकोच के कारण वह सर्वकर्तृत्त्वशक्ति किञ्चित्कर्तृत्व में परिणत हो जाती है । उसका सर्वज्ञत्व अल्पज्ञत्व में आजाता है । जब वह पूर्णता प्राप्त करता है तव पूर्ण रागवान् बन जाता है । नित्यत्व कालके रूप में उत्पन्न होता है । व्यापकत्व नियति के रूप में आ जाता है । इस प्रकार यह आत्मा जीवभाव होकर संसारी बन जाता है । फिर शक्ति के विकासद्वारा वही जीव शिव (आत्मा) के रूप मे स्वतः परिणत होता है ॥४६-५२॥

पञ्चकृत्य शिव करते हैं यह शास्त्रकारों ने वताया है । उसी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

देशकालेषु वस्तूनामाभासः सृष्टिरुच्यते ।
देशान्तरेषु वस्तूनाभासः संहृतिर्मता ॥५६॥
आभासः किल वस्तूनां स्थितिरित्यभिधीयते ।
भेदाभासस्तु विलयः शास्त्रकारैर्निरूप्यते ॥५७॥
तादात्म्यं चित्प्रकाशेनानुग्रहो वस्तूनां मतः ।
प्रकाशनं हि वस्तूनामास्वादनमतः परम् ॥५८॥
आत्मबोधो हि बीजानां वपनं च करोत्यसौ ।
विलापनञ्चेति पञ्चकृत्यञ्चापि च दृश्यते ॥५९॥
पञ्चकृत्यं तु योगिनां रहस्यदृष्टितो भवेत् ।
यत्किञ्चिच्च प्रकाश्यं तत् सृष्टिरित्यभिधीयते ॥६०॥
आस्वादनं च गृह्णाति जीवः सा स्थितिरिष्यते ।
विमर्शनेऽथवा चमत्कृतौ संहारतां व्रजेत् ॥६१॥

प्रकार जीव भी पञ्च कृत्य करता ही रहता है ।५३॥

'जीव' वस्तुतः संकुचित शिव ही है। इसी से जीव भी शिव के ही पञ्चकृत्य करता ही रहता है ॥५४॥

सृष्टि, संहार, स्थिति, लय और अनुग्रह वे ही शिव के पञ्चकृत्य हैं उसीं प्रकार जीव के भी पञ्चकृत्य हैं ॥५५॥

देश और काल में वस्तुओं की स्थिति ही आभास है वही सृष्टि है। उन देश और काल से वस्तुओं का चला जाना ही संहार है। वस्तुओं की अवस्थिति अथवा आभास=अनुभव ही स्थिति है। वस्तुओं की स्थितिका भेद या न होना ही संहार या विलय कहा जाता है। चित् प्रकाशद्वारा होने वाला तादात्म्य ही अनुग्रह है। वही शक्ति पदार्थोंका प्रकाश करता है उसके बाद अनुभव भी करता है। उसके बाद आत्म

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शंकादयश्च संस्कारा बीजं ते जगतो मताः ।
बीजावस्थापनं नूनं विलयत्वेन गृह्यते ॥६२॥
अनुभूतेस्तु तादात्म्यं यदा चित्या प्रजायते ।
अनुग्रहदशा सैव भवतीति विनिश्चयः ॥६३॥
संसारस्य दशा नाम ह्यज्ञानात् पञ्चकृत्यकम् ।
क्रियते किञ्च शक्तिभिर्मोहनं स्वात्मसंयुतैः ॥६४॥
चित्प्रकाशाद् अभिन्ना हि परावाक् शक्तिरुच्यते ।
ज्ञानयुक्तो हि तां पूर्णां वेत्ति नूनं यथार्थतः ॥६५॥
अकारात् तु क्षकारान्तशक्तिसमूहधृग् हि सा ।
सैव पश्यन्तीमार्गेण पुरस्करोति ग्राहकम् ॥६६॥
ग्राहकभूमिमागत्य गोपनात् पररूपका ।
भासयति विशिष्टान् वै पदार्थान् यक्तितः सदा ॥६७॥

बोध (ज्ञान) का वपन करता है। साथ ही उसे बढाता भी है यही पञ्चकृत्य की स्थिति है ॥५६-५९॥

यह पञ्चकृत्य भी योगियों के लिए विशेष रहस्यपूर्ण हो जाता है। जो कुछ भी प्रकाश्य है वह सब सृष्टि है। जीवोंका आस्वादन ही स्थिति है। इसका विमर्श या चरम स्थितियाँ ही हैं। बीजोंका अवस्थापन ही विलय कहा जाता है अपने अनुभव के साथ जव चितिका तादात्म्य हो जाता है वही अनुग्रह दशा कहा जाता है यही शास्त्रों का निश्चय है। संसार दशाका नाम है-पञ्चकृत्यों के अज्ञान के कारण अपने ही शक्तियों से मोहित हो जाना है ॥६०-६४॥

चित्प्रकाश से अभिन्न वह शक्ति परावाक् है। जब प्रमात ज्ञानयुक्त हो जाता है तव वह प्रमाता उसे पूर्ण रूप से जान सकता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तेनैव सकला लोका देहप्राणादिकं स्वयम् ।
आत्मत्वेन विजानन्ति मुह्यन्ते कारणं चितिः ॥६८॥
पशुदशागतान् जीवान् शक्तयो ब्राह्मीरूपकाः ।
भेदैस्ता योजयन्तीह किन्तु पतिदशागतान् ॥६९॥
जीवान् अभेदविज्ञानं जनयन्ति न संशयः ।
क्रमशस्तु विशुद्धान् तान् विकल्पान् योजयन्ति च ॥७०॥
अभेदज्ञानमेवात्र शाम्भवोपाय उच्यते ।
चितिशक्तिरिहैवास्ति वामेश्वरी निगद्यते ॥७१॥
खेचरी गोचरी चैव दिक्चरी भूचरी तथा ।
वामेश्वर्याः प्रकारास्ता शैवशास्त्रे निरूपिताः ॥७२॥
खेचर्या तु चेतना सा समष्टिर्यापि विद्यते ।
परिमितप्रमातृत्वं व्यष्टौ वापद्यते तथा ॥७३॥

है । वह परावाक् अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त शक्ति समूहको धारण करती है । वही परावाक् पश्यन्ती दशाओं से होती हुए ग्राहक के रूप में आ जाती है और ग्राहक भूमि में आकर वास्तविक स्वरूपका गोपन करके विशिष्ट पदार्थोंको भासित करती है। इसी कारण सारे सांसारिक लोग देह, प्राण, बुद्धि आदि तत्वों को आत्मा समझ मोहित हो जाते हैं इस में कारण वही चिति ही है ॥६५-६८॥

पशु भाव में अवस्थित समस्त जीवोंको ब्राह्मी आदि शक्तियाँ विभेद बुद्धि उत्पन्न करती हैं किन्तु पति दशा में अवस्थित जीवोंको वे ही अभेदबुद्धि से सुयोजित करती हैं । इसी प्रकार क्रमशः विशुद्ध विकल्पों से युक्त करती हैं । अभेद ज्ञान ही शाम्भवोपाय है । वहीं चितिशक्ति ही वामेश्वरी वन जाती है । खेचरी, गोचरी, दिक्चरी,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

गोचयर्या स प्रमाता च ह्यन्तकारणवान् भवेत् ।
दिक्चर्या हीन्द्रियाण्यत्र जायन्ते नात्र संशयः ॥७४॥
भूचर्या विषयान् बाह्यान् प्रमाता वेत्ति भेदतः ।
साधनया तु खेचयर्या पूर्णकर्तृत्ववान् भवेत् ॥७५॥
गोचरी निश्चयं नूनमभेदं दर्शयत्यथ ।
अभेदस्य च प्रत्यक्षं दिक्चर्या किल जायते ॥७६॥
प्रमेयान् स्वात्मवत्सर्वान् वेत्ति भूचरीतः स्वयम् ।
शाक्तोपायस्वरूपं तु चैतदेव निरूपितम् ॥७७॥
आणवोपायविषये चिन्त्यते साम्प्रतं यथा ।
साधनया यदोदानशक्तिव्यानौ यथार्थतः ॥७८॥
विकासं गच्छतो नूनं तदा तुर्यदशास्थितिः ।
तुर्यातीतदशा वापि चानुभूयेत तत्क्षणम् ॥७९॥

भूचरी वे सब वामेश्वरी के विभिन्न प्रकार हैं जिन्हें शैवदर्शन में वताया गया है ॥६९-७२॥

जो समष्टि चेतना है वही खेचरी के प्रभाव से परिच्छिन्न प्रमाता हो जाती है ॥७३॥

गोचरी से वही प्रमाता अन्तकरणवान् हो जाता है । इन्द्रियों की उत्पत्ति दिक्चरी से होती है । भूचरी के द्वारा बाह्य विषयोंको प्रमाता जानता है । साथ ही खेचरी साधना से प्रमाता पूर्ण कर्तृत्वयुक्त हो जाता है । ७४-७५॥

गोचरी शक्ति निश्चय भी अभेद दर्शन कराती है । दिक्चरी अभेदका प्रत्यक्ष कराती है ॥७६॥

सभी पदार्थोंको आत्मा के तरह भूचरी के द्वारा प्रमाता जान

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रमाता ह्यथवा जीवो जीवन्मुक्तः प्रजायते ।
पञ्चकृत्यस्य संपूर्णबोधात् चित्तं स्वयं तदा ॥८०॥
अन्तर्मुखीभावयुतं चेतनात् चितिरुच्यते ।
पञ्चकृत्यस्य ज्ञानेन ह्यज्ञानं नश्यति स्वतः ॥८१॥
स्वशक्तिभिर्व्यामोहतां चित्तं नैव प्रयाति च ।
स्ववास्तवबोधनतः चित्तं चितिः प्रजायते ॥८२॥
अवरोहपदे वापि चितिरग्निः प्रमेयकान् ।
इन्धनानि क्वचिदंशे ज्वालयत्येव मायिकान् ॥८३॥
यद्यपि चितिर्नैवात्र स्वस्वरूपं जहाति च ।
किन्तु मायाच्छादनतो मलिना किल जायते ॥८४॥
यथेन्धनानि वै चाग्निः सर्वदा ज्वालयत्यहो ।
तथापि धूमलेखाभिर्मलिनत्वं प्रपद्यते ॥८५॥

जाता है। यही 'शाक्तोपाय' है ऐसा विद्वान् कहते हैं ॥७७॥

यहाँ अब आणवोपाय के विषय में विचार किया जाता है। जब उदानशक्ति (प्राण) और व्यानशक्ति ठीक से विकसित होते हैं तव तुर्यदशा होती है। उसके वाद तुर्यातीत दशा का भी तत्काल बोध हो जाता है। तब प्रमाता अथवा उक्त जीव स्वतः जीवन्मुक्त हो जाता है। पञ्चकृत्यका पूर्ण बोध हो जानेपर स्वतः चित्त अन्तर्मुखी हो जाता है। चेतन से हि चिति होती है। पञ्चकृत्यका ज्ञान हो जाने के कारण अज्ञान स्वतः नष्ट हो जाता है। अपने ही शक्तियों से चिति अब मोहित नहीं होती। अपना वास्तविक स्वरूपका साक्षात्कार होने के कारण चित्त स्वयं ही चिति हो जाता है। जव चिति निम्नस्तर पर भी होती है तव भी माया के पदार्थों को या मलोंको जलाती ही है। यद्यपि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तथैव मायया सर्वे पौनपुन्येन मायिकाः ।
पदार्थाः किल दृश्यन्ते तेनैव चितिः स्वात्मभिः ॥८६॥
शक्तिभिरपि संयुक्ता ह्यकिञ्चकरी दृश्यते ।
पूर्वसंस्कारकत्वं हि मायिकत्वं विजानीहि ॥८७॥
तैरेव पूर्वसंस्कारै-र्वस्तु गोचरतां गतम् ।
स्वभावसिद्धतां याति स्वयं बलेन वै यदा ॥८८॥
चितिर्विश्वं स्वात्मनि च कुरुते नात्र संशयः ।
स्वबलं नाम चोन्मेषः स्वरूपस्य चितेरिति ॥८९॥
आत्मसात् कुरुते नाम स्वाभिन्नत्वेन भासते ।
देहप्राणादीनां मिथ्या य आभासो विराजते ॥९०॥
तस्यापनयनं प्रोक्तमभ्यासः चितिलब्धये ।
चिदानन्दस्य संलाभे देहबोधोऽपि जायते ॥९१॥

इस निम्नावस्था में चिति अपने स्वरूप को नहीं छोडती । फिर भी माया के आच्छादन के कारण वह जरुर मलिन हो जाती है । जैसे अग्नि हमेशा इन्धनोंको जलाती है फिरभी धूमरेखा से वह मलिन जैसी होती है। इसी प्रकार माया के आवरण से वारम्बार पदार्थ धूमिल होते है। चिति अपनी शक्ति के साथ होनेपर विबश होती है । मायिक पदार्थका अर्थ है पूर्व संस्कारों से युक्त होना। उन्हीं पूर्व संस्कारों के द्वारा वे सारे पदार्थ दृष्टि गोचर होते हैं। स्वभाव से ही अथवा अपने ही बल से जब वे सब स्वयं ही सिद्ध होते हैं तव चिति विश्व को ही अपने आप में कर लेती है। इस में संशय नहीं है ।

अपने बलका अर्थ है चितिका अपने स्वरूपका उन्मेष होना है ॥७७-८९॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

किन्तु चित्या दृढैकत्वं सर्वदैवावभासते ।
चित्यैकात्मकतां प्राहुर्जीवन्मुक्तिरिरितिः स्वयम् ॥९२॥
अज्ञाननाशतः स्वस्य स्वरूपबोधतो भवेत् ।
संवित् किञ्च चितिरिरिति मध्य इत्यवधार्यते ॥९३॥
तस्य विकासतः पूर्णचिदानन्दमयो भवेत् ।
प्रमाता किल मध्यस्तु सुषुम्नानाडी प्रोच्यते ॥९४॥
सर्वेषामाश्रयीभूता सैव शक्तिरिहोच्यते ।
तस्माद् मध्यमसंप्रोक्ता स नाडी योगमार्गगैः ॥९५॥
तस्या विकासतो नूनं समष्टिचेतना स्वयम् ।
व्यक्तौ स्फुरति सततं समाधौ स च गच्छति ॥९६॥
विकल्पक्षयतो मध्यविकास इह कल्प्यते ।
अथवा शक्तिसंकोचविकासाभ्यां स चिन्त्यते ॥९७॥

अपने से जो भी भिन्न है वह सब अभिन्न के रूप में दिखता है। जो देह प्राण इन्द्रिय आदिका आत्मा के रूप में जो मिथ्या आभास है उन सबका अपनयन ही अभ्यास है या इनके त्याग के लिए निरन्तर अभ्यास करना चाहिए उससे चितिका बोध हो जाता है। चिदानन्दका लाभ हो जाने पर भी देह बोध रहता ही है। किन्तु चिति के द्वारा आत्मैक्य बोध दृढता से हो जाता है। चिति के साथ एकात्म बोध ही जीवन्मुक्ति कहा जाता है ॥९०-९२॥

अज्ञानका पूर्णनाश और स्वरूप के बोध से संवित् और चितिका बोध हो जाता है उसे मध्य विकास कहा गया है। उसके विकास से वह प्रमाता पूर्णचिदानन्दमय हो जाता है। यह मध्य विकास कहा गया है उस में जो मध्य है वह सुषुम्ना नाडी ही है। वही नाडी सभी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वाहच्छेदस्तु आद्यन्तकोट्यभ्यासः स उच्यते ।
इत्थं मध्यविकासाय चोपाया इह चिन्तिताः ॥९८॥
सर्वविधान् चित्तजातान् विकल्पान् यत्नतः स्वयम् ।
यदा जहाति सकलान् तुर्यातीतो भविष्यति ॥९९॥
शक्तिसंकोचतः सर्वविषयत्यागतस्तदा ।
इन्द्रियाणां तथा चित्तं केन्द्रितं चात्मनि भवेत् ॥१००॥
शक्तिविकासतात्पर्यं चित्तमात्मनि संस्थितम् ।
इन्द्रियाणि तु विषयगतानिस्युर्न संशयः ॥१०१॥
सुषुम्नायां स्थितिर्वापि समाधिभावना सदा ।
उत्थानस्य दशायां वा पुनःसमाधिसंस्थितिः ॥१०२॥
विश्रान्तिरथ संकोचः शैवशास्त्रे विविच्यते ।
वाहच्छेदेन हृदये प्राणापाननिरोधनम् ॥१०३॥

पदार्थोका आश्रय है। वही शक्ति है। इसी लिए मध्यम कही हुई वह नाडी योगियों द्वारा विकसित की जाती है। उसके विकासद्वारा समष्टि चेतना = चिति स्वयं ही व्यक्ति में स्फुरित होती है और समाधि में वह प्रमाता प्रविष्ट हो जाता है ॥९०-९६॥

जब विकल्पका क्षय होता है तब मध्य विकास होता है। अथवा शक्ति के संकोच एवं मध्यविकासद्वारा वह कल्पना किया जाता है। जो 'वाहच्छेद' कहा जाता है वह आदि और अन्त कोटिका अभ्यास से बोध हो जाता है। इस प्रकार यहाँ मध्य विकास के उपाय विचार किए जाते हैं। सभी प्रकार के विकल्पों को, जो चित्त में अवस्थित हैं, पूर्ण रूपसे जब प्रमाता छोडदेता है तभी वह तुर्यातीत होता है ॥९७-९९॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ककारस्य हकारस्योच्चारणं तु विधीयते ।
चतुर्थोपायतो नूनं हृदयादधिरोहणम् ॥१०४॥
प्राणस्यान्तगतिस्तस्माद् द्वादशाङ्गुलिमापनम् ।
द्वयोः सततमभ्यासाद् अपि मध्यस्थितिर्भवेत् ॥१०५॥
समाधिजातसंस्कारव्युत्थाने किल चिन्तनात् ।
शाश्वताख्यसमाधेस्तु स्थितिर्नूनं प्रजायते ॥१०६॥
व्युत्थानेऽपि निमीलनसमाधिभावतः स्वयम् ।
यागी विश्वं चितौ यत्नात् स्थापयत्येव साधनात् ॥१०७॥
क्रममुद्रां समाश्रित्य ततः समाधिमाप्नुयात् ।
क्रममुद्रा यदा सिद्धिं याति साधकः सत्वरम् ॥१०८॥
प्रकाशानन्दमन्त्रात्मवीर्यरूपात्मके प्रभौ ।
पूर्णाहन्तासमाविष्टः संविद्देवसमूहके ॥१०९॥

शक्ति के संकोच से और सभी विषयों के त्याग से अथवा इन्द्रियों के संयमद्वारा चित्त आत्मा में केन्द्रित हो जाता है। शक्ति के विकासका तात्पर्य चित्त का आत्मा में स्थिति ही है। इन्द्रिय तो विषय के साथ रहते ही हैं इस में सन्देह नहीं है। सुषुम्ना में स्थिति और समाधि में अवस्थिति तथा उत्थान दशा से फिर समाधि में अवस्थिति तथा उत्थान दशा से फिर समाधि में प्रवेश, अथवा चिति में विश्रान्ति अथवा संकोच यही शैवशास्त्र में वताया गया है। वाहच्छेदद्वारा हृदय में प्राण और अपनका निरोध होता है ॥१००-१०३॥

उस अवस्था में ककार और हकार (मातृकाओंका) का उच्चारण किया जाता है। चतुर्थ उपायद्वारा निश्चय भी हृदय से उपर आरोहण

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रभुत्वं प्राप्नुयात्तावद् येन विश्वं विसृज्यते ।
एष सर्वः स्वभावो हि शिवस्येति विजानीहि ॥११०॥
प्रकाशानन्दमयः स्यात् पूर्णाहन्ता न संशयः ।
अन्तर्ज्योतिर्भगवतीमहमित्यवगच्छति ॥१११॥
न देहं न च वै प्राणान् नेन्द्रियाणि च मन्यते ।
वस्तुतोऽहं भवेत् संवित् शिवो महेश्वरोऽपि च ॥११२॥
सर्वेषां किल वेद्यानां विश्रान्तिरात्मन्यप्यहम् ।
एषोऽहं सर्वमन्त्राणां सार इत्यवगम्यताम् ॥११३॥
परमवीर्यशाली स्यात् समष्टिचिदियं मता ।
अतःपरं सृष्टिक्रिया संहारोऽपि प्रजायते ॥११४॥
जीवः शिवत्वमाप्नोति पूर्णाहन्तृत्वलाभतः ।
जीवः संविद्देवतानां समूहे प्रभुता भवेत् ॥११५॥

प्राण वायुका किया जाता है। उस समय १२ अङ्गुल परिणाम तक प्राण वायुका उपर आगमन होता है । इन दोनोंका निरन्तर अभ्यासद्वारा मध्यस्थिति संभव होती है ॥१०४-१०५॥

समाधि में प्रवेश करने के बाद व्युत्थान दशा में निमीलन नामक समाधिद्वारा योगी चिति में प्रयासपूर्वक विश्वको रखलेता है । क्रममुद्रा के सहयोग से समाधि प्राप्तकर लेता है। जब क्रम मुद्रा सिद्ध होती है तत्काल ही प्रकाशानन्द मन्त्रात्मवीर्यरूपात्मक संविद् देव समूहात्मक प्रभु में पूर्णहन्तात्मक रूप से समाविष्ट हो जाता है और प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है जिससे विश्वकी सृष्टि कर सकता है। यह सब स्वभाव शिवका ही है यह जान लेना चाहिए। वह पूर्णाहन्ता प्रकाशानन्दमय हो जाता है। अन्तज्योति चिति भगवती मैं ही हूँ यह

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

येन सृष्टिः संहृतिश्च विधीयते न संशयः ।
तत्सर्वं ख्याप्यते तावद् यथार्थतोऽधुना मया ॥११६॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥

उसे बोध हो जाता है। मैं न देह हूँ, न प्राण, न इन्द्रिय ही, वस्तुत मैं संवित् शिव या महेश्वर हूँ। यह भाव हो जाता है। सम्पूर्ण वेद्य पदार्थों का मैं पूर्ण विश्राम स्थल हूँ। मैं सभी मन्त्रों का सार हूँ, यह बोध प्रमाता को हो जाता है ॥१०६-११३॥

यह समष्टि चिति अत्यन्त शक्तिशाली हो जाती हैं। इसके बाद सृष्टिक्रिया और संहार क्रिया भी होती है। जीव शिव हो जाता है। क्यों कि वह पूर्णा हन्तृता लाभ करचुका होता है। जीव संविद्देवता के समूह में प्रवेशकर जाता है। जिससे सृष्टि और संहार करने में वह समर्थ हो जाता है। वह सब यथार्थ रूप में यहाँ प्रतिपादित किया जा रहा है ॥११४-११६॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ षड्विंशोऽध्यायः

षट्त्रिंशत् किल तत्त्वानां चिन्तनं तु विधीयते ।
शिवः परमंतत्त्वं स्यात् समष्टिचिदिहोच्यते ॥१॥
चित्स्वरूपमिहैवास्ति द्वितीया शक्तिरिष्यते ।
शिवाभिन्नचिन्मयत्वं सामर्थ्यं च स्वतन्त्रता ॥२॥
आनन्दस्य प्रधानत्वं शक्तौ संचिन्त्यते सदा ।
सर्वाभिव्यक्तीनां मूलमिदं तत्त्वद्वयं मतम् ॥३॥
सदाशिवाख्यं यत्तत्त्वं तत्राहन्ता विशेषतः ।
इच्छायाः च प्रधानत्वं भवतीति विविच्यते ॥४॥
चतुर्थमीश्वराख्यं हि तत्त्वं निश्चीयते यतः ।

अध्याय-२६

तत्वोंका चिन्तन यहाँ प्रारम्भ किया जा रहा है । शिव हि परम तत्व हैं । समष्टि चित् ही वह परम शिव है । साथ ही चित्स्वरूपिणी भगवती शिवकी शक्ति है और द्वितीय तत्व है । शक्ति में सर्वदा शिव से अभिन्न चिन्मयत्व, सामर्थ्य, स्वतन्त्रता, और आनन्द की प्रधानता रहती है । सभी अभिव्यक्ति अर्थात् सृष्टि के मूल में वे ही दो तत्व हैं ॥१-३॥

सदाशिव नामक जो तत्व है उस में 'अहं' और इच्छाका प्राधान्य वना रहता है ॥४॥

चौथा ईश्वर नामक तत्व है, उस में अहन्ता एवं इदन्ताका पूर्ण बोध होता है ॥५॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अहन्ताया इदन्तायाः स्फुटं बोधोऽनुभूयते ॥५॥
विद्यातत्त्वं पञ्चमं स्यात् क्रियाप्राधान्यतां गतम् ।
अहमिदंपरामर्श इह तत्त्वे प्रजायते ॥६॥
प्रसिद्धानि च तत्त्वानि शुद्ध अध्वेति नामतः ।
इतस्त्वशुद्धमार्गस्य विवेचनं विधीयते ॥७॥
माया निर्माणकर्तृत्वरूपेणात्र निगद्यते ।
परिमितकारितत्त्वं वेति सर्वत्र चिन्त्यते ॥८॥
स्वरूपगोपनं कृत्वा नानात्वं दर्शयत्यसौ ।
पञ्चविधं कञ्चुकत्वं मायायाः कल्पितं यथा ॥९॥
कला विद्या रागः कालो नियतिश्चेति पञ्चमी ।
कर्तृत्वं साधकत्वं वा संकोचस्तु कला मता ॥१०॥

विद्या तत्व पाँचवाँ है, उस में क्रियाकी प्रधानता रहती है। इस तत्व में अहन्ता और इदन्ताका परामर्श होता है ॥६॥ वे सब जितने तत्व हैं शुद्ध अध्वा के नामसे प्रसिद्ध हैं इसके बाद अशुद्ध अध्वाका विवेचन किया जाता है ॥७॥

इस दर्शन में मायाको निर्माण कर्तृत्व के रूप मे अथवा परिमित=निश्चित कर्ता के रूप में चिन्तन किया जाता है ॥८॥

यही माया अपने स्वरूपको अथवा पदार्थ के वास्तविक स्वरूपका गोपन कर विभिन्नता उस में दिखलाती है। इसी प्रकार हाँ माया के पाँच 'कञ्चुकों' -=आवरण=वस्त्रों की कल्पना की जाती हैं। वे हैं - कला, विद्या, राग, काल और नियतिकर्तृता, साधकता और संकोच

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ज्ञातृत्वं परिच्छिन्नत्वं विद्या संकोच उच्यते ।
तृप्तित्वं किल संकोचः परिच्छिन्नत्वमेव वा ॥११॥
येन विषयजातेषु भिन्नेषु रमते मनः ।
संकोचो नित्यतायास्तु येन त्रितयमिष्यते ॥१२॥
वर्तमानो भविष्यञ्च भूतञ्चेति सदा पुनः ।
जन्ममरणतां याति प्रमाता काल उच्यते ॥१३॥
स्वातन्त्रस्य तु संकोचो येन देशादि बोध्यते ।
कृत्याकृत्यगतो जीवो ह्यवशः क्रियते यया ॥१४॥
सैव नियतिः संप्रोक्ता नियामिका न संशयः ।
इत्थं मायाकञ्चुकत्वं पञ्चधा किल निर्णितम् ॥१५॥
शिव एभिः कञ्चुकैस्तु स्वात्मानं गोपयत्यसौ ।

ही कला है ।

ज्ञातृत्व, परिच्छिन्नत्व, और संकोच ही विद्या है ।

तृप्ति, परिच्छिन्नत्व, संकोच तथा जिससे विषयों में मन लगा रहता है वही राग है ।

नित्यताका संकोच, वर्तमान, भूत और भविष्य तथा जन्ममरण जिससे होता है वही काल है ।

स्वतन्त्रताका संकोच, जिससे देश आदिका बोध होता है, कृत्य और अकृत्य में फँसा हुआ जीव जहाँ उसका कोई वश नहीं रहता है यही नियामिका शक्ति नियति है । इस प्रकार यहाँ माया के पाँच कञ्चुकों (सहायक सामग्री=शक्ति)का निर्णय किया गया है ॥९-१५॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यदा शिवः स्वयं स्वात्ममायया गोपयत्यपि ॥१६॥
परिच्छिन्नप्रमातासौ जायते पुरुषः पुनः ।
शिवस्य सर्वकर्तृत्वसर्वज्ञत्वे यथा क्रमम् ॥१७॥
पूर्णत्वमथ नित्यत्वं व्यापकत्वञ्च हन्यते ।
तदा स उच्यते सर्वैर्नाम्ना पुरुष इत्यपि ॥१८॥
बुद्धितः पृथ्वीपर्यन्तमुत्पत्तेर्मूलयोनिः सा ।
प्रमेयानामधिष्ठानमूलं सा प्रकृतिर्मता ॥१९॥
इदमित्थं निश्चयोऽत्र यया वा क्रियते सदा ।
निश्चायिका शक्तिरेषा ज्ञानस्येति च जानीहि ॥२०॥
सर्वस्य वस्तुतत्त्वस्य प्रादुर्भावात्मकस्य सः ।
अहङ्कार इति सर्वैः स्वीक्रियते सदातनः ॥२१॥

शिव इन्ही पाँचों द्वारा अपने आपको छिपाता है । जब शिव स्वयं अपने मायासे अपने को छिपाता है वही उस समय परिच्छिन्न प्रमाता वन जाता है । वही पुरुष है । उसके बाद शिव के सर्वकर्तृत्व, सर्वज्ञत्व, पूर्णत्व, नित्यत्व और व्यापकत्व की हानी होती है । उस समय उसे पुरुष कहा जाता है ॥१६-१८॥

बुद्धि से पृथिवीतक सभी उत्पत्तियों की मूल में प्रकृति है । सभी प्रमेयों की अधिष्ठान भी वही ही है । यह ऐसा निश्चय जिससे किया जाता है, ज्ञानकी वही निश्चायिका शक्ति भी है ।

प्रादुर्भाव होने वाले सभीपदार्थोंका मूलभूत तत्व अहङ्कार है । संकल्प और विकल्प जिससे होता है वही मानस तत्व है ॥१९-२२॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

संकल्पश्चाथ सर्वत्र विकल्पश्चेति सर्वदा ।
येनैव क्रियते तद्धि तत्त्वं मानसमुच्यते ॥२२॥
श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
ज्ञानेन्द्रियाणि सर्वत्र पञ्चभूतात्मकानि च ॥२३॥
वाक्पाणिपादसंजाताः पायूपस्थाविति क्रमात् ।
कर्मेन्द्रियाणि वै पञ्च सर्वत्राङ्गीकृतानि च ॥२४॥
पञ्चतन्मात्रताः सन्ति याभ्यो यथार्थतः सदा ।
पञ्चेन्द्रियाणि जातानि ज्ञानात्मकानि जानीहि ॥२५॥
शब्दतन्मात्रता तावत् स्पर्शरूपरसादयः ।
पञ्चैव सन्ति तन्मात्राः प्राहुर्विद्वांसः शास्त्रगाः ॥२६॥
ततः पञ्चमहाभूताकाशवायू क्रमादथ ।

कान, आँख, स्पर्श, जिव्हा, नाक वे सव पञ्चभूतात्मक ज्ञानेन्द्रिय हैं। वाक्, हात, पाव, पायु, उपस्थ वे सव कर्मेन्द्रिय हैं। पञ्चतन्मात्राओं से पञ्च ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध वे पञ्चतन्मात्रा हैं ऐसा विद्वान् शास्त्रज्ञ कहते हैं। उसकेवाद पञ्च महाभूत हैं इन में आकाश, वायु, अग्नि, पानी, भूमि वे ही पञ्चमहाभूत हैं। इस प्रकार ३६ तत्वों का विषय क्रम वताया गया है।

माया पर्यन्त आत्मतत्व है। सदाशिव तक विद्या तत्व है। शक्ति और शिव शिव तत्व हैं। तुरीयत्व इनका समष्टि है ॥२३-२९॥

शिवका दूसरा रूप भैरव कहा जाता है। दुष्प्रवृत्तियों का निवारक भीषण भयङ्कर होने के कारण भैरव वताया गया है ॥३०॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अग्निरापो भूमिरिति भूतानां स्थितिरित्यपि ॥२७॥
इत्थं षट्त्रिंशतत्त्वानि ख्यापितानि यथाक्रमम् ।
यथोक्तः शास्त्रकारैस्तु तत्त्वानां विषये क्रमः ॥२८॥
"मायान्तमात्मतत्त्वं विद्यातत्त्वं सदाशिवान्तं स्यात् ।
शक्तिशिवौ शिवतत्त्वं तुरीयतत्त्वं समष्टिरेतेषाम्" ॥२९॥
शिवस्य ह्यपरो रूपो भैरव इति कीर्त्यते ।
भीषणत्वाद् भैरवत्वं दुष्प्रवृत्तीनां निवारकः ॥३०॥
भैरवशब्दगम्यत्वं त्रितयमिहज्ञायताम् ।
सृष्टि-स्थिति-लयत्वं हि चाक्षरै र्बोध्यते त्रीभिः ॥३१॥
परा-परापरा चापि ह्यपराशक्तिभिः स्वयम् ।
युक्तः कर्माणि कुरुते शिवो भयानकोप्यसौ ॥३२॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे षड्विंशोऽध्यायः ॥

'भैरव' इन तीन अक्षरों से सृष्टि, स्थिति और लयका बोध किया जाता है ॥३१॥

परा, परापरा और अपरा शक्ति के द्वारा स्वयं ही शिव भयानक होते हुए भी कर्म करता रहता है ॥३२॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ सप्तविंशोऽध्याय:

प्रणवोपासनम्

यद्यपि वर्तते चैक आत्मा किञ्च निबोधत ।
व्यवहारेषु त्रिविधं स्वरूपमिह लभ्यते ॥१॥
तत्प्रतिपत्त्युपायश्च प्रणवाराधनैव हि ।
दुरवगमदुर्धर्षः स आत्मेत्यवधार्यताम् ॥२॥
असंस्कारितचित्तस्य योगहीनस्य ज्ञायताम् ।
योगाभ्यासस्य तेनैव विधिस्तत्र निरूप्यते ॥३॥
जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिश्च ह्यवस्था त्रिविधा मता ।
चतुर्थी तुरीयावस्था त्रिभ्यो भिन्नापि विद्यते ॥४॥
तदेव स्वकीयं रूपमात्मनश्चेति ज्ञायताम् ।

अध्याय-२७

यद्यपि आत्मा एक ही है, फिर भी व्यवहार में उसके तीन स्वरूप उपलब्ध होते हैं। उस आत्मा के साक्षात्कारका मूल उपाय प्रणव=ओंकार की उपासना ही है। असंस्कारितचित्त, तथा योगहीन व्यक्तियों के लिए वह अगम्य, कठिन तथा अत्यन्त दूर है। इसीलिए योगाभ्यास विधि यहाँ वताया जाता है जिससे आत्म साक्षात्कार किया जा सकता है ॥१-३॥

जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन अवस्थायें हैं। इन से भिन्न चौथी तुरीयावस्था है। वही आत्माकी अपनी वास्तविक अवस्था है। उपाधियों के भेद से जैसे घटाकाश होता है उसी प्रकार उपाधि (जाग्रद् आदि) भेद से आत्मा भी विभिन्न रूपों में है ऐसा विद्वान् कहते हैं। परं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उपाधिभेदतस्तावद् घटाकाशादिवन्मतम् ॥५॥

अवस्था ह्यात्मनश्चेति वदन्ति विबुधा यतः ।

परमपुरुषार्थाय आत्मा ज्ञातव्यतां ययौ ॥६॥

तत्प्रतिपत्त्युपायश्च ओंकाराधनतो भवेत् ।

यदा जाग्रदवस्थायां विषयानुपभुञ्जते ॥७॥

बहिस्प्रज्ञ इति तस्य नाम चेत्यवधार्यते ।

केचिद् वैश्वानरं प्राहुरात्मानं विषये स्थितम् ॥८॥

परेषां नु प्रकाशेन वेत्ति लोकं तदेति सः ।

स्वप्नावस्थां गतो रात्रौ स एव जायते तदा ॥९॥

तैजसत्वेन विषयान् भुङक्त आन्तरिकान् यतः ।

अन्तःप्रज्ञोऽपि विद्वद्भिरुच्यते स यथार्थतः ॥१०॥

पुरुषार्थ=मोक्षकी सिद्धि के लिए आत्मसाक्षात्कार आवश्यक है । उसकी प्राप्तिका आधार प्रणव उपासना ही है । जब जाग्रद्, अवस्था में विषयों का भोग करता है तभी वह 'बहिस्प्रज्ञ' इस नाम से जाना जाता है । अथवा विषयों में अवस्थित आत्माको कुछ लोग वैश्वानर भी कहते हैं ॥४-८॥

उस अवस्था में वह वैश्वानर अन्य परप्रकाशद्वारा प्रकाशित होता है । और संसारको जानता है । वही जब स्वप्नावस्था में चला जाता है तव तैजस रूपसे विषयों का उपभोग करता है । और वे सब विषय आन्तरिक होते हैं । उसे विद्वान् लोग अन्तःप्रज्ञ भी कहते हैं । उस समय वह स्वयं प्रकाशित होकर पदार्थोंको प्रकाशित करता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्वयं प्रकाशितो भूत्वा तदा वस्तु प्रकाशते ।
सुषुप्तौ संस्थितश्चायं प्राज्ञ इत्यवधार्यते ॥११॥
घनप्रज्ञ इति केचिद् वदन्त्यत्र न संशयः ।
रात्रौ निविडविख्यातो घनान्धकार उच्च्यते ॥१२॥
तद्वदेव घनप्राज्ञ आत्मा संप्रोच्यते तदा ।
एकोऽपि त्रिविधत्वेन ज्ञायते स यथार्थतः ॥१३॥
अवस्थासु च सर्वासु व्यापकत्वेन तिष्ठति ।
अत एव विभुः प्रोक्तः पिण्डात्मनावतिष्ठते ॥१४॥
विश्वस्तु दक्षिणे नेत्रे प्रतिबिम्बायते तथा ।
मनसि तैजसः प्रोक्तः प्राज्ञो हृदयगह्वरे ॥१५॥
आकाशेऽपि स द्रष्टव्यो देहे चेत्थं प्रतिष्ठितः ।

है या भोग करता है। वही जव सुषुप्ति में चला जाता है तव उसे प्राज्ञ कहा जाता है। उसे ही कुछ लोग 'घनप्रज्ञ' भी कहते हैं। रात्रि में जो अत्यन्त घन अन्धकार है उसे ही घन कहते हैं। उसी प्रकार वह आत्मा भी घनप्रज्ञ कहलाता है। वह सभी अवस्थाओं में व्यापक होकर रहता है। इसी लिए वह विभु=व्यापक कहलाता है। सभी पिण्डों में व्याप्त रहता है ॥९-१४॥

दक्षिण नेत्र में वह विश्व प्रतिबिम्बित होता है। तैजस मन में अवस्थित है और तृतीय प्राज्ञ हृदय में प्रतिष्ठित है। इसी प्रकार आकाश में भी वह रहता है। इस प्रकार इसी शरीर में वह आत्मा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

बाह्यान् विषयजातान् वै विश्वो भुङ्क्ते यथार्थतः ॥१६॥
सूक्ष्मान् स्वप्नादिकान् भुङ्क्ते तैजसो ज्ञायतां तथा ।
प्राज्ञ आनन्दभुक्प्रोक्तो भोगोऽपि त्रिविधो मतः ॥१७॥
बाह्यविषयभोक्ता तु विश्व इत्युच्यते पुनः ।
सूक्ष्मस्वप्नादिभोक्तैव तैजसश्चावधार्यते ॥१८॥
आनन्दस्य तु भोक्ताऽत्र प्राज्ञ इत्युच्यते स्वयम् ।
इत्थं त्रिधा विभागोऽपि भोगस्यात्र निबोधत ॥१९॥
स्थूल भोगेन विश्वस्य तृप्तिः सूक्ष्मेन जायते ।
द्वितीयस्य तु चानन्दात् प्राज्ञः तृप्यति सर्वदा ॥२०॥
भोक्तृत्वं किल भोज्यं च त्रिधा यद्धि निरूपितम् ।
आत्मनो वेत्ति यो विद्वान् न स मुह्यति कश्चन ॥२१॥

व्यवस्थित होकर रहता है। बाह्य विषयोंको विश्व उपभोग करता है। तैजस सूक्ष्म विषयोंको जो स्वप्नादि हैं का भोग करता है। प्राज्ञ आनन्दका भोक्ता कहलाता है। इस प्रकार यह भोग भी त्रिविध कहलाता है ॥१५-१७॥

बाह्य विषय भोक्ता को विश्व कहा जाता है। सूक्ष्म स्वप्नादि भोक्ता तैजस ही है। प्राज्ञ ही आनन्दका भोक्ता कहलाता है। इसी से विश्व तृप्त हो जाता है। सूक्ष्मभोग से तैजस और आनन्द से प्राज्ञ तृप्त होता है। तीन प्रकारके भोज्य पदार्थ और तीन प्रकार के भोक्ताओं को जो जानता है वह विद्वान् मोहित नहीं होता। सारे प्राणियों की समुत्पत्ति प्राणों से होती है यह विद्वान् गौडपादका

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भूतानां प्रभवस्त्वत्र भवतीति विनिश्चयः ।
प्राणादेवेति विद्वासो गौडपादा वदन्त्यहो ॥२२॥
त्रिविधभेदतश्चान्यः चतुर्थो ऽयं निरूप्यते ।
तुर्यः संप्रोच्यते सोऽत्र सर्वदुःखविघातकः ॥२३॥
प्रकाशात्मा व्यापकश्च स्वामी सर्वस्य ज्ञायताम् ।
नित्यः सर्वत्र ह्यद्वैतभावयुक्तको न संशयः ॥२४॥
कारणकार्यसंबद्धौ चाद्यौ ह्यन्तिमः कारणात् ।
युक्तः तुर्यस्तु नैवात्र कारणाद् युज्यते क्वचित् ॥२५॥
अन्यथा ग्रहणं कार्यं वस्तुन इति ज्ञायताम् ।
वस्तुतत्त्वाऽग्रहणं हि कारणमिति बोध्यताम् ॥२६॥
आनन्दे सर्वदा सक्तः प्राज्ञो वेत्ति न किञ्चन ।

कहना है ॥१८-२२॥

त्रिविध भेदों के अतिरिक्त यह चौथा स्वरूप है जिसे 'तूर्य' कहा गया है और वह सभी दुःखोंका निवारक कहा गया है ॥२३॥

वह प्रकाशस्वरूप, व्यापक, सभी का स्वामी, नित्य और अद्वैत है । इस में सन्देह नहीं है ॥२४॥

प्राज्ञ और तैजस कारण और कार्य से संबद्ध हैं । तीसरा कारण से बद्ध है । तुर्य में न कारण है न ही कार्य ही है । पदार्थोंका अन्यथा ग्रहण कार्य है और वस्तु के वास्तविकताका अग्रहण ही कारण है ऐसा समझना चाहिए ॥२५-२६॥

आनन्द में आसक्त प्राज्ञ कुछ भी अन्य नहीं जानता । किन्तु तुर्य

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तुर्यस्तु सर्वदृक् प्रोक्तः सर्वशक्तियुतश्च सः ॥२७॥
सामान्यं दृश्यते प्राज्ञतुर्ययोर्द्वैतहानये ।
तत्त्वस्याग्रहणं प्राज्ञे तुर्ये तथा न विद्यते ॥२८॥
निद्रास्वप्ना युतौ चाद्यौ प्राज्ञे स्वप्नो न विद्यते ।
तुर्ये द्वयोरभावो हि ज्ञानिभिर्लक्ष्यते सदा ॥२९॥
कार्यकारणभावस्य नाशादेव स्वभावतः ।
तुरीयं लभते स्थानं ज्ञानी चात्र न संशयः ॥३०॥
अनादिकालतः प्राप्ता माया सर्वत्र विद्यते ।
यदा प्रबुध्यते लोकस्तदाद्वैतं समश्नुते ॥३१॥
सर्वस्यापि प्रपञ्चस्य निवृत्तिर्जायते यदा ।
तदैवाद्वैतसम्बन्धः प्रमातुर्जायते ध्रुवम् ॥३२॥

सर्वदृक् कहा गया है और सर्वशक्ति युक्त होता है ।

द्वैतनाश में प्राज्ञ और तुर्य में समानता है किन्तु प्राज्ञ तत्वका ग्रहण नहीं करता तुर्य की ऐसी स्थिति नहीं है ॥२७-२८॥

विश्व और तैजस में निद्रा और स्वप्न हैं। प्राज्ञ में स्वप्न नहीं है। तुर्य में दोनोंका भी अभाव है। यह ज्ञानियों से अनुभूत होता है। कार्य और कारण के नाश से ही स्वभावतः तुरीयका होता है यही विद्वानों का कहना है। अनादिकाल से ही प्राप्त यह माया सर्वत्र विद्यमान होने के कारण व्यक्ति नहीं जानता किन्तु जब वह प्रबोधित होता है उसी समय अद्वैतका ज्ञान करता है ॥२९-३१॥

जब सम्पूर्ण प्रपञ्च की निवृत्ति होती है, उसी समय अद्वैत के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रणवे त्रिविधो भागः अउमकार भेदतः ।
अकाराज् ज्ञायतां विश्वः कामावाप्तिः ततो भवेत् ॥३३॥
आदिमत्वं तथा वाप्तिः प्रथमाक्षरतो भवेत् ।
उकारात् तैजसः प्रोक्तः स्थानतोऽपि च प्रोच्चता ॥३४॥
अकारः कण्ठदेशस्थ उकारः तालुमध्यगः ।
विश्वाद् हिरण्यगर्भस्य प्रोच्चता ध्रुवमुह्यते ॥३५॥
इत्थं तैजसम्पर्क उकारादिह जायते ।
मकाराल्लक्षते प्राज्ञः सामान्यं विद्यते द्वयोः ॥३६॥
मानं लयश्च संप्रोक्तं द्वयोर्लयश्च निर्गतिः ।
तत्रैव प्राज्ञे भवति तथा मकारवर्णके ॥३७॥
लय उच्चारणे अ-उवर्णयोस्तत्र ज्ञायताम् ।

साथ प्रमाताका सम्बन्ध हो जाता है ॥३२॥

प्रणव में तीन भाग किए जाते हैं। अकार। उकार। मकार। वे ही तीन मिलकर प्रणवका निर्माण होता है। अकार से विश्वका ज्ञान या उत्पत्ति होती है और उसी से इच्छाओं की पूर्ति होती है। आदिमत्ता तथा प्राप्ति उसी प्रथम अकार से होती है। उकार से तैजसका ज्ञान होता है। वह स्थान के दृष्टि से भी उच्च है। अकार कण्ठ में है और उकार तालु में अवस्थित है। विश्व से हिरण्यगर्भ की निश्चय भी उच्चता है। इस प्रकार तैजस सम्पर्क उकार से ही होता है। मकार से प्राज्ञका बोध होता है। इस प्रकार दोनों में समता है मान और लय इन दोनोंका होता है। लय और निर्गति प्राज्ञ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

द्वयोरुच्चारणे काले मापनमिव जायते ॥३८॥
मकारे तेन बोधेन विश्वतैजसयोरपि ।
इत्थं समाजधर्माणां निरूपणं विधीयते ॥३९॥
अकारस्य तु सामर्थ्यं विश्वपर्यन्तमेव हि ।
उकारात् तैजसप्राप्तिर्मकारात् प्राज्ञ एव हि ॥४०॥
पूर्णोङ्कारो हि निर्मात्रस्तस्योपसनया सदा ।
तुरीयस्य भवेद् बोधो न द्वैतं तत्र विद्यते ॥४१॥
तुर्यं विज्ञाय मनसा नान्यत् किञ्चन चिन्तयेत् ।
तस्मिन् एव सदा चेतश्चैकान्तिको भवेत् सुधीः ॥४२॥
ओङ्कारज्ञानयुक्तस्य नान्यत् कर्म विधीयते ।
प्रणवान् नास्ति वै सूक्ष्मं स्थूलं व्यापकमेव च ॥४३॥

में भी होते हैं। तथा मकार में लय के उच्चारण (म में उच्चारण समाप्ति) में अ एवं उ वर्ण के उच्चारण के अनन्तर दोनों ही म वर्ण में लीन होते हैं। वही मापन क्रिया भी है। इसी से मकार में इस बोध से विश्व और तैजसका भी इस समान धर्मका निरूपण किया जाता है ॥३३-३९॥

अकारका सामर्थ्य विश्व तक ही है। उकार से तैजसकी प्राप्ति होती है और मकार से प्राज्ञकी प्राप्ति होती है ॥४०॥

पूर्ण प्रणव ही मात्रारहित है। इसी के उपासनाद्वारा तुरीय तत्वका बोध होता है। उस में द्वैत नहीं है। तुर्य के बोध के बाद मन से अन्य किसीका चिन्तन न करे। उस में एकाग्र होकर अपने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अव्ययः प्रणवः प्रोक्तो ब्रह्म प्रणवो ज्ञायताम् ।
प्रणव आदिरन्तश्च मध्य उत्पत्तिगर्भकः ॥४४॥
एवं यो वेत्ति प्रणवं स ब्रह्मभावमश्नुते ।
प्रणवस्य तु ज्ञानेन ज्ञातव्यं नावशिष्यते ॥४५॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे सप्तविंशोऽध्यायः ॥

चित्त को लगाना चाहिए ।

ओंकार ज्ञान से युक्त प्रमाता को और कुछ भी कर्म अवशेष नहीं रहता है । प्रणव से सूक्ष्म स्थूल और व्यापक कुछ भी नहीं है । प्रणव अव्यय है । वही ब्रह्म भी है । जो इस प्रणव के इस स्वरूप को जानता है वह ब्रह्म ही हो जाता है । प्रणव के ज्ञान के वाद अब कुछ भी ज्ञातव्य नहीं रह जाता है ॥४१-४५॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

प्रपञ्चमिथ्यात्वविचारः

असंप्रज्ञाते वै ज्ञाने द्वैतभावो विनश्यति ।
ओंकारोपासनं प्रोक्तं तदर्थं, वितथाः पुनः ॥१॥
भावा लोकप्रपञ्चस्य यावन्तः सन्ति मानसे ।
स्वप्नवत् सततं तेषां वैतथ्यमिह साध्यते ॥२॥
स्वप्ने यावन्तः सन्त्यत्र भावा अनृतभावकाः ।
नष्टे स्वप्ने न वै तेषां स्थितिरित्यवधार्यते ॥३॥
स्वप्नद्रष्टा तु दूरस्थान् भावान् पश्यति यादृशान् ।
तदा गन्तुं न शक्नोति स्वप्नान्ते न च पश्यति ॥४॥

अध्याय-२८

प्रपञ्चमिथ्यात्वविचार

असंप्रज्ञात समाधि की अवस्था में द्वैतभाव नष्ट हो जाता है। उसके लिए ॐ कार की उपासना विहित है। मानस पटल में जो भी भाव हैं वे सब लोक प्रपञ्च हैं उन सबका मिथ्यात्व स्वप्न के तरह ही सिद्ध किए जाते हैं ॥१-२॥

स्वप्न काल में जितने भी भाव (पदार्थ) हैं वे सब के सब मिथ्या हैं। जब स्वप्न नष्ट हो जाता है तव वे कहीं उपलब्ध नहीं होते ॥३॥

स्वप्न द्रष्टा दूरदेश में अवस्थित जिन जिन भावों को देखता है वहाँ उस समय वह अवश्य भी पहुंच नहीं सकता और स्वप्न समाप्त होने पर वे रहते भी नहीं हैं ॥४॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यद् यत् सृजति वै स्वप्ने रथादीन् सूर्यचन्द्रकान् ।
वैतथ्यं किल सर्वेषां प्राह मान्या श्रुतिः स्वयम् ॥५॥
यथा स्वप्नपदार्थानां मिथ्यात्वं सुनिरूपितम् ।
दृश्यानां किल मिथ्यात्वं स्वप्नवदेव कल्प्यते ॥६॥
जाग्रद्-दृश्य-पदार्थानामभावत्वं स्फुटं स्वतः ।
दृश्यत्वात् स्वप्नवत्तेषामयथार्थत्वमुच्यते ॥७॥
दर्पणे बिम्बितं चित्रं यथा भाति तथा हीदम् ।
स्वप्नं जागरितं वापि ह्ययथार्थतयास्थितम् ॥८॥
यथा स्वप्नं तथा जाग्रद् दुःखं सुखं समानकम् ।
क्षणिकत्वेऽपि नैवात्र तत्त्वे भेदोऽस्ति कश्चन ॥९॥

स्वप्न में जिन जिन पदार्थों की सृष्टि होती है अथवा सूर्य चन्द्र रथ घोडा आदिको देखता है इन सबों की मिथ्यात्व स्वतः सिद्ध है और स्वयं श्रुतिने भी यही कहा है ॥५॥

जैसे स्वप्नकालिक पदार्थ मिथ्या हैं उसी प्रकार दृश्य पदार्थ भी मिथ्या हैं ॥६॥

जाग्रतकालिक दृश्य पदार्थोंका अभाव स्वतः सिद्ध है क्यों कि दृश्यत्व दोनो में समान है । इसी लिए स्वप्न के तरह ही वे भी अयथार्थ हैं ॥७॥

दर्पण में दृश्य मान बिम्ब जिस प्रकार अयथार्थ ही है उसी प्रकार स्वप्न दृश्य और जागरण दृश्य भी अयथार्थ ही हैं ॥८॥

जैसे स्वप्न है उसी प्रकार जाग्रद् भी है । दोनों में सुख और

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अमिथ्यावत् प्रतीयन्ते व्यवहारनये क्वचित् ।
प्रारम्भे चाथ प्रान्ते च मिथ्यात्वान् न स्थितिर्मता ॥१०॥
प्रयोजनं तु क्षणिकैः स्वाप्निकैरपि पूर्यते ।
तद्वज् जाग्रत्पदार्थानां स्थितिरत्रैव कल्प्यताम् ॥११॥
प्रयोजनं पूरयितुं नः पदार्थस्य कामना ।
क्रियतां, स्वप्नकालेषु स्त्रीसंसर्गो विधीयते ॥१२॥
भोज्यं विनापि बहुधा स्वप्नेषु किल भोज्यते ।
क्षुधा निवर्तते तावत् तथा लोकः प्रतीयताम् ॥१३॥
स्थानं विनापि स्वप्नेषु चन्द्रसूर्यादिकं यथा ।
दिनं वापि च रात्रिर्वा लभ्यते नु तथाहीदम् ॥१४॥

दुःख समान हैं। एकत्र क्षणिकत्व है फिर भी उनके तात्विक रूप में कोई भेद नहीं है ॥९॥

व्यवहार में वे यथार्थ जैसे दिखते हैं। प्रारंभ में और अन्तिम में वे मिथ्या होने से वे कहीं टिकते नहीं ॥१०॥

कार्यगत प्रयोजन तो क्षणिक स्वप्न पदार्थों -से ही पूरा हो जाता है। उसी प्रकार जाग्रद् पदार्थों की स्थिति भी है यह समझलेना चाहिए ॥११॥

किसी भी प्रयोजन की पूर्ति के लिए किसी पदार्थ की कोई आवश्यकता नहीं होती क्यों कि स्वप्न में स्त्रीसंसर्ग किया जाता है। किन्तु वहाँ स्त्री नहीं होती किन्तु मैथुन परिणति क्षरण आदि हो जाता है। भोजन के विना भी स्वप्नों में खाया जाता है। और क्षुधा की

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यावत् स्वप्नस्य जागर्तिर्न जायते कथञ्चन ।
मिथ्यात्वं कल्प्यते नैव तद्वल्लोकः प्रतीयताम् ॥१५॥
वैपरीत्यं हि धर्मस्य स्वप्ने नैव विलोक्यते ।
चन्द्रो भवति चेद् रात्रिर्दिनं चेद् भाष्करो भवेत् ॥१६॥
एवमेव हि सर्वत्र वस्तूनां गतिरिष्यते ।
यथा स्वप्नस्तथा जाग्रन् न भेदो विद्यते क्वचित् ॥१७॥
स्वप्ने मानसशक्त्यैव सर्वं वस्तु प्रतीयते ।
जाग्रद्वृत्तावपि सेयं स्थितिरित्यवधार्यताम् ॥१८॥
मनोपूर्वङ्गमाः सर्वे धर्मा इन्द्रिययुक्तकाः ।
मनो विहाय नैवात्र इन्द्रिया ग्रहितुं क्षमाः ॥१९॥

निवृत्ति भी होती है इसी तरह संसारको जानना चाहिए ॥१२-१३॥

किसी स्थान के विना भी स्वप्न में चन्द्रसूर्य आदि दिखते हैं दिन और रात भी उपलब्ध होते हैं। उसी प्रकार इस जगत्को भी जान लेना चाहिए ॥१४॥

जब तक स्वप्न से जागरण नहीं होता तब तक उसके मिथ्यात्वको नहीं जाना जाता उसी प्रकार इस जगत्को भी समझना चाहिए ॥१५॥

स्वप्न में भी पदार्थोंको विपरीत हम नहीं देखते । यदि रात दिखता है तो वहाँ चन्द्र होता है और यदि दिन दिखता है तो सूर्य होता है। इसी प्रकार सभी जगह पदार्थों की गति समझना चाहिए । इसी लिए जैसा स्वप्न है उसी प्रकार जागरण भी है। दोनों में भेद नहीं हैं। स्वप्न में मानसिक शक्ति के द्वारा सारे कार्य होते हैं, जाग्रद्

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तेनैव मनसः सर्वं राज्यं चोभयकल्पितम् ।
मिथ्यैव सर्वभावानां कल्प्यते बिबुधैःसदा ॥२०॥
उभयोरपि मिथ्यात्वं यदि चेत् केन ज्ञायताम् ।
आत्मैव सकलं वेत्ति विलीने मनसि परे ॥२१॥
अन्तः कल्पितकाः स्वप्ना जाग्रद्दृष्या बहिःस्थिताः ।
उभयोरन्तरं नास्ति मिथ्या एव हि ते स्थिताः ॥२२॥
जीवत्वेन क्वचिद्भाति चित्तत्वेन क्वचित् पुनः ।
प्राणत्वेन च संभाति स आत्मेत्यवधार्यते ॥२३॥
मन्दान्धकारवेलायां रज्जौ सर्पः प्रतीयते ।
स्वस्वरूपे च विज्ञाते रज्जुरेव प्रतिष्ठते ॥२४॥

में भी मानसिक कार्यद्वारा ही होते हैं इस में भेद नहीं है । जाग्रद् में सभी इन्द्रिय मन के कारण ही चलते हैं । मनको छोडकर कोई भी धर्म, इसीलिए सब कुछ उभयत्र, स्वप्न में और जागरण में भी मनका ही राज्य है । अत एव सभी पदार्थों की मिथ्यात्व है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥१६-२०॥

जब दोनों भी मिथ्या हैं तव सारे व्यवहारको मिथ्या के रूप में कौन जानता है ? मन पूर्ण विलीन होने पर आत्मा ही सभीको अपने स्थिति में जानता है ॥२१॥

स्वप्न अन्तःकल्पित होते हैं और जाग्रद् बहिःस्थित है । दोनों में मन है उन दोनों में कोई भेद नहीं है ॥२२॥

कहीं जीव के रूप में, कहीं चित्त के रूप सें, कहीं प्राण के रूप

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

माया-संवृतिचित्तेन दृश्यते ब्रह्मणि जगत् ।
ज्ञानेन तु जगत् सर्वं ब्रह्मत्वेनावतिष्ठते ॥२५॥
स्वीयैः प्रकल्पितैर्भावैरात्मापि मुह्यते स्वयम् ।
यथा कवयो मुह्यन्ति स्वीयकाव्यप्रकल्पनात् ॥२६॥
यद्यद् वस्तु विकल्प्येत लोके स्वप्नेऽपि सर्वदा ।
तत् सर्वमद्वयाद् यातं तेनाद्वैतं प्रसिद्ध्यति ॥२७॥
स्वप्नलोको यथा वापि मायानिर्मितवस्तुकम् ।
गन्धर्वनगरं सत्यं तथा भाति जगत् सदा ॥२८॥
यदापि जन्यते बोधो भावेषु च पुनः पुनः ।
तथा जगद् निवर्तेत ततः पूर्वं न कस्यचित् ॥२९॥

में वही आत्मा ही भासित होता है ॥२३॥

मन अन्धकार की स्थिति में रज्जु में सर्प देखता है। जव उसका स्वरूप ठीस से बोध होता है उस समय केवल रज्जु ही रहता है ॥२४॥

माया से संलिप्त चित्त से ब्रह्म में जगत् दीखता है। जब माया हट जाती है, ज्ञान प्राप्त हो जाता है तव जगत् ब्रह्म रूप में अवभासित होता है ॥२५॥

अपनेद्वारा प्रकल्पित पदार्थों द्वारा ही आत्मा भी मोहित हो जाता है। जैसे कि कविलोग अपने ही काव्य रचनाओं से मोहित होते हैं ॥२६॥

संसार में जितने भी विकल्प हैं और स्वप्न में भी जो पदार्थ आते हैं वे सब के सब अद्वैत से ही आए हैं। इसी लिए अद्वैत प्रसिद्ध है।

जैसा स्वप्न लोक है वैसा ही माया निर्मित वस्तु है। वे सब के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

बोधेऽपि वस्तुनो रूपं न नश्यति कथञ्चन ।
किञ्च दृष्टिविभेदोऽत्र जन्यते नात्र संशय: ॥३०॥
मृगमरीचिका दृष्टा स्वप्नलोकास्तथाऽप्यमी ।
गन्धर्वनगरं मायाकृता भावा भवन्त्यहो ॥३१॥
इत्थं दृष्टान्तशतकै: स्वरूपं जगतस्तु तत् ।
ज्ञातुं शक्येत सर्वत्र मोहो निवार्यतां स्वत: ॥३२॥
नोत्पत्तिर्न निरोधो वा कस्याप्यत्र प्रजायते ।
अजातत्त्वाज्जगत्सर्वं कदाचिन्न निरुध्यते ॥३३॥
तेन मोक्षोऽपि नैवात्र न च बन्ध: कथञ्चन ।
सम्भाव्यते नु प्राणिनामित्येषा परमार्थता ॥३४॥

सब सत्य के तरह प्रतीत होते हैं। वैसे ही गन्धर्व नगर भी सत्य प्रतीत होता है। उसी प्रकार जगत् भी। वस्तुत वे सब जैसे असत्य हैं वैसे ही जगत् भी असत्य है ॥२७-२८॥

पदार्थों की वास्तविक रहस्यमयता जैसे प्रतीत होने लगता है, तव जगत् निवर्तित हो जाता है उससे पूर्व कदापि नहीं।

जब ज्ञान प्राप्त होता है तव इन पदार्थों का स्वरूप बदलता नहीं किन्तु दृष्टि में भेद हो जाता है ॥२९-३०॥

जैसी मृगमरीचिका है वैसा ही स्वप्नलोक भी है। गन्धर्व नगर आदि वे सभी माया के द्वारा निर्मित हैं ॥३१॥

इस प्रकार कि हजारों दृष्टान्तोंद्वारा जगत्का स्वरूप भी वैसा ही है ऐसा जान लेना चाहिए। अत एव जागतिक मोह हटा लेना ही उचित है ॥३२॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

केनात्र जायतां बन्धः कुतो वापि च मुच्यताम् ।
वितथैः सह संपर्काद् बन्धमोक्षौ कुतः कृतौ ॥३५॥
दृश्यमानमिदं विश्वं न सन् नासदिहोच्यते ।
नोभयं नोभयाभावं तस्मादनादि प्रोच्यते ॥३६॥
न जायते नापि च हीयते क्वचित् ।
न वर्धते नापि विशुध्यते तथा ।
न याति क्वापि न च स्थीयते स्वतः ।
संतिष्ठते तत्त्वमिदं यथार्थतः ॥३७॥
न क्वचिद् आगमस्तस्य न च गमनमुच्यते ।
नाधर्मो न च धर्मोस्ति तत्त्वविदो महात्मनः ॥३८॥

जगत् की उत्पत्ति भी नहीं होती, निरोध भी संभव नहीं है। क्यों कि पैदा ही न होने के कारण यह कभी भी निरुद्ध नहीं होता ॥३३॥

इसी से न मोक्ष हैं न ही वन्धन ही है। यही सभी प्राणियों की परमार्थता है ॥३४॥

यहाँ किससे बन्धन होता है और किस से मोक्ष ? क्यों कि वितथ पदार्थों के साथ सम्पर्क होने से बन्धन और मोक्ष कैसे संभव है। कहाँ से है ? ॥३५॥

दृश्यमान यह जगत् न सत् है नही असत् है। न सत् न असत्, न ही सदसद् अभाव। इसी से यह अनादि है ॥३६॥

न इसका जन्म होता हैं। न हानि ही होती है। न इसका गमन होता हैं न स्थिति ही है। यह तत्व यथार्थ रूप में रहता है। तत्वविदों के लिए इसका न कहीं से आगमन होता है न गमन ही,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सुविनष्टो यस्य रागः क्रोधलोभौ च निर्गतौ ।
स एव प्रोच्यते योगी तेनाद्वैतं सुशिक्षितम् ॥३९॥
इत्थं चित्तस्वरूपं हि प्रज्ञात्मकं ययौ यदा ।
तस्यैव योगिवृन्दस्य प्रपञ्चाद् वाङ् निवर्तते ॥४०॥
प्रपञ्चो नाम वाक् प्रोक्तः प्रपञ्चयति यत्नतः ।
अर्थात् तेनैव ह्यद्वैतं प्रपञ्चोपशमं शिवम् ॥४१॥
वाग्भिरव्याकृतं तत्त्वं रमन्ते यत्र योगिनः ।
तत्तत्त्वं परमाद्वैतं शान्तं सत्यं शिवं स्मृतम् ॥४२॥
इत्थं तत्त्वं सुविज्ञाय चित्तं संयोजयेत् परे ।
जानन्नपि च मेधावी जडवल्लोकमाचरेत् ॥४३॥

न यह अधर्म है न धर्म ही है ॥३७-३८॥

जिसका राग नष्ट हो गया है, क्रोध और लोभ समाप्त हो गए हैं। उसे ही योगी कहते हैं और वही अद्वैतको जानता है ॥३९॥

चित्त इस प्रकार के प्रज्ञा के अधीन जिसका होता है, उसी योगीका प्रपञ्च से वाक् प्रत्यावर्तित होती है ॥४०॥

प्रपञ्च वचन (वाणी) ही है। जिससे यत्नपूर्वक पदार्थों का प्रपञ्च होता है। इसी से अद्वैत का ज्ञान होता है वही प्रपञ्चोपशम है ॥४१॥

वचनों से परे जो तत्व है वहाँ योगिवृन्द रमण करते हैं। वही तत्व परम अद्वैत है। वही शान्त, सत्य और शिव है ॥४२॥

इस प्रकार तत्वको जानकर चित्त परब्रह्म में योजित करें। सब कुछ जानते हुए भी मेधावी व्यक्तिको जड के तरह लोक में आचरण करना चाहिए ॥४३॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अद्वैतं गूढधर्मं यो वेत्ति मुनिर्महत्पदम् ।
जडवद् अन्धवत् किञ्चमूकवच्च वसेत् सदा ॥४४॥
गुणकर्मसु संसक्ता येऽपि मूढा नराधमाः ।
तेषां पुरो न वै ज्ञानतत्त्वं ब्रुयुश्च ज्ञानिनः ॥४५॥
सर्वं लोकगतं कर्म कुलागतं च शास्त्रीयम् ।
कर्मजातं न वै शिष्टं तत्त्वविदो महात्मनः ।४६॥
निस्तुतिर्निमस्कारो स्वाहास्वधाविवर्जितः ।
अनिलयः स्थिरमतिर्गच्छेत् यदृच्छया सदा ॥४७॥
प्रपञ्चोपशमं तत्त्वं शिवं विज्ञाय युक्तितः ।
तन्मयः सततं भूत्वा तत्त्वे स्थिरो भवेत् सदा ॥४८॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥

जो मुनि अद्वैत रूप गूढ धर्मको जानता है उसे जडके तरह, अन्धे के तरह और, 'मूक' के तरह व्यवहार करना चाहिए ॥४४॥

प्राकृतिक सामान्य कामधन्धे में, लोभमोह आदि तुच्छ कामों में लगे हुए जो मूर्ख नराधम (मनुष्य) हैं उनके सामने अथवा उन्हें ज्ञान तत्व ज्ञानियों को नहीं वताना चाहिए ॥४५॥

तत्वविद् महात्माओं के लिए शास्त्रीय, कुलाचार आदि कर्म रहित, वासस्थान रहित, किन्तु स्थिर बुद्धि महात्माको यदृच्छया भ्रमण करना चाहिए, प्रपञ्चोपशम, तत्व, जो शिव है उसे जानकर तन्मय होकर उसी में स्थिर रहना चाहिए ॥४६-४८॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथैकोनत्रिंशदध्याय:

सर्वः प्राणमयो लोको यत्र यत्र विलोक्यते ।
प्रतिकृतिः स तस्यैव तस्माद्भिन्नं न किञ्चन ॥१॥
यथाऽऽकाशो घटादौ स्यात् तथा चात्मा व्यवस्थितः ।
नष्टेषु घटजातेषु ह्याकाशो नैव कम्पते ॥२॥
तद्वदात्मापि सर्वत्र प्रतिच्छायेव प्राणिनाम् ।
विद्यते जीवरूपेण विकृतौ न प्रमणता ॥३॥
घटाकाशमठाकाशदेहाकाशादयो यथा ।
महाकाशे विना यत्नं प्रलीयन्ते न संशयः ॥४॥

अध्याय-२९

जहाँ जहाँ प्राणमय संसार है (प्राणी हैं) वह सब उसी परमात्मा की प्रतिकृति है। उससे भिन्न कुछ भी नहीं है ॥१॥

जैसे आकाश घट, पट, मठ आदि में सर्वत्र है। घट पट आदि नष्ट होने पर आकाश में कोई अन्तर नहीं होता ॥२॥

उसी प्रकार आत्मा भी सर्वत्र प्रतिछाया के तरह सभी प्राणियों में जीव के रूप में अवस्थित है उस में कोई विकृति नहीं है। विकृति मे कोई प्रमाण नहीं है ॥३॥

घटाकाश, मठाकाश, देहाकाश, आदि महाकाश में विलीन विना किसी यत्न के हो जाते हैं। उसी प्रकार जीव की स्थिति भी समझलेनी चाहिए। वह भी उस परमात्मा में देह के नष्ट होने पर

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तद्वद् जीवस्थितिं ज्ञात्वा तस्मिन् परात्परे सदा ।
नष्टे देहे प्रलीयन्ते ब्रह्म एवात्र ज्ञायताम् ॥५॥
मृण्मयानां पदार्थानां नामानि पृथगेव हि ।
मृत्तिका तु समानं हि तद्वज्जीवे समानता ॥६॥
भिन्नेषु च पदार्थेषु मृत्तिका भिद्यते न हि ।
देहेष्वपि च भेदेषु नात्मा विभिद्यते क्वचित् ॥७॥
घटाकाशे विकारत्वं ह्यवयवत्वमेव वा ।
महाकाशस्य नैवास्ति तद्वज्जीवोऽपि ज्ञायताम् ॥८॥
आकाशमिव निर्लेप आत्मा यद्यपि वस्तुतः ।
धूमादिभिः परिच्छिन्नं मन्यन्ते बालबुद्धयः ॥९॥

विलीन हो जाता है ॥४-५॥

मिट्टी से बने हुए पदार्थों के नाम निश्चय भी पृथक् पृथक् हैं किन्तु मृत्तिका तो समान है, उसी प्रकार जीवों में भी जानना चाहिए ॥६॥

पदार्थों के भिन्न होने पर भी मृत्तिका में भेद नहीं है उसी प्रकार देशों के भेद होने पर भी आत्मा में भेद नहीं है ॥७॥

घटाकाश में जिस प्रकार महाकाशका विकार या अवयवत्व नहीं है उसी प्रकार जीवकी स्थिति भी समझनी चाहिए ॥८॥

आकाश के तरह यद्यपि आत्मा निर्लेप है फिर भी जैसे आकाशको धूमधूली आदि से ढका हुआ समान्य लोग समझते हैं। उसी प्रकार आत्मा भी निर्मल स्फटिकोपम है किन्तु सामान्यलोग उसे क्लेशकर्म

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

एवमेव सदात्मास्ति निर्मलः स्फटिकोपमः ।

क्लेशकर्मादिभिर्बद्धं मन्यन्ते पामरा जनाः ॥१०॥

सर्वेष्वपि शरीरेषु प्राकृतेषु स्थितोऽपि सः ।

विकृतिं नैव संयाति यथाकाशस्तथा हि सः ॥११॥

पञ्चकोशा इह ख्याताः शरीरेषु रसादयः ।

अन्नरसमयः कोशः प्राणमयो द्वितीयकः ॥१२॥

मनोविज्ञानौ विख्यातौ ह्यानन्दमयः पञ्चमः ।

अहं स्थूलः कृशो वापि रसान्नमयतो भवेत् ॥१३॥

जीवामि किञ्च प्राणिमि प्राणमयाद् भवेत् सदा ।

सन्दिहे किञ्च वै मन्ये मनोमयेन जायते ॥१४॥

आदि से बद्ध मानते हैं ॥९-१०॥

सभी प्राकृतिक शरीरों में वह स्थित है किन्तु उस में कभी भी विकृति नहीं आति जैसे आकाश में ॥११॥

इस जीवन में पञ्चकोश निश्चय ही हैं । अन्नमयकोश, प्राणमयकोश, मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश, और आनन्दमयकोश वे पाँच कोश (शरीर) हैं ।

मैं स्थूल हूँ, पतला हूँ इत्यादि अन्नमय कोश के कारण हम समझते हैं ॥१२-१३॥

मैं जीवित हूँ, प्राणमय हूँ इत्यादि यह सब प्राणमय शरीर के कारण होता है । मैं सन्देह करता हूँ, मैं मनता हूँ यह मनोमय शरीरकोश के कारण होता है ॥१४॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अहमनुभवाम्यत्र विजानामीति दर्शनात् ।
विज्ञानमयकोशोऽत्र मोदे नन्दामि पञ्चमात् ॥१५॥
स्थूलात्सूक्ष्मतमाश्चैते कोशा इव स्थिताः सदा ।
तेषामन्तर्भवेज्जीवः स आत्मेत्यवधार्यते ॥१६॥
व्यापकोऽपि च निर्लेपः परिच्छिन्नेव संबभौ ।
अभेदबोधिकाः सन्ति श्रुतयो ज्ञायतां सदा ॥१७॥
भेदो न सह्यते तेन जीवात्म-परमात्मनोः ।
मृत्युमाप्नोति वै मृत्योर्नानेव योऽपि पश्यति ॥१८॥
द्वितीयाद्वै प्रजायेत भयमित्यादिदर्शनात् ।
प्रज्ञानमिह वै चात्मा ब्रह्मात्मान द्वितीयकम् ॥१९॥

मैं अनुभव करता हूँ, मै जानता हूँ यह विज्ञानमय कोश के कारण और खुस हूँ, आनन्दित हूँ इत्यादि आनन्दमय कोश के होने से होता है। वे सभी कोश क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्मतर सूक्ष्मतम हैं। वे कोश के तरह होने से कोश कहा गया है। उनके परे जीव अवस्थित है। वही परमात्मा है ॥१५-१६॥

वह आत्मा व्यापक और निर्लेप होते हुए भी परिच्छिन्न जैसा हो गया है। किन्तु जीव और आत्मा के अभेद को कहने वाली श्रुतियाँ उपलब्ध हैं ॥१७॥

जीवात्मा और परमात्मा में भेद स्वीकृत नहीं है। जो भेद देखता है वह मृत्यु से मृत्युको प्राप्त होता है ॥१८॥

दूसरे से भय होता है, इत्यादि श्रुतियों के कारण और तत्वमसि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तत्त्वमसि पुनरहं ब्रह्मास्मीति च बोधनात् ।
एतैर्वाक्यैः प्रजायेत ह्यैक्यबोधो न संशयः ॥२०॥
द्वासुपर्णादिवाक्यैस्तु यो भेदस्तत्र वर्णितः ।
भविष्यन्तीं तु वै वृत्तिमाधाय गौणकल्पना ॥२१॥
यथाह भगवान् भाष्ये पतञ्जलिर्महामुनिः ।
वातव्यः शाटकश्चेति संज्ञा भाविनी बोधिका ॥२२॥
एवमेवात्र विद्वद्भिः श्रुतिसम्मतबोधनात् ।
द्वैतापत्तिर्भवेन्नैव बोध ऐक्यमयो भवेत् ॥२३॥
मृत्पिण्डेन तथा लोहमणिनापि च श्रूयते ।
विस्फुलिङ्गैश्च तत्सर्वमुपायः कथितस्त्वथ ॥२४॥

अहं ब्रह्मास्मि, आदि बोधों के कारण तथा इन अभेद बोधकश्रुतिवाक्यों के कारण ऐक्य बोध निश्चित ही होता है ॥१९-२०॥

द्वासुपर्णा आदि वाक्यों से जो भेद वताया गया है वह केवल भविष्यवृत्ति को लेकर गौण कल्पना मात्र है ॥२१॥

जैसे पतञ्जलि ने महाभाष्य में ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किए हैं 'वातव्य शाटक' यह प्रयोग भावी सूचक गौणी वृत्ति मात्र के लिए है ॥२२॥

इस प्रकार विद्वानों ने श्रुति सम्मत व्याख्या की है और इन श्रुतियों के कारण द्वैत संभव नहीं है । किन्तु एकता ही है ॥२३॥

मृत्पिण्ड, लौहमणि, विस्फुलिङ्ग आदि दृष्टान्त केवल उपाय के लिए मात्र हैं । साथ ही शिष्यों को रसालता से तत्व बोध हो जाय

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तत्त्वबोधो विनेयानां सारल्येन यथा भवेत् ।
दृष्टान्तीकृतविद्येयं तेन भेदो न सिद्ध्यति ॥२५॥
यथार्थं व्यवहारं च द्वैतं मन्यन्ते द्वैतिनः ।
ब्रह्मभिन्नं न किञ्चास्ति द्वैतं तद्भेद उच्यते ॥२६॥
व्यावहारिकसत्यं हि द्वैतमद्वयमात्मनः ।
द्वैतिभिर्न विरोधोऽस्ति ह्यद्वैतं सर्वसम्मतम् ॥२७॥
वस्तुतो द्वैतभावोऽपि मायिक एव ज्ञायताम् ।
तत्त्वतो भिद्यते नैव भेदे ह्यनित्यतां व्रजेत् ॥२८॥
अद्वैतस्य हि देवस्य जातिरित्यवधार्यते ।
अजातो निर्विकारश्च कथमेष्यति मर्त्यताम् ॥२९॥

इसी लिए प्रयोग किया गया है । इनसे भेद सिद्ध नहीं होता ॥२४-२५॥

यथार्थ और व्यवहार को द्वैत दार्शनिक भेद समझते हैं । किन्तु ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं है । द्वैत उसीका भेद मात्र है ॥२६॥

व्यवहार काल में अद्वैत से द्वैत है । इसी से द्वैतियों से हमारा विरोध नहीं है क्यों कि अद्वैत सर्व सम्मत तत्व है ॥२७॥

वस्तुतः द्वैत भी मायानिर्मित ही है । तत्व से तो कुछ भी भेद नहीं है । भेद मानने पर अनित्यकी आपत्ति होगी ॥२८॥ अद्वैत तत्वका ही जन्म माना जाता है । अजात, निर्विकार कैसे जन्म मरण में आ सकता है ॥२९॥

नित्य मरणशील नहीं होता । अनित्य नित्य नहीं हो सकता अपने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नित्यं न मर्त्यतां गच्छेद् अनित्यो नैव नित्यताम् ।
स्वभावस्य विनाशोऽत्र न कथञ्चित् प्रजायते ॥३०॥
सदेव सौम्येदमग्रे असद्वेत्यपि दर्शनात् ।
कुतः सृष्टिः समायाता क्वचिन्निर्णीयते तथा ॥३१॥
विनेयानां बोधनाय ह्यर्थवादतया स्वयम् ।
प्राह श्रुतिर्भगवती किन्तु सृष्टिर्न विद्यते ॥३२॥
इन्द्रो मायाभिर्वाक्येन नेह नानेति दर्शनात् ।
सृष्टिर्मायिकी संप्रोक्ता न सृष्टिः परमार्थतः ॥३३॥
अन्धं तमरितिश्रुत्या जातिर्निर्षिध्यते तथा ।
को न्वेनं जनयेत् श्रुत्या तत्कारणं निरुध्यते ॥३४॥

स्वभावका विनाश कैसे हो सकता है ? कभी नहीं ॥३०॥

यह सृष्टि सत् ही थी, यह असत् थी इत्यादि वाक्यों को देखने से यह सृष्टि कहीं से हुई है यह जाना जाता है । यह सब शिष्यों के बोध के लिए और अर्थवाद के रूप में कहा गया है वस्तुतः सृष्टि ही नही हुई है ॥३१-३२॥

'इन्द्रो मायाभि' .... नेह नानेति ...... इत्यादि वाक्यों से सृष्टि माया के कारण ही दिखती है वस्तुतः सृष्टि हुई ही नहीं है ॥३३॥

'अन्धं तम प्रविशन्ति' इत्यादि वाक्यों से जन्म(सृष्टि) का निषेध किया गया है तथा इस सृष्टि को कौन कर सकता है ? यह संभव नहीं है और उसका कारण भी निषेध किया गया है ।

अन्य 'स एष, नेति नेति' इत्यादि, तथा 'द्वे वाव' .... इत्यादि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स एष नेतिश्रुत्यैव द्वे वावेत्यादिवाक्यतः ।
प्रपञ्चस्य ह्यग्राह्यत्वमजः प्रकाशते यतः ॥३५॥
सतो यदि भवेज्जन्म मायिकं तद् भविष्यति ।
न तात्त्विकं भवेत्तत्तु तथाचेन्नैव सिद्ध्यति ॥३६॥
मायाकारणतः स्वप्ने मानसं पश्यति मनः ।
तद्वद् जाग्रति कालेऽपि मायया द्वैतमिष्यते ॥३७॥
ग्राह्यग्राहकरूपेण ह्यद्वैतं पश्यति मनः ।
स्वप्ने जाग्रति कालेऽपि ग्राह्यग्राहकतां व्रजेत् ॥३८॥
द्वैतं भवति वा यत्र इतरं पश्यतीतरः ।
साक्षात्कृते ह्यात्मभावे मनो नश्यति सत्वरम् ॥३९॥

वाक्यों से प्रपञ्चका अग्राह्यता सिद्ध है । अत एव वह परमात्मा अज है, वही सर्वत्र प्रकाशित होता है ॥३४-३५॥

यदि सत् से सृष्टि होती है तो वह माया निर्मित ही समझना चाहिए । वह तात्विक भी नहीं होती तथा सत् से सृष्टि सिद्ध हो ही नहीं सकती ॥३६॥

माया के कारण स्वप्न काल में मन स्वयं अपने आपको देखता है । उसी प्रकार जाग्रद् अवस्था में भी माया से द्वैत भान होता है ॥३७॥

मन उसी अद्वैत तत्व को ही ग्राह्य और ग्राहक के रूप में देखता है । उसी प्रकार स्वप्न और जाग्रत् दोनों में ही ग्राह्य और ग्राहक वह देखता है । और वही ग्राह्यग्राहक बन जाता है ॥३८॥

जो 'इतर इतरको देखता है' वह द्वैत होता है यह श्रुति है ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नष्टे मनसि नैवात्र ग्राह्यं ग्राहक एव वा ।
ग्राह्यग्राहकनाशे तु निष्प्रपञ्चमयं त्विदम् ॥४०॥
ज्ञेयाभिन्नं निर्विकल्पं ज्ञानमत्र निबोध्यते ।
तज्ज्ञेयं ब्रह्म वै नित्यं तेनैव तत् प्रबुध्यते ॥४१॥
येन निगृहीतं स्वीयं मनःसंकल्पवर्जितम् ।
ज्ञेयं भवति वै तस्य मनःसुषुप्तिभेदकम् ॥४२॥
यदापि गृह्यते स्वीयं मनस्तन्निर्भयं भवेत् ।
ज्ञानालोकप्रकाश्यञ्च न मूढं स्वप्नसंस्थितम् ॥४३॥
सर्वथा किल संरुद्धं चित्तं ब्रह्मेति ज्ञायताम् ।
निद्रा-स्वप्नादिरहितं निर्भयमजमव्ययम् ॥४४॥

आत्मसाक्षात्कार के बाद मन तत्काल ही नष्ट हो जाता है। मनके नष्ट होने पर ग्राह्य और ग्राहक दोनो नहीं होते।

जब ग्राह्य और ग्राहक नष्ट होते हैं तव वह निप्रपञ्च हो जाता है ॥३९-४०॥

ज्ञेयसे अभिन्न निर्विकल्प ज्ञान ही उस में अवशेष रह जाता है। वह ज्ञेय ब्रह्म नित्य है वह उसे ठीक से जान जाता है। प्रबोधित ज्ञानी हो जाता है ॥४१॥

जिसने अपने मनको निगृहीत कर लिया है, और वह मन संकल्प रहित हो गया हो, वह सुषुप्ति भेदको जानलेता है और वह ज्ञेय ही हो जाता है। जब अपने मनको निगृहीत किया जाता है तव वह निर्भय हो जाता है। ज्ञान के आलोक से वह प्रकाशित होता है। मूढ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

न तस्य विद्यते नाम न रूपं किल विद्यते ।
स्वयं प्रकाशरूपत्वात् सर्वज्ञं तद्धि मन्यते ॥४५॥
समाधौ संस्थितो वेत्ति निर्भयं ब्रह्म निर्भयः ।
ब्रह्म एव स्वयं सोऽपि प्रजायते न संशयः ॥४६॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्ड एकोनत्रिंशदध्यायः ॥

अवस्था और स्वप्नावस्था में वह फिर नहीं पडता। पूर्ण रूपसे निरुद्ध चित्त चिति या ब्रह्म ही हो जाता है। निद्रा स्वप्न आदि से रहित, निर्भय, अज और अव्यय ही वह हो जाता है अथवा उसे जान जाता है।

उसका नाम रूप आदि कुछ भी नहीं है। क्यों कि स्वयं प्रकाशरूप होने से वह सर्वज्ञ हो जाता है।

जो व्यक्ति समाधि में प्रविष्ट हो जाता है वही उस निर्भय ब्रह्मको जानता है। वह स्वयं भी ब्रह्म ही हो जाता है। इस में सन्देह नहीं है ॥४२-४६॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ त्रिंशदध्यायः

समाधिः

कल्पनारहितं रम्यममनस्कं सुसंहितम् ।
अर्थमात्रस्य निर्भासं स्वरूपशून्यतां गतम् ॥१॥
ध्येयाकारसुनिर्भासं प्रत्यात्मवेद्यसंयुतम् ।
समाधिर्नाम संप्रोक्तमद्वैतमात्रदर्शकम् ॥२॥
तदा न गृह्यते वस्तु नैव त्यागः कथञ्चन ।
आत्मज्ञानस्थितस्तावद् अजातत्त्वमिहोच्यते ॥३॥
चित्तस्य समताभावो निर्विकल्पसमाधिकः ।
सामान्यचित्तदुर्धर्षस्तथाप्यत्र निवेद्यते ॥४॥

अध्याय-३०

समाधि

कल्पनासे रहित, रमणीय, अमनस्क, समीचीन, केवल पदार्थमात्रका द्योतक, स्वरूपशून्य, ध्येयाकार के रूप में व्यक्त, प्रत्यात्मवेद्य, अद्वैतमात्रका प्रदर्शक ही समाधि कहा गया है ॥१-२॥

उस समय पदार्थका ग्रहण नहीं होता और त्याग भी संभव नहीं है। वह आत्मज्ञान में अवस्थित होता है उसे उस समय अज्ञात कहा जाता है ॥३॥

निर्विकल्प समाधि के द्वारा चित्तकी जो समताभाव है उसे सामान्य चित्त से जाना नहीं जा सकता। उसका वर्णन यहाँ किया जाता है ॥४॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सर्वचिन्ताविनिर्मुक्तः सर्वव्यापारवर्जितः ।
आत्मन्येवात्मनायुक्तो नूनं सञ्जायते तदा ॥५॥
सर्वमालम्बनं नष्टं ज्ञानमेवात्र संस्थितम् ।
ग्राह्यग्राहकसंनष्टो ज्ञानी ज्ञानसमाहितः ॥६॥
निर्विकल्पसमाधिस्तु सगुणस्य तु वर्जनात् ।
जायते विभ्यति तावद् योगिनो ह्यभये तदा ॥७॥
अस्पर्शयोग इत्येव गौडपादः पुराऽवदत् ।
मनसो निग्रहात् सर्वमवाप्यते न संशयः ॥८॥
निर्विकल्पसमाधौ यो योगी प्रविशति यदा ।
दुःखक्षयो भवेत्तस्य बोधात् शान्तिः सदा भवेत् ॥९॥

सभी चिन्ताओं से पूर्णमुक्त, सभी व्यापार (क्रियाकलाप) से मुक्त, आत्मा से आत्मा में ही युक्त उस समय निश्चय भी हो जाता है ॥५॥

सभी आलम्बन नष्ट हो जाते हैं। केवल ज्ञान मात्र उस समय रहता है। ग्राह्य ग्राहक भी नहीं होते ज्ञानी ज्ञान में ही समाहित हो जाता है ॥६॥

सगुण के त्याग से निर्विकल्प समाधि में स्थित योगिलोग भी उस अभय पद में भयभीत होते हैं। उसे ही श्री गौडपाद ने 'अस्पर्गयोग' कहा है। वह सब मन के निग्रह से उपलब्ध होता है ॥७-८॥

निर्विकल्प समाधि में जो योगी प्रविष्ट हो जाता है उसका दुःख पूर्ण नष्ट हो जाता है, उस ज्ञान से शान्ति मिलती है ॥९॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

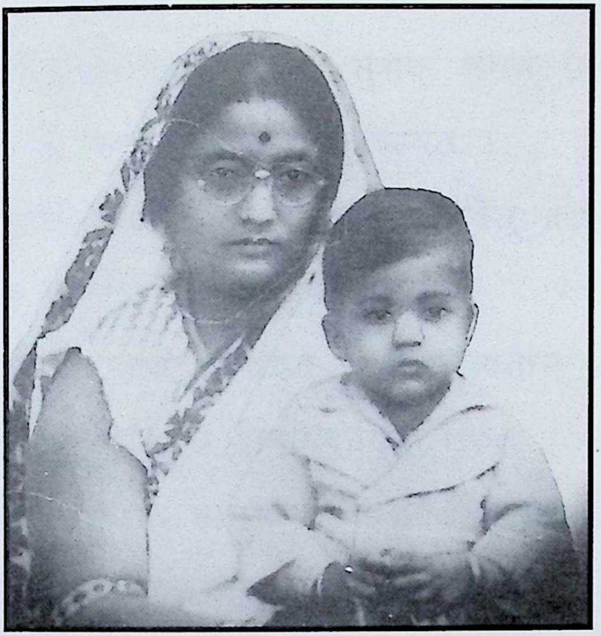

शैशवावस्था में श्री शिवेन्दु लाहिड़ी
अपनी माँ श्रीमती रेणुका लाहिड़ी के साथ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मनसो निग्रहादेव सर्वमवाप्यते यतः ।
तस्याभ्यासेन वैराग्याद् ग्रहणं सुशकं मतम् ॥१०॥
तथोपायेन वै तस्य विक्षिप्तस्य तु कामतः ।
मूढावस्थापि तत्रास्ति ततो निग्रहणं भवेत् ॥११॥
सुषुप्तिरेव संप्रोक्तो लय इत्यपि मानसः ।
ततो निग्रहणं कार्यं कामवत् तत् प्रतीयताम् ॥१२॥
जन्मदु:खं जरादु:खं दु:खं प्रियवियोगिता ।
सर्वं दु:खमयं दृष्ट्वा कामभोगं विवर्जयेत् ॥१३॥
दृश्यमानं जगत् सर्वमजमित्यवधारयेत् ।
तेनैव ब्रह्मणि दु:खं नास्ति तदेव गृह्यताम् ॥१४॥

मनके निग्रह से ही सब कुछ उपलब्ध होता है। वैराग्यपूर्ण होकर अभ्यास से वह अवस्था प्राप्त होती है ॥९-१०॥

कामनाओं से विक्षिप्त मन जो मूढावस्था प्राप्त है उसका भी वैराग्यपूर्ण अभ्याससे निगृहित किया जाता है ॥११॥

मनका जो लय है उसे सुषुप्ति कहते हैं। उसे भी निग्रह करना चाहिए। उसे भी काम के तरह ही समझना चाहिए ॥१२॥

जन्म भी दु:ख है, जरावस्था भी दु:ख है, प्रिय वियोग भी दु:ख है, अप्रिय संयोग भी दु:ख है। सब कुछ दु:ख मय जानकर कामभोगको पूर्ण त्याग दें ॥१३॥

दृश्यमान यह जो जगत् है वह 'अज' है ऐसा विचार करना चाहिए। इसी से ब्रह्म में कोई दु:ख नहीं है। यह धारण करना

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अभ्यासात् स्थीयते नूनं स्वस्थितावििति ज्ञायताम् ।
सर्वप्रपञ्चराहित्याभ्यासो वैराग्य उच्यते ॥१५॥
जन्म-मृत्युजराव्याधिदु:खमनुस्मरेत् सदा ।
भूमैव सुखमित्याहुरल्पं दु:खं सदातनम् ॥१६॥
द्वैतं दु:खं सदायत्तमद्वैतं तु महासुखम् ।
तस्माद् द्वैतान्निवर्तेत ह्यद्वैते स्थापयेत् स्वयम् ॥१७॥
कामस्य मूलमित्यत्र सङ्कल्पमाह धर्मराट् ।
सङ्कल्पहीनता तस्य नाश इत्यवधार्यताम् ॥१८॥
यथा निरिन्धनो वह्नि शाम्यति स्वयमेव हि ।
तथा मनस्तु सङ्कल्परहितं शाम्यति स्वत: ॥१९॥

चाहिए ॥१४॥

अभ्यासद्वारा अपने वास्तविक अवस्था में स्थित होना चाहिए। सर्वप्रपञ्चका अभावका अभ्यास ही वैराग्य है ॥१५॥

जन्ममृत्यु जरा व्याधि दु:ख को सदा स्मरण करना चाहिए। भूमा ही सुख है अल्प दु:ख है सदा यह जानलेना चाहिए ॥१६॥

द्वैत सदा ही दु:ख है अद्वैत ही महासुख है। इसलिए द्वैत से सदा निवर्तित होना चाहिए। अद्वैत में अपनेको स्थापित करना चाहिए ॥१७॥

कामका मूल सङ्कल्प ही है ऐसा बुद्ध ने और युद्धिष्ठिर आदि विज्ञों ने कहा है। सङ्कल्प हीनता ही उसका नाश ऐसा समझना चाहिए। जैसे लकडीरहित वह्नि स्वयं शान्त हो जाती है उसी प्रकार सङ्कल्परहित

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लयेन रहितं चित्तं विक्षेपरहितं तथा ।
यस्य भवति तस्यैवामनीभाव इहोच्यते ॥२०॥
मनसो विषयान्मुक्तिर्मुक्तिरित्यवधार्यते ।
मनसो विषयासक्तिर्बन्धनमिति ज्ञायताम् ॥२१॥
समाधौ येऽपि संयान्ति ततः पूर्वं तु विघ्नता ।
वर्णिता शास्त्रकारैस्तु तदिहैव निवेद्यते ॥२२॥
लयश्च किल विक्षेपः कषायः तृतीयो मतः ।
सुखास्वादः चतुर्थः स्याद् अन्तराया इमे मताः ॥२३॥
निद्रावस्था किञ्चमूढावस्था लय इहोच्यते ।
तत्र लये न वै किञ्चिद् वेत्ति तस्मात् प्रबोधयेत् ॥२४॥

मनः स्वतः शान्त हो जाता है ॥१८-१९॥

लय और विक्षेप से रहित चित्त जिसका होता है वही अमनीभाव के स्थिति में पहूँच जाता है ॥२०॥

मनका विषय से मुक्ति ही मुक्ति है, मनका विषय के साथ आसक्ति ही बन्धन है ऐसा समझना चाहिए ॥२१॥

समाधि में जो भी जाते हैं उससे पूर्व विघ्न आते हैं ऐसा शास्त्रकारों ने वताया है उन्हें यहाँ वताया जा रहा है । लय, विक्षेप, कषाय, सुखास्वाद, वे ही विघ्न वतलाए गए हैं ॥२२-२३॥

मूढावस्था या निद्रावस्था इसे लय कहते हैं । इस अवस्था में कुछ भी ज्ञान नहीं होता इस लिए वहाँ से उठना या जगना चाहिए ॥२४॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शरीरस्य श्रमान् निद्राशेषाद् अजीर्णरोगतः ।
बह्वशनाच्च निद्रायां जागरादपि संभवेत् ॥२५॥
विक्षेपे सति वै तस्य शमयेत् शान्तया धिया ।
रागद्वेषमोहयुक्तं कषायत्वेन वर्णितम् ॥२६॥
तच्च सम्यक्तया ज्ञात्वा तत्सर्वं शमयेत् स्वयम् ।
परिहृते लये किञ्च विक्षेपे च कषायके ॥२७॥
शमप्राप्तं ततश्चित्तं विषये नाभियोजयेत् ।
लीनस्य गृह्णीयाद् विद्वान् विक्षिप्तं शमयेत् स्वयम् ॥२८॥
कषायस्य चेक्षणाद्धि शमं नयेत् शनैः शनैः ।
सुखास्वादे च संप्राप्ते त्यजेद् विषयभोगवत् ॥२९॥

शारीरिक श्रम से, निद्रा की कमी से, अधिक जागरण से, अजीर्ण रोग से, ज्यादा खाने से भी ऐसा होता है ॥२५॥

विक्षेप होने पर शान्त बुद्धि से उसे समझाना चाहिए। राग द्वेष और मोह युक्त हो जाना ही कषाय है। ठीक से उनको समझकर उन्हें शान्त करना चाहिए। लय विक्षेप और कषायों के शान्त होने पर उस चित्तको जिसने 'शम' प्राप्त किया है, उसे विषयों में कभी विक्षिप्तका शमन, तथा कषायको ईक्षणद्वारा धीरे धीरे शान्त करना चाहिए। जब सुख स्वाद में जाय तव उसे विषय भोग के तरह त्याग देना चाहिए ॥२६-२९॥

अपनी प्रज्ञा से अपने चित्तको आसक्तिरहित करके अपने वश में करें। सर्ववृत्ति उच्छेदद्वारा सत्तामात्रको धारण करना चाहिए ॥३०॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रज्ञया स्वकीयं चित्तं निरासक्तं वशं नयेत् ।
सर्ववृत्तिसमुच्छेदात् सत्तामात्रं प्रकल्पयेत् ॥३०॥
एकीभावस्तदा गच्छेद् विरमेत सुस्वादतः ।
प्रज्ञा खड्गेन संच्छिन्नं चित्तं कुर्यात् सुखात् तदा ॥३१॥
निरोधोऽपि प्रयत्नेन कुर्यादित्यवधार्यताम् ।
अमनीभावतो भूयात् साक्षात्कृतं परात्परम् ॥३२॥
निःसङ्गञ्च निराभासं ब्रह्म चेत्यवधार्यताम् ।
चतुर्भिरपि संदोषैर्यदा मुक्तं भवेन्मनः ॥३३॥
तदा भात्येव तद् ब्रह्म व्यापकं च सुसुन्दरम् ।
उक्तदोषविहीनत्वान् निर्वातदीपवन्मतम् ॥३४॥

एकाग्रहोना चाहिए तथा सुखास्वाद से विरमित होना चाहिए। सुखसे चित्तको प्रज्ञारूपी खड्ग से काटकार अलग करना चाहिए। वृत्तिनिरोध भी यत्नपूर्वक करना चाहिंए। अमनीभावसे ही परमतत्वका साक्षात्कार होगा ॥३२॥

ब्रह्मनिःसङ्ग, निराभास है ऐसा समझना चाहिए। चार प्रकारों के दोषों से जब मनः निःसङ्ग हो जाता है तव वह परम ब्रह्म, जो व्यापक, सुन्दर अवश्य भासित हो जाता है। उक्त दोषों से रहित मन वायुरहित दीपक के तरह ही होगा। उस अवसर में मन सभी विम्बों से विचलित नहीं होगा, चित्तवृत्ति निरोध को ही चित्त निरोध कहा जाता है। चित्त ही मन है ॥३३-३५॥

मन के निरोध होने पर तव वह ब्रह्म ही हो जाता है। वह ब्रह्म

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

निष्कम्पं सर्वविम्बेभ्यो रहितं जायते मनः ।

चित्तवृत्तिनिरोधो हि चित्तनिरोध उच्यते ॥३५॥

निरोधे मानसे भूयो ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।

निराभासं पदं प्रोक्तं तद् ब्रह्मात्मकमुच्यते ॥३६॥

चित्तमात्रं निराभासं ज्ञानभूमिरिहोच्यते ।

ज्ञानी तत्रैव रमते ज्ञाने ब्रह्मणि चात्मनि ॥३७॥

सर्वाभिलापरहितं सर्वस्पन्दादिवर्जितम् ।

स्वस्थं शान्तपदं रम्यमद्वैतमिह प्रोच्यते ॥३८॥

येनापि योगिना प्राप्तं रम्यं स्थानमहर्निशम् ।

स सर्वज्ञो भवेन्नूनं स मुक्तो नात्र संशयः ॥३९॥

पद निराभास है । उस में कुछ भी शेष नहीं रह जाता ॥३६॥

चित्तमात्र निराभास है । ज्ञानभूमि वही है । ज्ञानी वहीं रमण करता है । ज्ञान में, ब्रह्म में, और आत्मा में, वे तीन एक ही हैं ॥३७॥

सभी अभिलापों से रहित, सभी स्पन्दों से रहित, स्वस्थ, शान्त रम्य अद्वैत पद होता है ॥३८॥

जिस योगिने वह रमणीय अहर्निश (सर्वदा) प्राप्त किया है । वह निश्चय भी सर्वज्ञ है । वही मुक्त है इस में सन्देह नहीं है ॥३९॥

अपने स्वरूप में अवस्थित विद्वान् ही मुक्त कहा जाता है । सभी लोकजनोंद्वारा यह प्रणम्य है । यही बुद्ध है इसमें सन्देह नहीं है ॥४०॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्वस्वरूपे स्थितो विद्वान् एष मुक्तो महत्तमः ।
सर्वलोकैः प्रणम्यःस्याद् एष बुद्धो न संशयः ॥४०॥

नमामि श्रद्धया योगिवृन्दं मुक्तमजं स्थिरम् ।
सर्वप्रपञ्चरहितमनिकेतं महामुनिम् ॥४१॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे त्रिंशदध्यायः ॥

ऐसे मुक्त, योगिसमूहों, अज, स्थिर, सर्वप्रपञ्चरहित, निश्चित वासस्थानरहित महामुनियों को मैं श्रद्धापूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥४१॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथैकत्रिंशदध्यायः

प्रपञ्चशान्तिः

साङ्ख्या वैदान्तिकाश्चापि सत्कार्यवादिनो मताः ।
अक्षपादाः कणादाश्चासत्कार्यवादिनो मताः ॥१॥
एतेषु वर्तते तावद् विवादस्तु महान् इह ।
जन्मभूतस्य मन्यन्तेऽभूतस्याप्यपरे पुनः ॥२॥
सौगता नैव मन्यन्ते ह्यजातिं ते तु मन्वते ।
भूतं नाम च सत् प्रोक्तमभूतमसदित्यपि ॥३॥
भूतत्वान्नभवेत्तावज् जातिरित्यवगम्यताम् ।
अभूतस्य कुस्तस्तावद् उत्पत्तिरितिचिन्त्यताम् ॥४॥

अध्याय-३१

साङ्ख्य और वेदान्ती सत्कार्यवादी हैं। अक्षपादीय और कणाद असत्कार्यवादी हैं ॥१॥

इन लोगों में, आपस में ही महान् विवाद है। एक वर्ग भूत पदार्थों की उत्पत्ति मानता है दूसरे अभूत पदार्थों की उत्पत्ति मानते हैं। बौद्धलोग उत्पत्तिको नहीं मानते वे लोग अनुत्पत्तिधर्मिक हैं। भूतमाने सत् अभूतका अर्थ असत् है ॥२-३॥

सत्की उत्पत्ति हो ही नही सकती। और असत् की उत्पत्ति कैसे संभव है। यह चिन्तनीय है ॥४॥

इसी लिए सुगतानुयायियों ने तत्व से अजाति ही कहा। क्यों कि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तेनैव सौगतास्तावद् अजातिमाहुः तत्त्वतः ।
नोत्पन्नं जायते किञ्चन् नैव किञ्चिन्निरुध्यते ॥५॥
नोच्छिन्नं जायते किञ्चिन् न किञ्चिच्छाश्वतं मतम् ।
नैकं किञ्चाप्यनेकञ्च नागतं निर्गतं न वा ॥६॥
नास्ति येषां द्वयं ते तु प्रोक्ताः चाद्वयवादिनः ।
द्वयं नाम च किं प्रोक्तमिहैव प्रोच्यतेऽधुना ॥७॥
अस्तिनास्तिद्वयं प्रोक्तमात्मानात्मतया द्वयम् ।
नित्यानित्यद्वयमाहुः शून्याशून्यद्वयं तथा ॥८॥
परस्परविरुद्धं यद्दर्शनं किल विद्यते ।
तदेव द्वयशब्देन प्रोच्यते सौगतैः किल ॥९॥
द्वावेतौ संपरित्यज्य मध्यमा प्रतिपद् स्वयम् ।

कुछ भी उत्पन्न नहीं होता न ही कुछ निरुद्ध होता है ॥५॥

किसी भी पदार्थ की उच्छिति नहीं होती न ही कुछ शाश्वत होता है। एक भी नहीं, अनेक भी नहीं, न आगमन है, न निर्गमन, जिन के मत में 'द्वय' नहीं है वे ही अद्वयवादी कहलाते हैं। यह 'द्वय' क्या है यहीं विचार करते है ॥६-७॥

अस्ति और नास्ति यह द्वय है, आत्मा और अनात्मा यह द्वय है। नित्य और अनित्य यह द्वय है, शून्य और अशून्य यह द्वय है। परस्पर विरुद्ध जो विषय है उन्हें ही द्वय कह जाता है। इन दोनों = 'द्वय' को छोडकर मध्यम प्रतिपद् स्वीकार करने के कारण भगवान् बुद्ध अद्वयवादी कहलाते हैं ॥८-१०॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अद्वयवादी तेनैव भगवान् बुद्धः कीर्त्यते ॥१०॥
अद्वयमिह संप्रोक्तमद्वैतमिह ज्ञायताम् ।
अभेद इति चाद्वैतपदस्यात्र विधीयते ॥११॥
अर्थो ब्रह्मणो जीवस्याभेद एव विबोध्यते ।
भूतस्य येऽप्यभूतस्य जातिमिच्छन्ति वादिनः ॥१२॥
ते मन्यन्ते प्रपञ्चोयमुत्पद्यतेऽस्य कारणम् ।
विद्यते पुनर्यस्यायं कार्य इत्यभिमन्वते ॥१३॥
ताथागतास्त्वद्वयास्तु नोत्पत्तिं मन्वते क्वचित् ।
स्वतो वा भवतीत्युत्पत्तिर्न तथा सम्भविष्यति ॥१४॥
न पराज् जायते द्वाभ्यां नाप्यहेतुतः कुत्रचित् ।
तेनैव सर्वदोत्पत्तिर्निवार्यते यथार्थतः ॥१५॥

अद्वय तत्व यहाँ वताया गया अब अद्वैत क्या है इसका विवेचन किया जाता है - अद्वैतका अर्थ अभेद है । अभेदका तात्पर्य जीव और ब्रह्म से है । अर्थात् जीव और ब्रह्म एक हैं दो नहीं उन में कोई भी भेद अवस्थित नहीं है ॥

जो वादी भूतकी उत्पत्ति मानते हैं उनके अनुसार यह प्रपञ्च उत्पन्न है और इसका कारण भी है । जिस कारणका कार्य यह प्रपञ्च है ॥११-१३॥

अद्वयवादी तथागत उत्पत्तिको स्वीकार नहीं करते । उत्पत्ति न स्वतः सम्भव है । न ही परतः न दोनों से न अहेतु से ही होती है । इसी लिए उत्पत्ति पूर्णरूपेण निषिद्ध करते हैं ॥१४-१५॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भूतस्य विद्यमानत्वाद् उत्पत्तिर्नैव जायते ।
अविद्यमानतो नैव भावानामिति ज्ञायते ॥१६॥
अजातस्य तु मन्यन्ते चोत्पत्तिं येऽपि वादिनः ।
निरञ्जनो निर्विकारश्चामृतो जायतां कथम् !! ॥१७॥
अजातत्त्वाद् अमृतत्वं तस्यैव किल मन्यताम् ।
तस्योत्पत्त्या तु नैवात्र ह्यनित्यत्वं निवार्यते !! ॥१८॥
तस्मादजातजातिस्तु भवितुं नैव शक्यते ।
अनित्यत्वं हि नित्यस्य कथं स्वीक्रियतां त्वया ॥१९॥
नित्यत्वञ्च ह्यनित्यस्य क्वचिद् द्रष्टुं न शक्यते ।
येनापि मन्यते भावो ह्यमृतोऽपि मृतो भवेत् ॥२०॥
मृतोऽपि चामृतस्तस्माद् एकदैव प्रसज्यते ।

जो वादी अजातकी उत्पत्ति मानते हैं, उन्हें जानलेना चाहिए निरञ्जन, निर्विकार, और अमृत की उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? नहीं ॥१७॥

वह तत्व अज्ञात होने से अमृतत्व उसका स्वभाव है । इसी लिए उसकी उत्पत्तिद्वारा उसका अनित्यत्वका निषेध नहीं किया जा सकता । अतएव अजातिभाव हो ही नहीं सकता । नित्यतत्वका अनित्यत्व कैसे स्वीकार किया जा सकता है ?

इसी प्रकार अनित्यत्व का नित्यत्व कैसे संभव है ? नहीं । जो भी अमृत तत्वको मृत मानता है उसे मृत और अमृत दोनों को एक ही वार मानना पडेगा । और एक ही समय में भूतत्व और अभूतत्व

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

समकाले हि भूतस्याभूतत्वं कथमिष्यते ॥२१॥
अभूतस्य च भूतत्वं कथमेतद् भविष्यति ।
पदार्थानां स्वभावो हि सांसिद्धिकः क्वचिन्मतः ॥२२॥
स्वाभाविकः कुत्रचित्तु सहजोऽकृतकश्च सः ।
स्वीयं स्वभावं ते सर्वे त्यजन्ति न कथञ्चन ॥२३॥
सहोत्पत्तिर्हि संसिद्धिर्वह्नेरुष्णः स्वभावकः ।
स्वभावाज्जायते यद्धि स स्वाभाविक उच्यते ॥२४॥
सहजायते कृत्वैव सहज इति कथ्यते ।
न केनचित्कृता तस्मादकृतेति च गम्यते ॥२५॥
जहाति न स्वात्मभावं सा प्रकृतिर्निगद्यते ।
यावदग्निस्तावदेव चोष्णता किल ज्ञायताम् ॥२६॥

संभव होगा। दोनों एक ही वार कैसे संभव हो सकता है। पदार्थों के विविध स्वभाव हैं उन में कहीं सांसिद्धिक है ॥१८-२२॥

कहीं स्वभाविक और सहज तथा अकृत भी पदार्थों का स्वभाव है। अपना स्वभाव वे सब कभी भी परित्याग नहीं करते ॥२३॥

सहोत्पत्तिको संसिद्धि स्वभाव कहते हैं। जैसे अग्निकी उष्णता। जो स्वभाव से ही उत्पन्न हैं उसे स्वभाविक कहते हैं। साथ ही उत्पन्न होने से सहज कहते हैं। किसी ने नहीं बनाया है इसी से अकृतक कहते हैं। जो अपने स्वभावका त्याग नहीं करता वही प्रकृति है। जब तक अग्नि है। उष्णता भी है। अग्नि है तथा उष्णता नहीं है ऐसा होता नहीं है ॥२५-२७॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उष्णता च भवेद्यावत्तावदग्निरिहोच्यते ।
अग्निरस्ति नोष्णतेति न जातुचित् प्रजायते ॥२७॥
यथोत्पत्तिः पदार्थानां न जायते कथञ्चन ।
तथा नाशोऽपि वै तेषां भवति न कथञ्चन ॥२८॥
येऽपि तत्त्वविदः प्राहुर्जरामरणधर्मकम् ।
पदार्थानां स्वभावं ते मृयन्ते च भवन्ति च ॥२९॥
स्वीयेन भावजातेन स्वयं जीर्यन्ति ते सदा ।
मृयन्ते दुःखिनस्तेऽपि न ते तत्त्वविदो जनाः ॥३०॥
सत्कार्यवादिनां नूनं कारणात् किल जन्यते ।
यज्जन्यते कथं तस्य ह्यजत्वं संभविष्यति ॥३१॥
स्वकार्याद् भिन्नता तत्र कथं तस्य प्रजायते ।

जैसे पदार्थों की उत्पत्ति नहीं होती उसी प्रकार उनका नाश भी नहीं होता ॥२८॥

जिन तत्वविदों ने पदार्थोंको जरामरण धर्मक कहा है तथा पदार्थ उत्पन्न तथा विनष्ट होते हैं ऐसा कहा हैं। वे अपने इसी भाव के कारण जन्म मरण में हमेशा लगे रहते हैं वस्तुतः वे वास्तविकताको जानते ही नहीं हैं ॥२९-३०॥

सत्कार्यवादियों के मत में कारण से ही पदार्थों की उत्पत्ति होती है ऐसा कहा है। जो जन्य होता है उसका नित्यत्व कैसे संभव है। अपने कार्य से कारणकी भिन्नता भी सिद्ध नहीं हो सकता।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नित्यत्वं किल तेषां तु कथमत्र भविष्यति ॥३२॥
कारणं ब्रह्म वै तेषां कार्यं जगदिहोदितम् ।
ब्रह्मैव कारणं कार्यरूपेणात्र प्रजायते ॥३३॥
तेषां कारणरूपं हि ब्रह्म नित्यं जगत् पुनः ।
अनित्यमिति सिद्धान्ताद् ब्रह्मणोऽनित्यमिष्यते ॥३४॥
अनित्यं यदि कार्यं स्यान् नित्यस्य कारणस्य तु ।
कार्यस्य कारणे सत्वान् न नित्यं कारणं भवेत् ॥३५॥
न हि कश्चिदनुन्मत्तो जातं पुत्रमजं ब्रूयात् ।
इत्थं कार्यकारणयोरनन्यत्वेन कारणम् ॥३६॥
ब्रह्म प्रधानमिति वाऽनित्यमित्यवबोध्यताम् ।
कारणमेव चेत्कार्याकारेण किल जायते ॥३७॥

नित्यता उसकी कैसे हो सकती है ॥३१-३२॥

यहाँ वास्तविकता तो यही है कि कारण तो उनका ब्रह्म है उसका कार्य जगत् है । ब्रह्मकारण ही जगत् के रूप में दिखता है ॥३३॥

कारणरूप जो ब्रह्म है वह नित्य है किन्तु जगत्को अनित्य कहने से इस सिद्धान्त से ब्रह्म में भी अनित्यत्व आ जाएगा ॥३४॥

नित्य कारण (ब्रह्म) का यदि अनित्य कार्य होगा तो कार्य के कारण में ही होने से कारण नित्य नहीं हो सकता वह अनित्य ही होगा ॥३५॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कथं नु खलु तत्कार्यकारणं नित्यतां व्रजेत् ।
येषां तु वादिनां कार्यं हेतोः पुरातनं मतम् ॥३८॥
अथवा हेतुपूर्वत्वं कार्यस्येति कथं तयोः ।
सिद्धान्तयोरनादित्वं कथं केन प्रसिद्ध्यति ॥३९॥
एष भावस्तु किमादौ बीजं पश्चाच्च ह्यङ्कुरः ? ।
आहोस्विदङ्कुरश्चादौ पश्चाद्बीजमिति स्थितिः ? ॥४०॥
नोभयमुपपद्येत बीजमाश्रित्य ह्यङ्कुरः ।
अङ्कुराद् बीजमित्येव हीतरेतरता भवेत् ॥४१॥
बीजादङ्कुरसिद्धिश्च ह्यङ्कुराद् बीजमित्यपि ।
उभयादुभयोः सिद्धिः कथं लोके प्रजायताम् ॥४२॥
अनादित्वं कथं तावत् तयोरनादिता भवेत् ।

कोई भी यदि वह पागल न हो तो उत्पन्न पुत्र को 'अज' न कहेगा । इस प्रकार कार्य और कारण में भेद संबन्ध नहीं होता ॥३६॥

ब्रह्म हो अथवा प्रधान उस अवस्था में वह अनित्य ही होगा ऐसा समझना चाहिए । कैसे यह अनित्य कार्यका कारण नित्य होगा अनित्य ही होगा । जिन वादियों के मत में कारण से कार्य पहले हैं ऐसा सिद्धान्त है अथवा हेतु से पूर्व कार्य है ऐसा सिद्धान्त है उनके इन सिद्धान्तोंका अनादित्व कैसे संभव है ॥३७-३९॥

इसका अर्थ है पहले बीज फिर अङ्कुर होता है ऐसा मत है अथवा अङ्कुर पहले फिर बीजा होता है ? वे दोनों सिद्धान्त भी संभव नहीं होते क्यों कि बीजको आश्रित बनाकर अङ्कुर होते हैं तथा अङ्कुर

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अनवस्था भवेत् तेन ह्यङ्कुरबीजयोरिह ॥४३॥
फलाद्धेतुर्भवेत्सिद्धो हेतोश्च फलसिद्धता ।
तेन पुत्राद् भवेज्जन्म पितुरित्यवगम्यताम् ॥४४॥
पितुः पुत्रस्तथा पुत्रात् पिता भवति निश्चितम् ।
उभयादुभयोर्भावो भवत्येव न संशयः ॥४५॥
उन्मत्तानां प्रलापत्वं भवेदेतद् यथार्थतः ।
इत्थमेकत्वमेवात्र जन्यजनकयोर्भवेत् ॥४६॥
एकत्वे नैव जन्यत्वं न वा जनकता यतः ।
एकेन क्रियते कार्यं द्वयं नैवेह कल्प्यताम् ॥४७॥
जन्यजनकभावश्च ह्येकत्वे नैव जायते ।
जन्यं विना जनकश्च जनकेन विना जनिः ॥४८॥

से बीज इस प्रकार अन्योन्याश्रित होगा ॥४०-४१॥

बीजसे अङ्कुर की सिद्धि और अङ्कुर से बीज की सिद्धि । दोनों से दोनों की सिद्धि लोक में कैसे संभव है ? ॥४२॥ अनादित्व कैसे उन दोनोंका सिद्ध हो सकता है ? वस्तुतः अङ्कुर और बीज के बीच अनवस्था दोष भी होगा ॥४३॥

इस प्रकार कार्य से कारणकी सिद्धि होगी, कारण से कार्य की सिद्धि करनी पडेगी । इससे पुत्र से पिताका जन्म होगा यह मानना ही पडेगा । पिता से पुत्र, पुत्र से पिता निश्चय भी होगा ही । अर्थात् दोनों से दोनों की उत्पत्ति होगी, इस में सन्देह नहीं है ॥४४-४५॥

वस्तुतः यह कथन उन्मत्तों का प्रलापमात्र हो जाता है । इस

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भवितुं शक्यते नैव तस्माद्हेतुफले न हि ।
हेतुफलयोरैक्याच्च पितृपुत्रसमानता ॥४९॥
चक्षुषः चक्षुविज्ञप्तेश्चैकत्वं च प्रसज्यते ।
बीजाङ्कुरयोरेकत्वं भवेदेव यथार्थतः ॥५०॥
हेतुफलयोः सिद्धिश्च तस्मात् क्वचिद् भवेन्नहि ।
तथापि च तयोर्नूनं क्रमस्त्वत्र भवेन्नु किम् ॥५१॥
उत्पत्ताविति सोऽप्यत्र न सिद्ध्यति कथञ्चन ।
त्रिधा विचार्यते तावद् हेतुरादौ फलं ततः ॥५२॥
फलमादौ पुनर्हेतुर्यौगपद्येन जायताम् ।
यौगपद्ये न सम्बन्धो भवेद् गवां विषाणवत् ॥५३॥
इतरेतरयोर्नैव तत्र कारणता क्वचित् ।

प्रकार जन्य और जनक अर्थात् कार्य और कारणका एकत्व होने से दोनों में जन्यता और जनकता भी संभव नहीं है। एक से ही दोनोंका कार्य हो जाता है और दोनों की आवश्यकता ही नहीं है ॥४६-४७॥

जन्य-जनकभाव भी एक होने पर संभव नहीं है। विना जनक के जन्य होना संभव नहीं है, जन्य न होनेपर कोई जनक भी कैसे हो सकता है। इसी से हेतु और फल अथवा कार्य और कारण हो ही नहीं सकते। कार्य और कारण के समान होने से पिता और पुत्र में भी समानता होगी। चक्षु और रूप में भी एकत्व होगा। यथार्थतः बीज और अङ्कुर में भी समानता ही होगी ॥४८-५०॥

अत एव हेतु और फल की सिद्धि होगी ही नहीं। फिर भी उत्पत्ति

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तद्वदेवात्र सम्बन्धो न कल्पयितुमिष्यते ॥५४॥
वामदक्षिणयोर्नूनं करयोर्नैव दृश्यते ।
परस्परं कारणत्वं पादयोरपि ज्ञायताम् ॥५५॥
कार्येण जन्यते नूनं कारणं यदि चेन्मतम् ।
हेतुत्वं तस्य वै नष्टं फलत्वमेव चागतम् ॥५६॥
फलसिद्धिर्भवेद्धेतोर्हेतुसिद्धिः फलाद् यदि ।
कतरत् पूर्वमुत्पन्नं न कश्चित् संवदिष्यति ॥५७॥
इत्थमजातिमत्वं हि पदार्थानां स्थितं पुरः ।
तस्मात् सर्वस्य प्रभवेद् अजातित्वं स्थिरं सदा ॥५८॥
असतो नैव चोत्पत्तिः सतस्योत्पत्तितो नु किम् ।
तस्माद्भवति नैवात्र ह्युत्पत्तिरिति ज्ञायताम् ॥५९॥

अवस्था में उन दोनों का कोई क्रम तो होना ही चाहिए न !! वह क्रम भी संभव नहीं है। इस में तीन प्रकार से विचार किया जा सकता है। (१) पहले हेतु फिर फल, (२) पहले फल और फिर हेतु (३) दोनों का एकसाथ, यह विचारणीय, किन्तु साथ साथ होना संभव नहीं है। दोनों के साथ होने से भी दोनों, दोनों के कारण वन नहीं सकते। क्यों कि गाय के दो सींगो के बीच में कोई एक कार्य, और एक कारण और दूसरा एक कार्य या कारण देखा नहीं गया है। इसी प्रकार यहाँ भी दोनों का सम्बन्ध स्थिर नहीं किया जा सकता है। उसी प्रकार दायँ और वायाँ हाथों का भी परस्पर कार्य कारणता स्वीकृत नहीं है। इसी प्रकार दोनों पैरों के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए ॥५१-५५॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पूर्वप्रारब्धदेशस्य ह्यज्ञानात् परकोटिता ।
न ज्ञायते तथा मध्यदेशोऽप्यत्र न ज्ञायताम् ॥६०॥
संसारो नाम कश्चित्स्यात् पूर्वाकोटिर्भवेत्तथा ।
परकोटिरपि तस्य भवेद् घटादिवद् यतः ॥६१॥
तस्मान्नैवास्ति संसारः पूर्वपराद्यभावतः ।
अलातचक्रवत्तस्य स्थितिः प्रकल्प्यतां सदा ॥६२॥
अन्तप्रारंभमध्यानामज्ञानात् शक्तिहीनतः ।
क्रमकोपाच्च भावानामुत्पत्तिर्नैव जायते ॥६३॥
घटपटादीनां पूर्वा कोटिर्नूनं विलोक्यते ।
जायमानपदार्थानां त्रिधा तदत्र चिन्त्यताम् ॥६४॥
जायमानस्य तत्रैव सदसत्वेन कल्प्यते ।

यदि कार्य के द्वारा कारण उत्पन्न होता है यह माना जाय तो उसकी कारणता नष्ट होगी और वह स्वयं कार्य रूप में परिणत होगा ॥५६॥

यदि कारण से कार्य की सिद्धि होती है और कार्य से कारण की सिद्धि तो कौन पहले उत्पन्न हुआ है इसे कोई भी वता नहीं पाएगा ॥५७॥

इस प्रकार विचार करने से अजातित्व ही सभी पदार्थों की सिद्धि होती है इसी से सभीको यही समझना चाहिए ॥५८॥

असत् की उत्पत्ति संभव नहीं है । सत् की उत्पत्ति से क्या होगा । इसी से उत्पत्ति नहीं होगी यह जानलेना चाहिए ॥५९॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथवा सद्सद्भ्यान्तु विलक्षणमिहोच्यते ॥६५॥
त्रिधापि सम्भवं नैव ह्युत्पत्ताविति्ज्ञायताम् ।
निरुक्तेः सर्ववस्तूनां मूलस्याप्युपलब्धितः ॥६६॥
सन्ति भावा न ते हेया इति चेदुच्यतेऽधुना ।
अर्थेन सह सम्बन्धो मनसो नास्ति कुत्रचित् ॥६७॥
अभावाद्धि पदार्थानां वस्तु निरुक्तिः किंकृतः ।
त्रिषु कालेषु तच्चित्तं निर्निमित्तमिहोच्यते ॥६८॥
तस्मात्सम्बन्धो भावेन तस्य नैवात्र युज्यते ।
यथा नटा दर्शयन्ति मायया हस्तिव्याघ्रकम् ॥६९॥
अभावेऽपि पदार्थानां लोके दृष्टिर्भवत्यहो ।
ज्ञानमद्वैतमेवात्र स्थितं सदा यथार्थतः ॥७०॥

कहाँ से उत्पत्तिका प्रारंभ है यह पूर्वदेश ज्ञात नहीं है, इसी से पर देश भी ज्ञात नहीं है। साथ ही पूर्व और पर के ज्ञान के अभाव में मध्य भी अविज्ञात ही है ॥६०॥

संसार नामक चीज यदि कोई होगा तो उसका पूर्व और पर कुछ न कुछ होगा, जैसे घट पट आदिका होता है। अत एव संसार नामक कोई पदार्थ नहीं है। वह तो अलात चक्र के तरह ही है। अर्थात् अलात में कोई चक्र नहीं है वैसे ही संसार भी नहीं है ॥६१-६२॥

प्रारंभ, मध्य और अन्तिम के अज्ञान के कारण, उसके जानने और होने के शक्ति के अभाव के कारण, क्रम न बने के कारण भी पदार्थों की उत्पत्ति संभव नहीं है ॥६३॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विस्फुलिङ्गास्ततस्तावत् पदार्था इव लौकिकाः ।
जन्माभासं क्रियाभासं वस्त्वाभासं यथार्थतः ॥७१॥
ज्ञानमेव सदा भाति न वस्तु किञ्चिदुह्यते ।
एवं ज्ञानमयं चित्तं येषां भवति वास्तवम् ॥७२॥
त एव सर्वदा ख्याता ब्रह्मभावेन शाश्वतम् ।
दृश्यामानपदार्थानां स्थितिं ते नु विदन्ति च ॥७३॥
मामामयपूरुषस्य मायास्त्रीरतिवत्स्मृतम् ।
यद्यल् लोकगतं वस्तु यत्र यत्र विलोक्यते ॥७४॥
तत्सर्वं विस्फुलिङ्गाभमलातस्येव ज्ञानतः ।
चित्तमाभासरहितं छिन्नमच्छिन्नमेव च ॥७५॥
अलाते भ्राम्यमाणे हि वैचित्र्यं किल वेद्यते ।

घट पट आदि जन्य पदार्थों की पूर्व अवस्था ज्ञात है। इसी प्रकार सभी उत्पन्न शील पदार्थो की तीन प्रकार से कोटि विज्ञात है । जो भी पदार्थ उत्पन्न होता है वह सत् होगा असत् होगा या सदसत् विलक्षण होगा ॥६४-६५॥

किन्तु उत्पत्ति में यह तीन प्रकार भी संभव नहीं है । क्यों कि सभी की परिभाषा और मूल उपलब्ध हैं ॥६६॥

पदार्थ हैं किन्तु हेय नहीं हैं ऐसा मान लेंतो मनका अर्थ के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। क्यों कि पदार्थ हो तब न मन के साथ सम्बन्ध होगा ? अब पदार्थ के न होने से उनकी परिभाषा या निरुक्ति किस लिए ? तीनों काल में वह चित्त या मन निर्निमित्त है । इसी से पदार्थों

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

चले चित्ते चलं सर्वमचले ह्यचलं सदा ॥७६॥
अलातमिव संभाति लोको लोकस्य सर्वदा ।
अलातस्य च ये भावाः चक्राकारा इव स्वयम् ॥७७॥
नान्यतस्तेऽपि संयान्ति न वा विशन्ति तत्ततः ।
यद् यद् विलोक्यते तावत् तत्र तत्र ह्यलातके ॥७८॥
सर्वमेव स्वयं भाति तद्वद् ज्ञाने न संशयः ।
येऽपि विभिन्नसिद्धान्तान् मन्वते वादिनो जनाः ॥७९॥
तेऽपि स्वीयं मतं नूनमलाते कल्पयन्तु वा ।
ज्ञानान्न निर्गतं चैतज् जगन् नापि विशत्यहो ॥८०॥
न ज्ञानभिन्नं वै चैतन् नाभिन्नमिति कल्प्यताम् ।
परमार्थस्तु सर्वत्र तुष्णींभाव इव स्थितः ॥८१॥

के साथ उसका सम्बन्ध संभव नहीं है ।

माया से नट जादूगर जैसे हस्ति, व्याघ्र आदिको दिखाते हैं उसी प्रकार पदार्थों के न होने से भी लोक देख सकता है । इसी से केवल अद्वैत ज्ञान ही सदा अटल रहता है ॥६७-७०॥

सारे लौकिक पदार्थों को अलात के विस्फुलिङ्ग के तरह ही समझना चाहिए । यथार्थतः जन्म भी आभासमात्र है, क्रियाभास और वस्तु आभास को समझना चाहिए । केवल ज्ञान मात्र है कोइ पदार्थ नहीं है । जिसका इस प्रकारका ज्ञानमय चित्त हो जाता है वे ही ब्रह्म भाव में रमते हैं । वे ही दृश्यमान पदार्थों की स्थितिको समझते है ॥७१-७३॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यथा यथा विविच्यन्ते विशीर्यन्ते तथा तथा ।
केचिद् द्रव्यमया वादाः केचिद् ज्ञानमयास्तथा ॥८२॥
केचित् शून्यमयाः तावत् सर्वे हि बालजल्पिताः ।
अचिन्त्यायास्तु विज्ञप्तेः सृष्टिरसृष्टिरेव हि ॥८३॥
असृष्टौ सृष्टिभावो हि सृष्टावसृष्टिभाविता ।
येऽपि तत्त्वं परं ज्ञातुमुत्सहन्ते यथार्थतः ॥८४॥
तेषां दृष्टिः सदा शान्ता योगयुक्ता भवेद् यतः ।
अशान्तचित्तयुक्तस्य मूढस्य नैव संभवेत् ॥८५॥
ज्ञानमित्येव सर्वत्र चित्तशान्तिर्विचार्यते ।
जगतः सृष्टिरित्येव ये वदन्ति च वादिनः ॥८६॥
मायां पश्यन्तु सर्वत्र व्यवहारे तथेति च ।

मायामय पुरुषका मायामय स्त्री के साथ रति की तरह ही है। जो भी संसार में पदार्थ दिखता है वह सब विस्फुलिङ्ग के तरह मात्र है। जब चित्त सभी आभासों से रहित हो जाता है तव छिन्न अच्छिन्न आदि अलात में दिखने वाले जो भी विचित्रतायें हैं, वे सब नष्ट होंगे। चित्त चल होने से सभी पदार्थ चञ्चल हैं अचल। होने से अचल लोगों के लिए अलात के तरह ही है यह समझना चाहिए। सब कुछ चक्राकार है। वस्तुतः अलात में न कुछ आता है नही निकलता है उसी प्रकार इस जगत् में कुछ न होता है न जाता है। वस्तुतः सब कुछ अलात के तरह पदार्थ दिखाई देते हैं वे हैं तो नहीं। वे सब ज्ञान में ही दिखते हैं। इस में सन्देह नहीं है। जो भी सैद्धान्तिक लोग

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

येऽपि निर्मितकं वस्तु पश्यन्ति जगतीतले ॥८७॥
सृष्टिवादं सदा त्यक्त्वा पदं गच्छन्त्यनामयम् ।
दूरान्नैवात्र संयातं न तिष्ठति न गच्छति ॥८८॥
मायातो भिन्नता नैव जगतः किं विलोक्यते ।
मायातो निर्मितं वस्तु कुत्र लीनं भवत्यहो ॥८९॥
हेतुभिर्निर्मितं वस्तु कुत्र याति निबोधत ।
चित्तं शुद्धं न वै यावत् तावद्हेतुफलोदयः ॥९०॥
शुद्धे चित्ते स्वयं सर्वं नश्यतीति न संशयः ।
अनादिजन्मतो याता वासना सर्वदा स्वयम् ॥९१॥
हेतुफलकल्पनया भ्रामयति च मानसम् ।
यथा सुप्तः स्वयं स्वप्ने पिशाचैः परितप्यते ॥९२॥

विभिन्न सिद्धान्तों को लेकर चलते हैं वे सब अपने भावों को अलात में कल्पना करें। ज्ञान से कुछ निकला नहीं है और नहीं उस में कुछ विलीन ही होता है। ज्ञान से भिन्न यहाँ कुछ भी नहीं है और अभिन्नभी कुछ नहीं है। सभी जगह परमार्थ तो पूर्ण 'मौन' के तरह मात्र है ॥७४-८१॥

जैसे जैसे पदार्थों की वास्तविक स्थितिकी चिन्ता की जाती है वैसे वैसे वे सब विखर जाते हैं। कुछ द्रव्यमयवाद हैं कुछ ज्ञानमय हैं। कुछ शून्यवादी हैं। वे सब बालजल्पमात्र हैं। अचिन्त्य ज्ञान की जो सृष्टि है वह असृष्टि ही है। असृष्टि में सृष्टि और सृष्टि में असृष्टि भाव ही वे देखते हैं जो तत्वविद् जन हैं। उनकी दृष्टि सदा शान्त

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नष्टे स्वप्ने तु नैवात्र तप्यते तद्वदेव हि ।
ज्ञानेन येऽपि वै लोके जाग्रति नु यथार्थतः ॥९३॥
स्वप्नवत्तेऽपि मन्यन्ते सुदीर्घस्वप्नवज् जगत् ।
यावद् हेतुफलात् सृष्टिर्यावद् आवेश चिन्त्यते ॥९४॥
यावत् सृष्टिमयी दृष्टिः तावज् जगत् सुरक्षितम् ।
संसारस्य च नाशाय चित्तं स्थिरं विधीयताम् ॥९५॥
कार्यकारणभावस्य नष्टे जगद् विनश्यति ।
आसक्तिर्हेतुफलयोर्येषां यावत् प्रजायते ॥९६॥
तावद् भवति संसारो नष्टायां किल नश्यति ।
आच्छादयति वै तत्त्वमज्ञानं समभावतः ॥९७॥
तेनैव लौकिका जीवा मुह्यन्त्येव यथार्थतः ।

और योग युक्त ही होगी । अशान्त चित्त मूढजनों के लिए यह जानना संभव नहीं है । जिसको सर्वत्र ज्ञान ही दिखता है वही शान्त है । 'जगत् की सृष्टि होती है' ऐसा जो भी कहते हैं उन सभीको माया-'जादू'को देखना चाहिए । जो भी लौकिक मायाको देखकर इस जागतिक मायाका अनुभव करते हैं वे ही शान्त पद प्राप्त करते हैं । यह जगत् न दूरसे आया है न कहीं जानेवाला है । माया से इसकी कोई भिन्नता नहीं है । क्यो लोगों को यह दिखाई नहीं देता है । माया से निर्मित पदार्थ कहाँ विलीन होता है । उसी प्रकार कारणोंद्वारा निर्मित पदार्थ कहाँ जाते हैं । जबतक चित्त शुद्ध नहीं होता तव तक हेतुफल उदय होता ही रहता है । चित्त के शुद्ध होनेपर सब कुछ नष्ट होता है । वे

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अविद्या सर्वतः पूर्वं सर्वेषां मनसि स्थिता ॥९८॥
तयैव सर्वजन्तूनां बन्धो मानसः कल्पितः ।
मुक्तिरपि च तत्रैव कल्प्यते नु ह्यविद्यया ॥९९॥
अविद्यां ये विजानन्ति ततस्तेऽनुतरन्ति च ।
मायाबीजाद्भवेन्नूनं मायाङ्कुरो यथा तथा ॥१००॥
जगत्सर्वं विजानीयाद् मयाजातं न संशयः ।
तेन नैवात्र चोत्पत्तिर्न स्थितिर्न विनाशिता ॥१०१॥
नोच्छेदो न च वै शश्वज् जगतः कल्प्यते स्थितिः ।
नात्मनो भवति जन्म न वा विनाश इत्यपि ॥१०२॥
एतत् सत्यं विजानीयाद् यज्ज्ञात्वा नैव बध्यते ।
न ग्राह्यं ग्राहकं नैव दृश्यमानं न तत् क्वचित् ॥१०३॥

सभी वासनायें अनादिकाल से आइ हुई हैं। इसी से यह जगत् दिखता है वस्तुतः यह जगत् है ही नहीं ॥८२-९१॥

हेतु और फलकी कल्पनाद्वारा वही वासना मनको भ्रमित करती रहती है। जैसे स्वप्न में स्वयं व्यक्ति पिशाचोंद्वारा दुःख प्राप्त करता है। किन्तु स्वप्न के नष्ट होने पर वह दुःख नष्ट हो जाता है। तत्वको अज्ञान पूर्णरूप से ढक देता है। उसी से लौकिक जीव मोहित होते हैं। अविद्या ही सर्वत्र सभी लोगों के मन में रहती है। उसी से सभी प्राणियों का बन्धन कल्पित है। वह भी मानसिक ही समझना चाहिए। मुक्ति भी अविद्या के द्वारा कल्पित ही है। क्यों कि बन्धन के अभाव में मोक्ष भी संभव नही है। जो अविद्या को जानते हैं वे

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

चलितेषु च चित्तेषु ग्राह्यग्राहकवद् भवेत् ।
यदा निर्विषयं चित्तमसङ्गमिव जायते ॥१०४॥
तदा चाभाति स्वीयं तत् स्वरूपं ब्रह्म निर्भयम् ।
चित्तस्य द्विविधा वृत्तिर्ग्राह्यग्राहकरूपिणी ॥१०५॥
न ग्राह्यं ग्राहकं वापि शान्ते चित्ते भवत्यहो ।
चित्तस्य स्पन्दनात् सृष्टिः शान्तात् शान्तिरिहोच्यते ॥१०६॥
शान्तं ब्रह्मपदं प्रोक्तं चित्तमात्रं विलोक्यताम् ।
यदा न लभते चित्तं स्वीयोत्पत्तेश्च कारणम् ॥१०७॥
कस्माद् भवेत् तदुत्पत्तिः कारणाभावतः स्वतः ।
अनिमित्तं हि चित्तस्य ह्यप्रवृत्तिर्वा निगद्यते ॥१०८॥
साम्यावस्था हि सा प्रोक्ता ह्यद्वैतं तत्र भासते ।

ही उससे पार हो जाते हैं ।

माया बीज से निश्चय ही मायारूप अङ्कुर होगा । उसी प्रकार सारा जगत् माया से ही निर्मित है । इसी से जगत् का उच्छेद तथा शाश्वत अवस्था की कल्पना नहीं करनी चाहिए । आत्माकी उत्पत्ति या विनाश नहीं होते ॥९६-१०२॥

इस सत्यको जानना चाहिए जिस ज्ञान से सारा प्राणिलोक बन्धन में कभी नहीं पडता । न यहाँ ग्राह्य है न ग्राहक है । चित्त के चलने से ग्राह्यग्राहकता दिखते हैं ।

जब चित्त निर्विषय या असङ्ग के तरह हो जाता है तभी अपने वास्तविक रूप निर्भय ब्रह्म स्वरूपका अवबोध हो जाता है । चित्तकी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यदापि वेत्ति चित्तस्य स्थितिं साम्यां यथार्थतः ॥१०९॥
उत्पत्तौ नैव हेत्वस्ति तदा शान्तो भवत्यहो ।
वस्तूनां वास्तवं रूपं जानात्येव यथार्थतः ॥११०॥
निःसङ्गो निर्ममो भूत्वा ब्रह्मविज् जायते स्वयम् ।
अद्वैतं वास्तवं रूपं निश्चले भाति तत्त्वतः ॥१११॥
सर्वेषां ज्ञानयोगिनां तत्कर्म परमाद्भूतम् ।
चित्तं न लीयते मूढे न वा विक्षिप्तमाप्नुयात् ॥११२॥
विषयहीनरूपत्वाद् भाति ब्रह्म सनातनम् ।
एवंविधं तु वै चित्त-मजमनिद्ररूपकम् ॥११३॥
स्वयम्प्रकाशते चैतत् तत्रैव ब्रह्म भासते ।
तत्त्वस्य विषये नूनं भ्रान्ता भवन्ति लौकिकाः ॥११४॥

दो स्थितियाँ हैं ग्राह्य और ग्राहक। शान्त चित्त में ग्राह्य और ग्राहक दोनों नहीं होते। चित्तके स्पन्दन होने से सृष्टि और शान्त होने से शान्ति होती है। शान्त ब्रह्मपद केवल चित्त मात्र है। जब चित्त अपने उत्पत्ति के कारणको नहीं पाता है, तव वह किससे उत्पन्न होता है। होता ही नहीं है; कारण के अभाव से अनिमित्तक है या अप्रवृत्ति समझना चाहिए। वही साम्यावस्था है जहाँ अद्वैत भासित होता है। जब चित्त की साम्यावस्था का अवबोध हो जाता है तव उत्पत्ति में कोई कारण नहीं दिखता तथा वह स्वतः ही शान्त हो जाता है। पदार्थों की वास्तविक स्थितिको भी जान जाता है ॥१०३-११०॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अस्ति-नास्त्यस्ति-नास्तीति नास्ति-नास्तीति वा सदा ।
एवं विधचिन्तनेन तत्त्वान् मुह्यन्ति ते यतः ॥११५॥
चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं तत्तत्त्वमभिधीयते ।
येऽपि तत्र विमुह्यन्ति तत्त्वज्ञाने न ते स्थिताः ॥११६॥
येऽपि प्राप्स्यन्ति तत्तत्वं कोटिभी रहतिं सदा ।
त एव ब्राह्मणाः प्रोक्ता अद्वैतं तत्पदं मतम् ॥११७॥
ज्ञानं न क्रमते तत्र पदार्थेषु यथार्थतः ।
निःसङ्गं प्रोच्यते ज्ञानं ज्ञानी निःसङ्ग उच्यते ॥११८॥
विषयज्ञानयोर्नैव संसर्गो मिथ उच्यते ।
तेनैव ज्ञानिनो मुक्ता विषयादिति ज्ञायताम् ॥११९॥
विषयेष्वपि ये नूनं भवन्ति ज्ञानिनो जनाः ।

तब निःसङ्ग और निर्मम होकर स्वतः ब्रह्मविद् हो जाता है। तब अद्वैत तत्व स्वतः इसे भासित हो जाता है ॥१११॥

सभी योगियों की वह स्थिति अत्यन्त अद्भूत मानी जाती है। उस अवस्था में चित्त न मूढता में, न ही विक्षिप्त अवस्था में ही प्रविष्ट हो जाता है। किन्तु सभी विषयों के न रहने से केवल ब्रह्मरूप ही हो जाता है। इस प्रकारका यह चित्त अज, अनिद्ररूप ही होता है और स्वयं ही प्रकाशित होता है। सनातन ब्रह्म भासित होता है। वास्तविक तत्व के विषय में लौकिक जन भ्रान्त ही होते हैं। है या नहीं, नहीं है या है, या नहीं ही है अथवा है इस प्रकार के चिन्तनद्वारा वे सदा ही मोहित होते ही रहते हैं। वह तत्व तो चार कोटियोंद्वारा सदा ही

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तेऽपि मुक्ता महात्मानो विषयसङ्गवर्जिताः ॥१२०॥
चित्तस्य विषयान्मुक्तिर्मुक्तिर्वास्तविकी मता ।
शरीरमोचनान्मुक्तिर्नैव ज्ञानिभिः चिन्तितम् ॥१२१॥
अनक्षरस्य तत्त्वस्य ह्युपदेशः क्व युज्यते ।
न वा संश्रूयते तत्त्वं न श्रुत्वा ज्ञायते क्वचित् ॥१२२॥
तत्त्वं तु केवलं स्वाद्यं न विवेच्यं क्वचिन्मतम् ।
तेनैव तत्त्ववेत्तारो मौना इव जडा इव ॥१२३॥
प्राप्ते ज्ञाने न वै ज्ञानी तत्त्वं वक्ति कथञ्चन ।
अनक्षरस्य तत्त्वस्य वक्ता श्रोता सुदुर्लभः ॥१२४॥
आर्याणां परमार्थस्तु तुष्णीम्भावतयास्थितिः ।
तेन सर्वे तत्त्वविदो मौना लक्ष्यन्ते ज्ञानिनः ॥१२५॥

विमुक्त है । जो भी इस में मोहित होते हैं वे तत्व ज्ञान में स्थित नहीं हैं । जो भी इन कोटियों से रहित तत्वको प्राप्त करते हैं वे ही ब्राह्मण हैं वह पद अद्वैत पद है ॥११२-११७॥

पदार्थों में ज्ञान संक्रमित नहीं होता । ज्ञान निःसङ्ग है इसी प्रकार ज्ञानी भी निःसङ्ग ही होते हैं ॥११८॥

विषय और ज्ञानका आपस में कोई भी संसर्ग नहीं होता । इसी से ज्ञानी विषयों से पूर्ण मुक्त होते हैं ॥११९॥

जो ज्ञानी विषयगत कर्मों में संलग्न होते हैं वे भी पूर्ण मुक्त होते हैं किन्तु नहीं दिखते। चित्त से मुक्ति ही वास्तविक मुक्ति है। शरीर छोडने से होने वाले मुक्तिको ज्ञानी मुक्ति नहीं कहते । वहतो जन्म ही

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अभिधानाभिधेयत्वं ज्ञानज्ञेयादि सन्निभम् ।
अशेषो व्यवहारोऽयं लोकसंवृतितो भवेत् ॥१२६॥
परमार्थपथे चैतन्न सम्भवति कुत्रचित् ।
कुतो वाचां प्रवृत्तिः स्यात् कुतो ज्ञानस्य वा भवेत् ॥१२७॥
अपरं प्रत्ययं शान्तं प्रत्यात्मवेद्य संगतम् ।
सर्वप्रपञ्चातीतत्वं तत्त्वं शास्त्रेषु निर्णितम् ॥१२८॥
नोपदेशपथं याति तद्ब्रह्म चाक्षयं स्मृतम् ।
व्याख्यानपद्धतिश्चात्र तत्त्वस्य तूपलभ्यते ॥१२९॥
मौनत्वमेव तद्विवज्ञैर्नान्य पन्था क्वचिन्मतः ।
आर्यदेवेन देवेन ज्ञानिना मुनिना पुरा ॥१३०॥
यथा प्रोक्तं तथा सर्वैर्मन्यतां नु जगत्स्थितिम् ।

है ॥१२०-१२१॥

अनक्षर तत्वका उपदेश कैसे संभव है । न उसे सुना जा सकता है और नहीं जाना ही जा सकता है । तत्व तो केवल आस्वादन योग्य ही है । विवेचना से उसे नहीं प्राप्त किया जा सकता वह ज्ञान तो अपर प्रत्यय है, शान्त है केवल आन्तरिक रूपसे वेद्य है । वह तत्व सभी प्रपञ्चों से पूर्ण मुक्त है । यही शास्त्रों में वताया है । इसकी व्याख्यान पद्धति शास्त्र में है वह क्या है ? वह तो केवल मौन ही है । और कोई मार्ग नहीं है । इसी विषयको ज्ञानी आर्यदेव ने पहले जैसा वताया और जगत्की जो स्थिति वतायी है वह सभी को मान्य है और वह यह है -

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अलातचक्रनिर्माणस्वप्नमायाम्बुचन्द्रकैः ।
धूमिकान्त-प्रतिश्रुत्कमरीच्यभ्रैः समो भवः ॥१३१॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्ड एकत्रिंशदध्यायः ॥

जगत् वस्तुतः कैसा है ? वह तो अलातचक्र, जादूद्वारा निर्मित पदार्थ, स्वाप्निक पदार्थ, माया निर्मित पदार्थ, पानी के फफोले, द्विचन्द्र दर्शन, धूमरेखा, झञ्झावातकी चक्राकारस्थिति, मृगमरीचिका, मेघाच्छन्न आकाश के तरह ही है। यही भव की स्थिति है ॥१२७-१३१॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ द्वात्रिंशदध्यायः

येन सर्वे विमुच्यन्ते लोका ज्ञानेन युक्तितः ।
तत्सर्वमिह युष्माकं पुरतो वच्मि साम्प्रतम् ॥१॥
अन्तःप्रज्ञाविहीनानां जनानां स्वल्पमेधसाम् ।
प्रयत्नेन भवेत् तात कल्याणं नैव कुत्रचित् ॥२॥
स्वात्मनः प्रेरणा यावज्जायते ज्ञायतां ततः ।
प्रारंभस्त्वामसंदृष्टिस्ततो दुःखं विनश्यति ॥३॥
अनुभवति वै द्रष्टा नैव दृश्यं कथञ्चन ।
विना विघ्नं यदा मौनसाक्षिभावेन पश्यति ॥४॥
द्रष्टा तदैव जायेत चैतन्यवान् न संशयः ।
यद् यज् ज्ञानं समयाति पुस्तकेभ्यो न तन्मतम् ॥५॥

अध्याय-३२

जिस ज्ञान से सारे लौकिक विषयासक्त लोग युक्तिपूर्वक मोक्ष पदको प्राप्त कर लेते हैं वही ज्ञान मैं आप सभी लोगों के समक्ष बता रहा हूँ ॥१॥

कम बुद्धि वाले, आन्तरिक प्रज्ञाविहीन लौकिक जनों के प्रयास से उनका कोई कल्याण संभव नहीं है ॥२॥

अपने आप से (या आत्मा से) जब आन्तरिक प्रेरणा होती है तभी तुम्हें जान लेना चाहिए की अब परमार्थ के तरफ यात्रा का प्रारंभ हो गया है और उससे होने वाले आत्मदृष्टि से तुम्हारा यह दुःख नष्ट होगा ॥३॥

अनुभव करनेवाला द्रष्टा है दृश्य नहीं, जब विना किसी विघ्न के (या जवर्जस्ती से) मौन होकर साक्षी भाव से देखने लगता है तभी द्रष्टाका चेतना से तादात्म्य हो जाता है तभी दुःख नष्ट होगा । जो भी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पवित्रं किल तत्सर्वं परानुभवभावितम् ।
ये शब्दाः सन्ति वै तत्र तैस्तु ज्ञानं न जायते ॥६॥
केवलं सूचनारूपा न वस्तुस्थितिज्ञापकाः ।
स्वात्मैव किल सर्वत्र ज्ञापकत्वेन राजते ॥७॥
निःसृतं बोधजातं हि पवित्रमिह ज्ञायताम् ।
अनुभूतेस्तु प्रत्यक्षात् मुक्तिर्लभ्येत दुःखतः ॥८॥
न परज्ञानतस्तस्मात् स्वात्मबोधो विधीयताम् ।
लोकोपासनसंसक्ता येऽपि मूढा यथार्थतः ॥९॥
सन्ति नैव विदन्त्येव प्रज्ञां च नाशयन्त्यहो ।
स्वात्मातिरिक्तकोऽप्यत्र परो नात्र कथञ्चन ॥१०॥
उद्धरिष्यति लोकेस्मिन् मानवं विद्धि साम्प्रतम् ।

ज्ञान पुस्तकों से या अन्य बाह्य स्रोतों से आता है वह ज्ञान नहीं है केवल सूचना है । वह तो दूसरों के अनुभवों से दूषित, इसी से वह पवित्र नहीं हो सकता । जो भी शब्द उस में मिलेंगे, उन से ज्ञान नहीं होगा वे तो केवल सूचना देने वाले हैं, वस्तुस्थिति या तत्त्व बोधक न होंगे । क्यों कि सर्वत्र ज्ञान तो आत्मा से ही प्रस्फुटित होगा । वही आत्मा से निकला हुआ बोध ही अति पवित्र होता है । उसी के प्रत्यक्ष अनुभवद्वारा ही दुःखों से मुक्ति होती है । दूसरों के ज्ञान से या पुस्तकों के ज्ञान से मुक्ति हो ही नहीं सकती । अत एव आत्म बोध ही करना चाहिए । जो भी मूढ हैं, केवल लोकोपासना में आसक्त हैं, वे उस बोधको जान नहीं सकते और अपने थोडी सी प्रज्ञाका भी नाश करते हैं। अपने अतिरिक्त कोई भी इस लोक में मानवों का (अपने आपको)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्वात्मानं सततं रक्षेत् स्वयमेव हि मानवः ॥११॥
मानवत्वं भवेत्तावत् तत्रैव किल रक्षितम् ।
महत्त्वमपि तत्रैव स्थितमाध्यात्मिके पथि ॥१२॥
अन्यथा परचित्तेन मानवो नैव रक्ष्यते ।
स्वस्य मुक्तिं स्वयं पश्येत् प्रयतेत स्वयं यतः ॥१३॥
न कर्तुं शक्यते किञ्चित् परेणेत्यवधार्यताम् ।
किञ्च सत्यं जनान् तात विमोचयति दुःखतः ॥१४॥
प्रयासस्य फलं नैव मुक्तौ किञ्चित् प्रतीयते ।
निःस्वार्थस्नेहवृक्षो हि क्रियात्मकः सदा भवेत् ॥१५॥
प्रतिक्रियामयो नैव स स्नेहश्चावधार्यताम् ।
एवं नित्यं सुविज्ञातं सत्यं सर्वत्र सर्वदा ॥१६॥

उद्धार नहीं कर सकता । स्वयं ही अपना उद्धार करना चाहिए । अपनी रक्षा स्वयं ही करनी चाहिए ॥४-११॥

उसी आन्तरिक बोध से ही मानवताका की भी रक्षा होगी । आध्यात्मिक मार्ग में महत्व भी उसीका होगा ॥१२॥ अन्यथा अन्यचित्तों से मानव स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकता । अपनी मुक्ति स्वयं करनी होगी । स्वयं उसे पता लगाना पडेगा । उसी के लिए स्वयं प्रयत्नशील होना चाहिए । अर्थात् दूसरों के द्वारा दूसरों का कल्याण (मुक्ति) कदापि संभव नहीं है । दूसरे दूसरों का दुःख नष्ट नहीं कर सकते । यथार्थ रूप में मुक्ति किसी प्रयासका फल हो ही नहीं सकता । निःस्वार्थ स्नेहवृक्ष ही वह होगा-क्रियात्मक प्रयास=अर्थात् क्रियायोग । प्रतिक्रियामय वह स्नेह क्रियावृक्ष नहीं है । इस सत्यको

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विद्यते तस्य विज्ञानं मायानिवृत्तितो भवेत् ।
चैतन्यं भ्रमजालेन दूषितं जायते यदा ॥१७॥
तावन्नैवात्र विज्ञानं सत्यस्य किल ज्ञायताम् ।
यानि पुस्तकजातानि मायाजालयुतानि हि ॥१८॥
यथा जालेषु मत्स्यानां धीवराणां प्रयासतः ।
बन्धनं जायते तद्वद् बन्धनं भवति क्रमात् ॥१९॥
तस्मात् तादृश-व्यक्तीनां पुस्तकानां च युक्तितः ।
विधीयतां परित्यागो येन कल्याणमाप्स्यसि ॥२०॥
परम्परासु विश्वासाद् धार्मिकत्वं न सिद्ध्यति ।
मनसस्तु क्रियाः सर्वा येन मुह्यन्ति जन्तवः ॥२१॥
यद्धि ज्ञानं सुविज्ञातं सुस्पष्टं सर्वसुप्रियम् ।

सर्वथा ठीक से समझना ही चाहिए। वह सत्य सर्वदा सभी के लिए मनन योग्य है । वह परमबोध माया जाल से निवृत्त होने से ही होगा।

जब भी वह चैतन्य भ्रमजाल से दूषित होता है तब तक सत्यका ज्ञान या बोध संभव ही नहीं है । जितने भी पुस्तक हैं वे सब मायाजाल के तरह हैं । जैसे धीवरों के प्रयासद्वारा मछलियाँ जाल में फँस जाती हैं उसी प्रकार उन पुस्तकों से भी लोगों को बन्धन ही मिलते हैं। इस लिए इन पुस्तकों से, इन प्रवचन कर्ताओं से, पण्डों से, पुरोहितों से, इन धर्माचार्यों से अपनेको वचाना चाहिए अथवा इनका पूर्ण परित्याग करना. चाहिए जिससे कल्याण संभव है ॥१२-२०॥

परम्पराओं में विश्वास करने से धार्मिकता सिद्ध नहीं होती । वे सब मन के ही जंजाल हैं जिससे लोग मोहित होते हैं और फँसे रहते हैं ॥२१॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पवित्रं विद्यते तत्तु ह्यपरीक्षं सदा मतम् ॥२२॥

तुच्छस्य मनसः कृत्यं सर्वं तुच्छं हि मन्यताम् ।
ईश्वरोऽपि च वै तस्य तुच्छ एव प्रजायते ॥२३॥

तुच्छं हि जीवनं नूनमनुभूतौ विलोक्यते ।
संग्रहे चानुभूतीनां दुःखमेव सदा भवेत् ॥२४॥

तस्य याथार्थज्ञानाद्धि प्राणीनां दुःखहानता ।
जायते किञ्च बोधस्तु शनैरुत्पद्यते क्रमात् ॥२५॥

पूर्णता मनसो नाशाद् अनुभूतेश्च नाशतः ।
विज्ञानस्य प्रबोधो हि ततस्तूत्पद्यते क्रमात् ॥२६॥

विचाराणां महाजाले स्वात्मानं नैव पातय ।
जागृहि सततं तेषां कृत्यजातं विलोकय ॥२७॥

जो ज्ञान सुविज्ञात है, स्पष्ट है, सर्वप्रिय है, वही पवित्र है उसकी किसी परीक्षाकी आवश्यकता ही नहीं है ॥२२॥

तुच्छ मनके सारे क्रियाकलाप तुच्छ ही होते हैं। उस मनद्वारा कल्पित ईश्वर भी तुच्छ ही होगा। यह सारा जीवन तुच्छ ही दिखता है क्यों कि तुच्छ मन के द्वारा किए गए सारे अनुभूति ही तुच्छ होते हैं उन से दुःख ही होता है ॥२३-२४॥

उसकी तुच्छता के यथार्थबोधद्वारा ही प्राणियोंका दुःखनाश होता है। उससे धीरे धीरे वह बोध उत्पन्न होगा। मनके नाश से ही पूर्णता होती है साथ ही अनुभूतिका नाश भी आवश्यक है। उसके बाद ही ज्ञानका प्रबोध संभव है ॥२५-२६॥

विचारों के महाजाल में अपने आपको मत फँसाओ। हमेशा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

येन येन विचारेण यद् यद् कर्म प्रजायते ।
सुदूरात् पश्य तत्सर्वं स्वात्मानं नैव योजय ॥२८॥
सत्यं नीतिगतं कर्म स्वयं तावत् प्रजायते ।
न भयात् न च वै लोभान् न क्लेशान् न च रागतः ॥२९॥
आशा नाम मनुष्याणां बोधं नाशयति सदा ।
मूलम् अस्तितत्वसञ्जातं निरोधयति यत्नतः ॥३०॥
अहङ्कारस्त्वबोधस्य परिणाम इति त्वया ।
अपूर्णक्रियया किञ्च जायते इति ज्ञायताम् ॥३१॥
अथवा मनसो जाता क्रिया एवावधार्यताम् ।
मृगमरीचिका चैषा चाहङ्कारस्तु ज्ञायताम् ॥३२॥
सत्यमस्तितत्वसञ्जातं यद्धि सर्वत्र राजते ।

जागरण में रहो - उन विचारों से, उनका क्या कर्म है उसे साक्षीबन कर देखो ॥२७॥

जिस जिस विचार से जो जो कर्म होते हैं। उन्हें दूर से ही देखो किन्तु अपने आपको उस में मत फँसाओ ॥२८॥

सत्य और नैतिक कर्म जब स्वयं ही होने लगते हैं, न भय से, न लोभ से, न राग और न ही क्लेश से, तभी जागरण हो रहा है यह जान लेना चाहिए ॥२९॥

आशा ही मनुष्यों का बोध हमेशा नष्टकर देती है। वही आशा मूलभूत अस्तित्वको समूल उच्छेद करती है ॥३०॥

अहङ्कार तो अप्रज्ञाका ही परिणाम है यह जान लेना चाहिए। और वह क्रियाकी अपूर्णता से उत्पन्न होता है ॥३१॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

बोधविहीनतैवात्र भयं जनयति यतः ॥३३॥

वस्तुतत्त्वस्य चाज्ञानाद् वस्तुतत्त्वाविवेकतः ।
सर्वत्र भयमाप्नोति पलायते इतस्ततः ॥३४॥

मन एव मनुष्याणाम् आविर्भवति सर्वदा ।
बोधं तस्माद् भवेल्लोककर्मसु व्यग्रता यतः ॥३५॥

अज्ञानतां यदा वेत्ति मनसस्तु स्वयं तदा ।
उदेति तत्र वै प्रज्ञा चैतन्यमेव तन्मतम् ॥३६॥

अन्वेषणाद्धि सत्यस्य बोधस्तत्र प्रजायते ।
असत्यं ज्ञायते तस्मात् सत्यं सर्वत्र संस्थितम् ॥३७॥

केवलं जीवनं रम्यम् इहैव किल विद्यते ।
अपेक्षा विद्यते नैव भवतस्तत्र जीवने ॥३८॥

अथवा वह अहङ्कार मनकी क्रिया ही है ऐसा जाना जाता है। वह अहङ्कार वस्तुतः मृगमरीचिका ही है ॥३२॥

जो सत्य है, वही अस्तित्व है। उसका अबोध निश्चय ही भय उत्पन्न करता है ॥३३॥

वस्तुतत्वका अज्ञान और उसके अविवेक ख्यातिद्वारा सभी जगह भय उत्पन्न होता है इधर उधर भागता ही रहता है ॥३४॥

मनुष्यका मन ही सभी जगह सामने आ जाता है और प्रज्ञाको ढक देता है उसी से लोककर्म में व्यग्रता होती है ॥३५॥

जब मनकी उस विकट अज्ञानताको स्वतः समझ लिया जाता है। उसके बाद प्रज्ञाका उदय होता है वही चैतन्य है ॥३६॥

उसके अन्वेषणद्वारा सत्यका बोध होता है। उसके बाद असत्यका

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्वीया जीवनभाषास्ति बाधा नैव विधीयताम् ।
द्वन्द्वं सर्वविधं त्यक्त्वा सुरक्षां चापि यत्नतः ॥३९॥
जीवने जीव्यतां पूर्णतया तात यथार्थतः ।
गभीरो विद्यते तावल्लोके जीवनसागरः ॥४०॥
तत्र प्राप्यैव लभ्यन्ते मौक्तिकाः परमार्थगाः ।
यस्यापि विद्यते बुद्धिर्बोधयुक्ता सुकोमला ॥४१॥
अरक्षिता ग्राहिका वा ह्यनावृता च वस्तुतः ।
तस्यैव जीवनं रम्यं यथार्थरूपकं सदा ॥४२॥
उद्घाटिते भवत्येव नात्र कार्या विचारणा ।
ऋतं संवेत्ति वै प्रज्ञा नानुशासनमित्यपि ॥४३॥
तत एव भवेद् रम्या व्यवस्था साक्षिमार्गगा ।

भी ज्ञान होता है । सत्य तो सर्वत्र स्थित है ही ॥३७॥

जीवन अत्यन्त रमणीय है किन्तु यह यहीं है और यहीं है । जीवन से कुछ भी अपेक्षा नहीं करनी चाहिए । जीवन ही अपने आप में सब कुछ है ॥३८॥

जीवन की अपनी ही भाषा है, परिभाषा है । उसे छेडछाड नहीं करना चाहिए । सुरक्षा और सभी बन्धनों को तोडकर पूर्णजीवन जीना चाहिए । यथार्थरूप में जीवनको जानना चाहिए । यह जीवन सागर अत्यन्त गंभीर है । उस जीवनरूपी गंभीर सागर के अन्तस्तल में जाकर ही जीवन के मोतियाँ उपलब्ध होती हैं । वे पारमार्थिक मोतियाँ हैं । जिसकी बुद्धि बोधयुक्त, कोमल, अरक्षित, ग्राहक, वस्तुतः अनावृत है उसीका जीवन रमणीय, यथार्थ और पूर्ण है । वही सुखी है । तभी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शास्त्रज्ञानेन वादेन नामूलं परिवर्त्यते ॥४४॥
तत्सर्वं परविज्ञानं जुष्टमेव हि मन्यताम् ।
ऊर्ध्वचैतन्यमारोढुं न हि शास्त्राद् भविष्यति ॥४५॥
सर्वेषां वादजातानां सिद्धान्तानां च मूलता ।
मन एवात्र ज्ञातव्यं मनसो मुच्यते न हि ॥४६॥
ध्याने पूर्णतया लग्नं पूर्णसंवेदनायुतम् ।
मनः सञ्जायते तात स्पष्टद्रष्टा न संशयः ॥४७॥
तादृशं मानसं सर्वविषयान् वेत्ति सर्वदा ।
बोधयुक्तं प्रजायेत नित्यं निर्मलतां गतम् ॥४८॥
यद्यत् शब्दैस्तु बोध्येत न तत्र सत्यता क्वचित् ।
यतो हि व्यज्यते नैव सत्यं शब्देन कुत्रचित् ॥४९॥

जीवनका वह कपाट खुल जाता है जो बन्द है । इस में विचारकी कोई आवश्यकता नहीं है । वह प्रज्ञा ऋृतको जान जाती है किन्तु कथित अनुशासनको नहीं । उसी से रमणीय व्यवस्था संभव है जिसे हम साक्षी कहते हैं । शास्त्र ज्ञान और किसी सिद्धान्त ज्ञान से वह संभव नहीं है । वह सब तो दूसरोंका ज्ञान है जूठा है । ऊर्ध्व चैतन्य प्राप्त करने के लिए बोध ही चाहिए शास्त्र ज्ञान से वह कभी भी संभव नहीं है ॥३९-४५॥

सभी सिद्धान्त और वादों के मूल में मन ही है । उनके ज्ञान और अध्ययन से मन से मुक्ति संभव नहीं है ॥४६॥

ध्यान में पूर्ण रूप से लगा हुआ और पूर्ण संवेदना से युक्त मन (जो अमन ही है) ही पूर्ण द्रष्टा हो सकता है ॥४७॥

वैसा (अमन) मन ही सभी विषयों को जान जाता है । वही

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

असत्यविषयान् एव वयं वक्तुं सदैव हि ।
शक्नुमो नैव तत् सत्यं यत्र शब्दो न धावति ॥५०॥
मौनं तद्विद्यते रम्यं वस्तुजातं यथार्थतः ।
तेनैव ज्ञायतां सत्यं सत्ये वाणी न युज्यते ॥५१॥
यदापि प्रोच्यते किञ्चित् शब्दैस्तात निबोधत ।
मौनितां प्राप्तुमेवात्र प्रयासः क्रियते मया ॥५२॥
यज्ज्ञातं विद्यते वस्तु तत् सर्वं मनसो मतम् ।
स्वातन्त्र्यं मनसो मुक्तिरुच्यते नु मयाऽधुना ॥५३॥
मनसस्तु परं तद्धि पुरातनमहर्निशम् ।
यत्सत्यं विद्यते तात तज्ज्ञातुं नैव शक्यते ॥५४॥
न च वाण्या भवेत् तद्धि पवित्रं वस्तु सर्वदा ।

बोधयुक्त, नित्यनिर्मल माना गया है ॥४८॥

जो भी वाणी या शब्दद्वारा हम जानते हैं वह सत्य नहीं है। क्यों कि सत्य वाणीका विषय ही नहीं है ॥४९॥

हमलोग हमेशा असत्य को ही शब्द से व्यक्त करते हैं । सत्य तक तो शब्दका पहुँच ही नहीं है ॥५०॥

वास्तविक जो सत्य है वह तो मौन ही है । उसी मौन से सत्यको समझना चाहिए। सत्य में वाणीका (शब्द) प्रयोग ही नहीं होता ॥५१॥

जो भी मैं शब्दों द्वारा कुछ कहता हूँ वह सब मन ही है । मैं तो मनसे स्वतन्त्र होने के लिए कह रहा हूँ ॥५३॥

मनसे परे जो पुरातन, सनातन सत्य है उसे मन के द्वारा कभी भी नहीं जाना जा सकता है ॥५४॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विषयत्वं ततो नैव मनसा ज्ञायते क्वचित् ॥५५॥

मनसो विषयं त्यक्त्वा परं यान्ति सुमेधसः ।

त एव तादृशीं प्रज्ञां बोधं यान्ति यथार्थतः ॥५६॥

पवित्रं परमं रम्यं वस्तुजातं यदापि त्वम् ।

दूषणमविधायैव स्वीकरोषि यथार्थतः ॥५७॥

द्वन्दहीनतया पूर्णरूपेण स्वात्मबोधताम् ।

कुरुषे तत एवात्र बोधस्तु जन्यते स्वयम् ॥५८॥

आमूलं जायते तात मानसपरिवर्तनम् ।

प्रारभ्यतां ततः तस्माद् इदानीं न बिलम्व्यताम् ॥५९॥

जीवनं परमं रम्यं मुक्तिसाधनतां गतम् ।

स्वीकुर्वन्तु याथार्थ्येन प्रेम्णा बोधतया सदा ॥६०॥

वह पवित्र ज्ञान वाणीका भी विषय नहीं है। मन से भी वह पवित्र ज्ञानको साक्षात्कार नहीं किया जा सकता है ॥५५॥

विद्वान् एवं बुद्धिमान् प्राज्ञ मन के विषयों को छोडकर परं पदको, बोधको प्राप्त होते हैं ॥५६॥

परम पवित्र जो रमणीय तत्व है उसे जब तुम किसी भी प्रकार के दूषण के विना स्वीकार करते हो, साथ ही दन्द्वरहित होकर पूर्णरूपसे आत्मबोध करते हो उसी से वह ऋतम्भरा प्रज्ञा उदित स्वतः होती है ॥५७-५८॥

उसके बाद मनका आमूल परिवर्तन हो जाता है। तव इसी समय उसका प्रारंभ करो। बिलम्ब के लिए कोई स्थान या कारण नहीं है ॥५९॥

जीवन अत्यन्त रमणीय है साथ ही मुक्तिका साधन भी है। इसे पूर्ण यथार्थ, प्रेम और बोध के साथ स्वीकार करो ॥६०॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

व्यर्थपरप्रशंसापि किञ्च परापमानता ।
अज्ञानजनितत्वेन हेयमित्यवधार्यताम् ॥६१॥
तादृशव्यवहारेषु येऽपि संलग्नतां गताः ।
दयया तेऽनु द्रष्टव्या वराकास्ते न संशयः ॥६२॥
यत् सत्यं तद्धि नित्यं स्यात् तत्र बोधो विधीयताम् ।
बोधं विना न तस्यात्र ह्यनुभूतिर्हि जन्यते ॥६३॥
सांसारिकानुभूत्यैव ह्यवकाशो विधीयताम् ।
मनः पूर्णतया विद्धं सर्वदा तत्र जायते ॥६४॥
सन्तोषो न्यूनतायां न चाधिके लिप्सता न हि ।
द्वभ्यां स्वातन्त्र्यरूपेण स्थीयतां यत्नतः सदा ॥६५॥
प्रभूतं विद्यते चैतत् न्यूनमित्यपि भावना ।

व्यर्थ में दूसरों की प्रशंसा और पर निन्दा या अपमान कभी मत करो । वे दोनों भी अज्ञान के कारण ही होते हैं । इसी से वे हेय हैं ॥६१॥

दूसरों की प्रशंसा और निन्दा में जो भी संलग्न हैं, उन्हें दया की दृष्टि से देखना चाहिए क्यों कि वे तो वेचारे हैं । इस में सन्देह नहीं हैं ॥६२॥

जो सत्य है वह नित्य है उसी के प्रति सदा जागरुक रहो । विना उस सत्य बोध के कोई अलौकिक प्रज्ञा उत्पन्न नहीं होती ॥६३॥

सांसारिक अनुभूति से पूर्ण मुक्त हो जाओ । क्यों कि उसी में मन पूर्ण रूप से उलझ जाता है ॥६४॥

'थोडे में सन्तोष करना और अधिक में लिप्सा' वे दोनों से मुक्त

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मनसो विद्यते तात न तत्र रम्यतां बुधैः ॥६६॥
दुःखबोधाद्धि मुच्यन्ते मानवा दुःखतः सदा ।
अविज्ञाय न दुःखेभ्यो मुच्यन्ते विद्धि साम्प्रतम् ॥६७॥
पूर्णता जन्यते तात विपरीतक्षणेषु किम् ।
जीवनशक्तिनाशस्य क्षणे वा ज्ञायतां सदा ।
न तथा, जीवने पूर्णतया विज्ञायते यतः ॥६८॥
चैतन्यं प्राप्यते तत्र पवित्रं तद्धि मन्यताम् ।
तत्र चानन्दसन्दोहो रिक्ततापि च विद्यते ॥६९॥
सर्वव्यापिपूर्णतापि तत्रानुभूयतां त्वया ।
तस्य बोधाद् विमुच्यन्ते मनसो निग्रहाद् यतः ॥७०॥
दिव्यप्रेमाग्निज्वालायां दोषाणां स्वत एव हि ।

होते हुए स्वतन्त्र रूपसे रहनेका अभ्यास करो ॥६५॥

यह ज्यादा है, यह कम है यह भावना सब मनकी ही है । अतः विद्वान् इन दोनों से परे होते हैं ॥६६॥

दुःखों के बोध से उससे मुक्त होना संभव है । उसे ठीक से समझे विना दुःखसे मुक्ति नहीं मिलती ॥६७॥

क्या ? किन्हीं विपरीत क्षणों में ही पूर्णता उत्पन्न होती है । अथवा जीवन की शक्ति जव पूर्णनष्ट होती है क्या तव ? तव यह बोध लोगों को होता है ? ॥६८॥

नहीं यह तो जीवन में ही संभव है उस क्षण में जो चैतन्य प्राप्त होता है वह पवित्र है । उसमें आनन्द सन्दोह अवश्य है साथ ही रिक्तता भी है ॥६८॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भस्मीभावस्तु विज्ञेयो न किञ्चित् तत्र रक्ष्यते ॥७१॥
स्वयं मानव ईशोऽस्ति पूर्णोऽपि विद्यते तथा ।
जीवितो मानवः प्रोक्तो न सिन्द्धान्तो यथार्थतः ॥७२॥
अत एव सर्वविधमार्गपरम्परासु च ।
पूर्वाग्रहविचारेषु स्वात्मानं नैव पातय ॥७३॥
पूर्णमुक्ततया सर्ववादेषु स्थीयतां यतः ।
न शास्त्रारुढसिद्धान्तैर्बोधवृत्तिस्तु तन्यते ॥७४॥
येऽपि जीवनसंसर्गाद् रम्यान् त्यजन्ति लोभतः ।
तेषां कृते प्रतीयेत रहस्यवादिता तथा ॥७५॥
जीवनस्य मार्गजातं किन्तु तत्रापि मानसम् ।
निबध्नाति ततो मुक्तिर्नात्र तैर्लभ्यते क्वचित् ॥७६॥

सर्वव्यापी पूर्णता वहीं पर अनुभव करना चाहिए । उसके बोध से ही मन के पकड से मुक्त हुआ जा सकता है ॥७०॥

दिव्य प्रेमाग्नि की ज्वाला में दोषों का स्वतः स्फूर्त रूप में भस्म होना स्वाभाविक है । उस में कुछ भी सुरक्षित नहीं रहता ॥७१॥

मानव स्वयं ही ईश्वर है साथ ही पूर्ण भी है । जीवित मानव है यह कहने वाला सिद्धान्त ही ठीक नहीं है ॥७२॥

अत एव सभी मार्ग और परम्पराओं तथा पूर्वाग्रह विचारों में अपने आपको मत गिराओ ॥७३॥

सभी वादों सिद्धान्तों से पूर्णमुक्तिकी अवस्था में रहो । शास्त्रों में आरूढ सिद्धान्तों से बोध वृत्ति पैदा नहीं होती ॥७४॥

जो भी लोभ से जीवन के असली तत्व से विमुख होते है उन्हीं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मुत्युस्तु जीवने चक्रे पुरातनस्य हानये ।
किञ्च नव्यस्य संप्राप्तौ सहायको न संशयः ॥७७॥
केवलं विद्यते तात गतिरेव यथार्थतः ।
जीवनस्य न तत्रास्ति प्रगतिरिति ज्ञायताम् ॥७८॥
प्रयासो जीवने नैव विधेयत्वेन वर्तते ।
स्वतः स्फूर्ततया सर्वं जीवनं परिदृश्यताम् ॥७९॥
करुणायां विचारस्य न च्छाया किल विद्यते ।
किन्तु प्रकाशपुञ्जोऽयं सर्वेषामेव ज्ञायताम् ॥८०॥
न युस्माकं न वा मेऽस्ति परस्य नापरस्य च ।
सर्वेषामेव चैतन्यस्थितं रत्नं महत्तममम् ॥८१॥
आध्यात्मिके भौतिके च यदि भेदो विधीयते ।

के लिए रहस्यवाद, अवतारवाद आदि खडे रहते हैं ॥७५॥

जीवनका असली जो मार्ग है उस में भी मानसिक प्रदूषण भर जाता है । उसी से वे लोग बन्धन में पड जाते हैं । वे कभी उन बन्धनों से नहीं छूटते ॥७६॥

मृत्यु क्या है ? यह तो जीवन मार्ग में पुराने शरीरों को छुडाने और नयें प्राप्त करने के लिए ही आती है ॥७७॥

जीवन तो केवल गति ही है । उस में प्रगतिका कोई भी स्थान नहीं है ॥७८॥

जीवन तो प्रयास नहीं है । स्वतः स्फूर्त जो भी है वही जीवन है उसे देखना चाहिए ॥७९॥

महाकरुणा जो है उस में विचारों की छायातक नहीं है । किन्तु

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जगदायाति तत्रैव भेदो नात्र विधीयताम् ॥८२॥
नात्र ह्याध्यात्मिको भावो न भौतभावना क्वचित् ।
विधीयतां बोधजातमात्रमत्रावधार्यताम् ॥८३॥
किं वयं स्नेहसद्भावं स्थापयामश्च तान् प्रति ।
येऽपि भ्रातृव्यवद् नूनं व्यवहारेण सर्वदा ॥८४॥
पीडयन्ति तथा तेषां किमर्थं तादृशी स्थितिः ।
सञ्जाता मानसे सर्वं, प्रतिक्रिया न जन्यते ॥८५॥
अथवा मन्यते तात घृणाक्रोधादीनां सदा ।
घृणक्रोधादिदिभिर्लोके परिहारो विधीयते ॥८६॥
यदि तथा वयं कुर्मः तस्य किञ्च फलं लभेत् ।
सहस्रेभ्यो वत्सेरेभ्यो वयं लोके यथार्थतः ॥८७॥

यह करुणा तो प्रकाशपुञ्ज है सभीको यह जान लेना चाहिए ॥८०॥

उस महाकरुणा में तुम्हारे न मेरे न अन्य किसी के विचारों की छाया है किन्तु यह तो सभी में स्थित महाचैतन्य है, यह रत्न है इसे स्वीकार करो ॥८१॥

आध्यात्मिक और भौतिक यह जो भेद किया जाता है इस में संसार या मन आ जाता है इस में भेद न करो ॥८२॥

न कोई आध्यात्मिक भावना है न ही भौतिक भावना है । इस में केवल जागे रहो विभेदकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥८३॥

क्या हमलोग उन लोगों के प्रति भी स्नेह और सद्भाव रख सकते हैं जो हमें हमेशा शत्रुता के व्यवहार से पीडित करते हैं और उनकी वह स्थिति कैसे हुई है ? यह सब हमें मन में होता है या नहीं ? क्या

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रश्नानामुत्तरं नैव प्राप्नुयामो न संशयः ।
विभीषिका-पूर्णलोके शस्त्राणामिह विद्यते ॥८८॥
किं मानवैः सर्वलोकजीवनस्य तु नाशनम् ।
विधीयतेऽथवा लोकरक्षणं किल चिन्त्यते ॥८९॥
किं क्रियायोगमार्गेण मानवानां विचार्यताम् ।
किं योगमाध्यमेनैव हृदयपरिवर्तनम् ॥९०॥
मानवानां प्रजायेत शासकानां तथैव च ।
अन्यपन्था तु नैवात्र साम्प्रतं दृश्यते मया ॥९१॥
योगस्याश्रयतस्तेषां हृदयं परिवर्त्यताम् ।
तेनैव सर्वलोकस्य रक्षणं सम्प्रधार्यते ॥९२॥
क्रियायोगस्य शस्त्रेण रक्षणं च विधीयताम् ।

हमारे मन में कोई प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है ? अथवा क्या घृणा क्रोध भय आदिका नाश इन्हीं घृणा क्रोध और भय के द्वारा होता है ? यदि हम भी उनके प्रति शत्रुता का ही व्यवहार करते हैं तो उसका फल क्या होगा ? हजारों वर्षों से हम यही करते आ रहे हैं और इन प्रश्नों का कोई हल नहीं निकला ।

इस समय सारे संसार में शस्त्र और अस्त्रों की विभीषिका बनी हुई है । क्या मानव सारे संसारको नष्ट करने में तुला हुआ है अथवा उसकी रक्षा होगी ॥८४-८९॥

क्या इस योगमार्ग से अथवा क्रियायोग से सारे मानवोंका हृदय परिवर्तन नहीं हो सकता ? इससे अन्य मार्ग मैंने नहीं देखा जिससे शासक और मानवोंका हृदय परिवर्तन हो सके ॥९०-९१॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जीवनं किल शान्त्यैव स्थानमेवात्र लभ्यते ॥९३॥
आध्यात्मिकधार्मिकाणां मतवादैर्न दूष्यताम् ।
धूर्तविचारजालेषु पातनाय न जीवनम् ॥९४॥
लब्धं विचार्यतां तेन पवित्रं जीवनं मतम् ।
धर्मस्तु तेजसः तद्धि स्फुलिङ्गत्वेन राजते ॥९५॥
येन सत्यस्य मार्गस्य बोधो नूनं प्रजायते ।
कोऽयं धर्मो जीवनं च किमस्तीति प्रचिन्तने ॥९६॥
ऊर्जाया जायते नाशो जीवनं च विनश्यति ।
तस्माद् धर्मस्य नाम्ना हि मतवादेषु कुत्रचित् ॥९७॥
स्वात्मानं पातयेन्नैव चैतन्ये स्थीयतां सदा ।
अध्यात्मपथि नैवात्र कश्चिल्लाभो विधीयते ॥९८॥

योग के आश्रय से सभी शासकों और सत्ताधारी तथा मानवों के हृदयका परिवर्तन करना चाहिए। इसी से सारे संसारकी रक्षा की जा सकती है ॥९२॥

क्रियायोगरूपी खड्ग से संसार की रक्षा करनी चाहिए। जीवन तो केवल शान्ति से ही संभव है ॥९३॥

आध्यात्मिक-धार्मिक मतों के जंजाल में मत फँसो। धूर्तों के विचार जालों में फंसने और फँसाने के लिए जीवन नहीं है ॥९४॥

विचार करो, जीवन अत्यन्त पवित्र है, ऐसा ही तुम्हे उपलब्ध भी है। धर्म उसी जीवनकी तेजस्विता पूर्ण विस्फुलिङ्ग है ॥९५॥

उसी तेजस्विता पूर्ण जीवन से ही सत्यमार्गका ज्ञान प्राप्त होता है। धर्म क्या है ? जीवन क्या है ? इस चिन्तन के चक्कर में जीवन

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सुखस्य शासनस्यापि प्राप्तिर्नैवात्र चिन्त्यताम् ।
किन्तु प्रान्ते विचारणां जालान् मुक्तिरिहोच्यते ॥९९॥
सुखदु:खेभ्यो जागर्तिरिह सर्वैर्विधीयताम् ।
जीवनं परमं रम्यं स्वतन्त्रमिह विद्यते ॥१००॥
जीवनस्य तु संगीतं नदीनामिव ज्ञायताम् ।
यथा नद्यः समायान्ति समुद्रं परमात्मनि ॥१०१॥
तथा जीवस्य संदृष्टा गतिरित्यवधार्यताम् ।
सर्वदा चेतने तत्त्वे बोधे वास्थितिरुच्यते ॥१०२॥
नदीवच्चिन्त्यतां स्वीयं जीवनं नात्र भ्रम्यताम् ।
लक्ष्यं निर्लक्ष्यतां गच्छेत् जीवनं बन्धनं न हि ॥१०३॥
धर्मो न बोधतो भिन्नो जीवनं तद्धि प्रोच्यते ।

ऊर्जाका नाश होता है। जीवन भी विनष्ट हो जाता है। इसी लिए धर्म के नाम में मतवादों में अपने आपको नहीं गिराना चाहिए। हमेशा चैतन्य अवस्था, चेतना में ही रहो। इस क्रिया मार्ग में कोई लाभहानि नहीं है। सुख और शासन की भी कोई प्राप्ति इस में नहीं है। किन्तु इससे अन्तिम में विचारों के जाल से मुक्ति मिलती है ॥९६-९९॥

सुख और दु:खों से सभीको जागना चाहिए। जीवन अत्यन्त र रमणीय और तभी पवित्र होगा। जीवनका संगीत नदीयों के तरह ही है। जैसे नदियाँ समुद्रकी ओर जाती है उसी प्रकार जीवन भी परमात्माकी ओर ही जाता है। हमेशा चेतन तत्व में अथवा बोध में स्थिति ही परमात्मा की ओर गति कहा गया है। नदी के तरह ही

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

गुरोः कृपाबलेनैव क्रियायोगस्य मार्गतः ।
चैतन्यं लभ्यतां सवै भ्रमो न मार्गबोधने ॥१०४॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे द्वात्रिंशदध्यायः ॥

अपने जीवनको जानो। यहाँ भ्रमित होनेका कोई भी कारण नहीं है। तुम्हारा लक्ष्य लक्ष्य रहित हो, जीवन बन्धन न हो। धर्म बोध या प्रज्ञा से भिन्न नहीं है। उसे ही जीवन कहा गया है। गुरुके कृपा के बलसे क्रियायोग के अभ्यासद्वारा सभी लोगों को चैतन्य मिले। मार्ग के बोध के विषय में अब कोई भी भ्रम नहीं होना चाहिए ॥१००-१०४॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लाहिडिक्रियायोगसंहितायां

तृतीयपरिच्छेदः

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

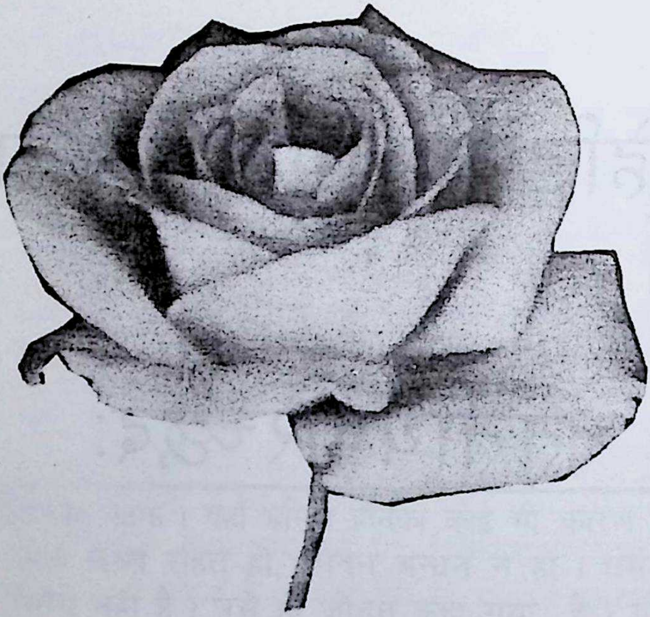

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ त्रयस्त्रिंशदध्याय:

क्रियायोगस्य ह्यभ्यासाद् रूपान्तरणमिष्यते ।
रसायनगतं सर्वं विकासयति तत्त्वत: ॥१॥
जीवनं पूर्णतां याति समन्वितं शनैः स्वत: ।
चित्तवृत्तिनिरोधेन बहिर्गता मतिर्यत: ॥२॥
अन्तर्मुखं समायाति तत्पूर्णत्वसमन्वितम् ।
अन्त:स्थितायाः सत्ताया विज्ञानमेष ज्ञायताम् ॥३॥
यत्र विश्वासबोधस्य मिथ्यात्वं नावधार्यते ।
नास्ति धर्मान्धता यस्य नृशंसता च नैष्ठुरम् ॥४॥

अध्याय-३३

क्रियायोग के निरन्तर किए जाने वाले अभ्यासद्वारा व्यक्तिका आंन्तरिक रूपान्तरण होता है । साथ ही रासायनिक परिवर्तन भी पूर्णरूपसे व्यक्तिका होना निश्चित है ॥१॥

जीवन समन्वित होते हुए पूर्णता की ओर बढता है । स्वत: ही चित्तवृत्तियों के निरोध से बाहर जाने वाली बुद्धि वृत्ति अन्तर्मुखी होती है साथ ही वह समन्वित और पूर्ण होती है । इसी लिए इसे आन्तरिक सत्ताका विज्ञान कहा गया है ॥२-३॥

इस योग पद्धति में विश्वास करनेकी मिथ्या आडम्बर की कोई आवश्यकता नहीं है । धर्मान्धता भी यहाँ नहीं है । नृशंसता, निष्ठुरता, दौष्ठुल्य, कुकृत्य आदि इस योगधर्म में कोई मायने नहीं रखते है । क्यों कि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दौष्ठुल्यं किल कौकृत्यं नास्ति यत्र यथार्थतः ।
वक्षस्थलेषु सर्वेषां हृदयं स्पन्दते किल ॥५॥
न भेदो दृश्यते तावत् मानवेषु कथञ्चन ।
धर्मशास्त्रीयवादेषु मानवः खलु हिंस्यते ॥६॥
मिथ्या वादेषु वै मिथ्याग्रहेषु घोरकर्मसु ।
विश्वासानां बन्धनेषु पतितत्वान्न संशयः ॥७॥
येऽपि भ्रान्ता वञ्चकानां जालेषु पतिताः पुनः ।
पारयन्ति न ते साक्षात्कर्तुं वस्तुगतां स्थितिम् ॥८॥
यथार्थस्त्ववबोधस्य चाभावाद्धि पलायते ।
जनसमूहस्तेनैव बध्यते लोकधर्मसु ॥९॥

सभीलोगों के हृदयों में तो वही रक्त वह रहा है । वक्षस्थलों में वही हृदय धडक रहा है ॥४-५॥

मनुष्यों के बीच में कोई भी भेद दृष्टि गोचर नहीं होता । धर्मशास्त्रों के कारण सारा मनुष्य मिथ्या वादों, सिद्धान्तो, मिथ्या कर्मों एवं भयङ्कर कार्यों में लगा ही रहता है, इन्हीं बन्धनों से मानव सदा हिंसित होता ही रहता है ॥६-७॥

जो भी मनुष्य भ्रम में हैं और ठगों के इन कथित जालों में फंस गए हैं वे वास्तविक तत्वों को नहीं समझ सकते ॥८॥

यथार्थ वास्तविक स्थितिका बोध न होने के कारण ही वे इधर उधर भागते ही रहते हैं और लौकिक मूर्खतापूर्ण कृत्यों में फँस ही

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

समग्रबोधवेलायां जीवनं रमणीयकम् ।
विविधैर्धर्मविश्वासैः छद्मादर्शगताशुभैः ॥१०॥
हिंसायाः संस्कृतिर्नूनं लोकानां मनःसु सदा ।
स्थापिता तेन दृश्यन्ते प्रत्यहं जनता यतः ॥११॥
सर्वविधसमस्याभिर्हीनं जीवनमुच्यते ।
तेन विस्मयपूर्णं तद् रमणीयं न संशयः ॥१२॥
चित्तवृत्तिभिरेवात्र जीवनस्य प्रवाहके ।
समस्या सृज्यते तस्मात् स्थायिन्यो वृत्तयो मताः ॥१३॥
आभ्यन्तरस्य सत्यस्य विज्ञानं योग उच्यते ।
बोधपूर्वकमेवास्य ह्यभ्यासस्तु विधीयताम् ॥१४॥

जाते है ॥९॥

विविध कथित धर्मों के विश्वासों में, छद्म, झूठे आदर्शों में फँसने के कारण ये लोग समग्रबोध में जो परम आनन्द है उससे वञ्चित ही रहते हैं । इन्हीं छद्मादर्शों के कारण मानव निरन्तर हिंसाका शिकार हो रहा है । हिंसा की संस्कृति भी इसी से आयी है । जीवन तो वस्तुतः सभी समस्याओं से रहित ही है । उसे ही जीवन कहना चाहिए, इसी लिए जीवन विष्मयपूर्ण, अत्यन्त रमणीय है ॥१०-१२॥

चित्तवृत्तियों के कारण ही इस जीवन के रमणीय प्रवाह में विविध समस्यायें खडी की जाती हैं और वृत्तियाँ स्थायी होकर यहाँ रहती हैं ॥१३॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तदा पीडाः समाप्यन्ते यन्त्रणा दुःखदुःखताः ।
नश्यन्ति किल स्वाध्यायं विना क्रिया फलेत् कथम् ॥१५॥
स्वाध्यायस्य बलेनैव क्रियाभ्यासस्य सर्वदा ।
निर्मनीभावगम्यत्वं स्थितप्रज्ञत्वमेव वा ॥१६॥
स्वाभावाद् उदीयात्तात ज्ञानं तदेव कल्प्यते ।
अमृत्योर्भावमास्थाय तदनुशासनं परम् ॥१७॥
तेनैव बोधजातस्य चानन्दः परमाद्भूतः ।
मङ्गलमय इत्येव क्रिया सेव्या नु श्रद्धया ॥१८॥
अर्पणस्य पावनं तद् अन्धकारस्य नाशकः ।
द्रवीभूतस्य वै सर्वहृदयस्य तु साहसात् ॥१९॥

आन्तरिक सत्य के बोधका विज्ञान ही क्रियायोग है । इसीलिए बोधपूर्वक इसका निरन्तर अभ्यास करना चाहिए ॥१४॥

तभी वे समग्र पीडायें, दुःख, दुःखोंका दुःख वे सभी यन्त्रणायें समाप्त हो जाती हैं । किन्तु स्वाध्याय अर्थात् बोध पूर्वक अभ्यास के विना यह क्रिया भी कैसे फलवती हो सकती है ? १५॥

स्वाध्यायपूर्वक क्रियायोग के अभ्यासद्वारा निर्मनीभाव की स्थिति और स्थित प्रज्ञताकी अवस्था स्वाभाविक रूप से ज्ञान का उदय होगा उसी से अमृत अवस्था की प्राप्ती होगी । यही परम अनुशासन है । उसी से बोधका परम आनन्द, जो अत्यन्त अद्भूत है साथ ही मङ्गलमय है । अत एव श्रद्धापूर्वक इस क्रिया योगकी साधना करनी चाहिए" ॥१६-१८॥ वही परम अर्पण है, अन्धकारका नाशक प्रकाश है ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्थितिरेव क्रियायोगः शून्यता यत्र विद्यते
पूर्णत्वमपि तत्रैव येऽपि सर्वस्य वस्तुतः ॥२०॥
अर्पणं किल कुर्वन्ति पतति चेत् पतेत् स्वकम् ।
शरीरं प्राप्नुवन्त्येव क्रियायोगस्थितिं बुधाः ॥२१॥
वास्तवं जीवनं प्रोक्तं यत्र गङ्गा क्रियात्मिका ।
स्वाध्यायसुरभियुक्ता तद् रम्यं सेव्यतां बुधैः ॥२२॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे त्रयस्त्रिंशदध्यायः ॥

वही हृदयका पूर्ण द्रव है, जिस साहसद्वारा ही क्रियायोग में स्थिति संभव होती है । जहाँ पूर्ण शून्यता अवस्थित है । पूर्णता भी वहीं अवस्थित है । चाहे, भले ही उस पूर्ण समर्पण में शरीर गिरता हो तो गिरे । किन्तु उस अवस्था में ही वह परम बोध उपलब्ध होगा ।

वास्तविक जीवन तो वही है जहाँ क्रियारूपी गङ्गा में डुबकी लगती है। और वह गङ्गा भी स्वाध्याय के सुगन्ध से सुगन्धित होती है। इसी की सेवा सभी समझदार लोगों को करना चाहिए ॥१८-२२॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ चतुस्त्रिंशदध्यायः

लाहिडि-श्रुतिः

न शिवेन्दुसदृक् लोके क्रियायोगस्य विद्यते ।
प्रामाणिको लोकगुरुर्लाहिडिनां प्रपौत्रकः ॥१॥
सन्ति केचन पाताले योरोपे योगवाचकाः ।
भ्रान्ताः किञ्च वञ्चकास्ते लोकाराधनतत्पराः ॥२॥
मलिनीक्रियते तैस्तु क्रियाभागीरथिर्यतः ।
सावधानतया सर्वैः स्थातव्यं क्रयविक्रयात् ॥३॥
विवेकिनो न वै कश्चिदधिकार इहोच्यते ।
स्वाधिकारतया येऽपि प्रभुत्वं दर्शयन्तीह ॥४॥

अध्याय-३४
श्री लाहिडि-श्रुतिः

श्री शिवेन्दु लाहिडी जैसे, क्रियायोग के वंश परम्परा के प्रामाणिक गुरु इस समय कोई नहीं है। वे तो साक्षात् श्री लाहिडीमहाशय के प्रपौत्र है ॥१॥

कुछ अमेरिकामें कुछ योरोप या भारत में योग के अनेक प्रचारक दिखाई अवश्य ही देते हैं। वे सब भ्रान्त, ठग, लौकिक धनसम्पत्ति के लिए निरन्तर लगे हुए, वे सब इस क्रिया योगरूपी गङ्गाको दूषितकर रहे हैं। इन खरीददारों से सभीको सावधान होकर रहना चाहिए ॥२-३॥

विवेकशील एवं प्रामाणिक लोग अधिकार की कोई वात नहीं करते, जो अधिकार जताते हैं वे सब अप्रामाणिक हैं एवं विवेकशाली भी नहीं हैं। संगठनों के द्वारा संसार में प्रभुत्व तो स्थापित किया जा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

न ते नूनं ज्ञानवन्तो न वा विवेकशालिनः ।
नूनं संघटनाल्लोके प्रभुत्वं किल ख्याप्यते ॥५॥
प्रमाणत्वं भवेन्नष्टं शीघ्रमेव यथार्थतः ।
जनान् संघटितान् कृत्वा निर्मीयेत समूहकम् ॥६॥
तेन विशुद्धसत्यस्य स्पर्शोऽपि नैव जायते ।
गहने परमेऽध्यात्मपथे न पन्थवादिता ॥७॥
सम्प्रदाय-धर्मवादौ स्थानं न प्राप्नुतः क्वचित् ।
जागर्तिजनिता यत्र सततं गतिशीलता ॥८॥
क्रिया सा योगशब्दस्तु समन्वयपरो मतः ।
चक्राणि किल वै यानि मनसा निर्मितानि च ॥९॥

सकता है किन्तु उसके साथ ही उस बोध के प्रति जो भी रहस्यमयता है उससे हाथ धोना पडता है । इसी प्रकार प्रामाणिकता भी उसमें नष्ट हो जाती है । लोगों को संगठित करके अनेक समूह निर्मित किए जाते हैं किन्तु उससे उस सत्यका स्पर्श भी संभव नहीं होता । क्यों कि गहन धार्मिकता में कोई पन्थ सम्प्रदाय आदि नहीं होते । उसमें कोई भी लोकधर्म नहीं रहता । उसमें तो जागृति से उन्पन्न निरन्तर गतिशीलता ही रहती है ॥४-८॥

यह योग, जिसे क्रिया कहा जा रहा है यह समन्वयात्मक है । उनके पूर्ण कुचक्रों से यह मुक्ति दिलाता है । उस मनके चक्रों से मुक्ति को ही यहाँ जागरण कहा गया है। चित्तवृत्ति में जो विभेदकारिता है उसीसे यह समग्र कर्मकाण्ड खडा हुआ है । उसी से मन भ्रमित

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ततो निवृत्तिरेवात्र जागर्तिरिति बोध्यते ।
विभेदकारिता यत्र चित्तवृत्तौ विलोक्यते ॥१०॥
तत उदेति वै कर्मकाण्डं भ्रमति मानसम् ।
यत्र निवृत्तिरित्येव क्रियायोगरहस्यता ॥११॥
अहङ्कारस्य यत्केन्द्रं सत्यान्वेषिक्रियावतः ।
सूक्ष्म-विशिष्टरूपेण ह्यद्वितीयतया स्वयम् ॥१२॥
सार्वभौमत्वमापन्नं रूपान्तरयति ततः ।
अहङ्कृतिकेन्द्रगतकृत्यान् अज्ञानसंभवान् ॥१३॥
भेदनाज्जीवनं पूर्णसमन्वये च स्थापयेत् ।
हठराजौ लयश्चापि पूञ्जीभूताः क्रियात्मके ॥१४॥

होता है । उससे निवृत्ति ही क्रियायोग का कार्य है ॥९-११॥

अहङ्कारका जो केन्द्र है, सत्यान्वेषी क्रियायोगीका सूक्ष्मरूप से वैशिष्ट्य पूर्वक अद्वितीय तथा सार्वभौम सत्य के रूप में रूपान्तरित होता है । अज्ञानद्वारा उत्पन्न अहङ्कार के केन्द्र में अवस्थित सभी कृत्यों को भेदन करने के कारण जीवनपूर्ण समन्वित हो जाता है । इस क्रिया योग में हठ योग, राजयोग, और लय योग तीनों भी सम्मिलित हैं, अपने स्वरूप में अविस्थापित करने के लिए यह योग अपने आप में सक्षम है । सत्यान्वेषी क्रियायोगी अपने शरीर स्थित चक्रों और ग्रन्थियों से सञ्चालित होता है । उस में चित्तवृत्तियों का कोई भी प्रवेश अथवा पकड नहीं होता है ॥१२-१६॥

इसी मन के कारण शरीर दुःखो में कभी भी नहीं फँसता है ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्वरूपावस्थितिं कर्तुं प्रभुर्योगो न संशयः ।
सत्यान्वेषिक्रियावन्तः शरीरस्थितचक्रकैः ॥१५॥
सञ्चाल्यन्ते न मनसा ग्रन्थिभिश्चापि ज्ञायताम् ।
चित्तवृत्तिर्न वै तत्र छिद्रान्वेषित्वमाप्नुयात् ॥१६॥
येन मनःकायगतदुःस्वप्नं नैव सृज्यते ।
तुच्छकथासु ह्यथवा पङ्गुलोभभ्रमेषु च ॥१७॥
न पात्यन्ते क्रियावन्तः चमत्कारप्रदर्शनात् ।
कथासु ह्यनुमानेषु लोभजनककर्मसु ॥१८॥
संलग्नाः किल ताः संस्था न सत्यमार्गदर्शिकाः ।
विभाजनं विना ज्ञातृ-ज्ञेययोरैक्यबोधनात् ॥१९॥
लयत्वं निर्गतं भूयात् तदर्थं योग उच्यते ।

तुच्छ कथाओं, अपाङ्ग आश्वासनों और लोभ में भी क्रियायोगी फँसता नहीं है। साथ ही चमत्कारों के चक्कर में और लोग लगे हैं वे सत्य के मार्गदर्शक नहीं हैं। ज्ञातृज्ञान के ऐक्यबोध में विना किसी विभाजन के जब पदार्थ गृहीत होते हैं उसी से लय योगका आविर्भाव होता है। उसी के लिए योग है। मनोगत रोगों से, दुःख से, पीडा से आहत लोगों का क्रियायोग उद्धारक है। सभी लोगोंका जीवन शान्त, सौहार्दपूर्ण, समग्र दुःखों से रहित हो ऐसा श्री गुरु श्री शिवेन्दलाहिडीमहाशयकी कामना है। जीवन में शत्रुता न हो, अन्धविश्वास रहित हों, दानवी संस्कृति पूर्ण मूलोच्छेद सहित हट जाय यही उनकी कामना है। किसी की ध्वजा, पुस्तक, सम्प्रदाय,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दुःखेन पीडया किञ्च मनोगतरुजा क्वचित् ॥२०॥
पीडितानां समुद्धारः क्रियायोगात् प्रजायते ।
शान्तं सौहार्दसम्पन्नं सर्वदुःखविनिर्गतम् ॥२१॥
सर्वेषां जीवनं भूयात् गुरुभिः काम्यते तथा ।
शत्रुत्वं नैव संभूयाद् अन्धविश्वासहीनता ॥२२॥
दानवीसंस्कृतिः पूर्णमूलोच्छेदेन नश्यताम् ।
न ध्वजदर्शनं तावन्न संस्था न च पुस्तकम् ॥२३॥
न मतं सम्प्रदायो वा भवेल्लोकविभाजकः ।
ज्ञानवन्तो भवेयुस्ता जनताः सार्वभौमकाः ॥२४॥
पीडया रहिताः किञ्च आनन्दबोधजातकाः ।
क्रियायोगाद् भवेत् सर्वं नात्र कार्या विचारणा ॥२५॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे चतुस्त्रिंशदध्यायः ॥

संस्था, मत आदि लोक विभाजक न बनें, सभी जनता ज्ञानी हो जाय, सार्वभौम हों, समग्र पीडा से रहित हों, आनन्द में मग्न हों यही उनकी कामना है। क्रिया योग के बोधपूर्वक सतत अभ्यासद्वारा यह सब संभव होगा इस में सन्देह नहीं है ॥१७-२५॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

श्री शिवेन्दु लाहिड़ी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ पञ्चत्रिंशदध्याय:

श्रीमद्भगवद्गीतायाः श्लोकानां विवृतिः स्वयम् ।
श्रीशिवेन्दुर्महाभागो यथावदकरोत् पुरा ॥१॥
नवद्विगुणिताः श्लोका द्वितीयाध्यायसंगताः ।
स्थितप्रज्ञप्रबोधाय कृता व्याख्या विलोक्यताम् ॥२॥
अहंभावस्य यत्केन्द्रं तत्राघातो विधीयते ।
चित्तवृत्तेर्विभेदत्वं नश्यत्येव हि पूर्णतः ॥३॥
विचारस्य तु या सत्ता सोच्छेद्येत यथार्थतः ।
नव्यं जागरणं तावद् रूपान्तरणमित्यपि ॥४॥
अन्तर्दृष्टिर्भवेत्तस्मात् पीडा मनोव्यथापि च ।
उत्तेजना दर्पक्षोभौ मात्सर्यञ्चाथ कामनाः ॥५॥
आशङ्का वासनाश्चापि विकृत्या भ्रमतस्तथा ।

अध्याय-३५

यह सबसे महत्वपूर्ण पंक्ति जो गीता-सार में दो बार आयी है, बताती है कि इन्द्रियों (सवेदी प्रत्यक्षों) को स्वाभाविक रूप में उसी उद्देश्य के लिए कार्य करना चाहिए जिसके लिए वे अभिप्रेत हैं । गतानुगतिक एवम् पारम्परिक विचार धारायें इन्द्रियों के स्वाभाविक कार्य क्षेत्र में कुछ ऐसा हस्तक्षेप करती हैं जो कि सूक्ष्म अनुभूतियों को स्थूल कामना, वासना में परिवर्तित कर देती हैं। चित्तवृत्ति अनुभूतिको

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पूर्णमुक्तिर्भवेत्तात विचारहानतः स्वतः ॥६॥
विचारस्य महाजालात् पूर्णमुक्तित्वमाप्नुयात् ।
जागर्तिरिव सर्वस्य क्रियाशीलतया स्थिता ॥७॥
स्वात्मबोधे स्थितिः तस्माद् उद्दीपनं यथार्थतः ।
चैतन्यस्य तथा भूयाद् अनुक्रिया लयात्मिका ॥८॥
क्रियायां दीक्षिता व्यक्तिः क्रियावान् उच्यते तथा ।
क्रियावती किञ्च क्रियान्वित इत्यपि ज्ञायते ॥९॥
न वञ्च्यते क्वचिदेष न परान् वञ्चयत्यसौ ।
केवलं सततं भूयाद् एव जागर्तितत्परः ॥१०॥
अहङ्केन्द्रस्य यत्सर्वं लौकिकं कृत्यनिर्गतम् ।
तत्र जागर्ति वै चैष तेन ह्येष क्रियान्वितः ॥११॥

प्रीतिकर व अप्रीतिकर में वर्गीकृत करती है और इस प्रकार आसक्ति-मोह का भव-चक्र आरम्भ हो जाता है। तत्पश्चात् चित्तवृत्ति में उस लालसा का दौर शुरु हो जाता है जिसके कारण प्रीतिकरण की पुनरावृत्ति एवम् अप्रीतिकर की सम्पूर्ण निवृत्ति का दुराग्रह उत्पन्न हो जाता है। यही है अन्तिम मोहासक्ति तथा जीवन प्रवाह में विभीषिका एवम् विध्वंस की शुरुआत ।

यह महत्वपूर्ण वाक्य इंगित करता है कि सूक्ष्म तथा प्रत्यक्ष अनुभूति तो ठीक है किन्तु आसक्ति-मोह ही हमारे दुःख एवं दुःखभोगका मूल कारण है। अतः जब तक प्रत्यक्ष अनुभूति मोहासक्ति से प्रदूषित

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इन्द्रियाणि च वै तानि स्वकृत्यनिरतान्यहो ।
भवेयुर्नैव लोभाद् वा स्वभावतो न संशयः ॥१२॥
यदुद्देश्यं स्थिरीकृत्य यस्य चेन्द्रियवस्तुनः ।
निर्मितिरभवत् पूर्वं तदर्थमेव ज्ञायताम् ॥१३॥
लोभात् पैशुन्यभावेन मात्सर्याद् अथ दम्भतः ।
कामात् क्रोधाच्च वै तेषां प्रवृत्तिर्नैव जायताम् ॥१४॥
गतानुगतिकाः कृत्या विचाराश्चापि सर्वदा ।
स्वाभाविकेषु कृत्येषु ह्यवरोधविधायिकाः ॥१५॥
तैर्विचारैः सूक्ष्मगता ह्यनुभूतिस्तु नश्यति ।
वासनाजन्यकार्येषु परिवर्तनताङ्गता ॥१६॥
चित्तवृत्तिस्तथा चानुभूतिः प्रीतियुतेऽथवा ।

नहीं होती है, हमारी प्रज्ञा प्रतिष्ठित रहती है ।

इसी प्रकार जब तक पाँचों इन्दियाँ चित्तवृत्ति के हस्तक्षेप के विना स्वाभाविक अवस्था में कार्यरत रहती हैं तब तक किसी भी प्रकार कोई समस्या उत्पन्न नहीं हो सकती है ।

श्लोक ५५

जब मोहासक्ति पूरी तरह से मिट जाती है और जैसे ही चित्तवृत्ति इन्द्रियों की प्रत्यक्ष अनुभूति में मध्यस्थता करना पूर्णरूप से बंद कर देती है तब मन में कर्ता एवं क्रियाका विभेद समाप्त हो जाता है, अर्थात् "निर्मम" "निरात्म" अथवा "निर्मना" अवस्था के उदय के साथ "मम" एवं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अप्रीतिकृतवस्त्वात्मबोधं जनयति स्वतः ॥१७॥
इत्थमासक्तिमोहस्य भवचक्रस्तु जन्यते ।
लालसा जायते तस्मात् प्रीतिं प्राप्तुं सदा तथा ॥१८॥
अप्रीतिं सर्वदा हातुं यत्नः प्रारभते यतः ।
इयं मोहस्य संसक्तिर्यया जीवनबोधने ॥१९॥
विभीषिका सदायत्ता विध्वंसात्मिकया स्थिता ।
प्रत्यक्षमथ वै सूक्ष्ममनुभूतिः स्वीक्रियताम् ॥२०॥
आसक्तिमोहसञ्जातौ दुःखस्य मूलकारणम् ।
प्रत्यक्षानुभूतिर्मोहासक्त्या यावन्न दूष्यते ॥२१॥
प्रज्ञा प्रतिष्ठिता तावत् स्वात्मनि नात्र संशयः ।
चित्तवृत्तेस्तु संसक्तिं विना चेन्द्रियपञ्चकम् ॥२२॥

"ममत्व" का विलय हो जाता है। यही है पूर्ण समत्व में प्रतिष्ठा ।

श्लोक ५६

इस साम्यावस्था में तुम विरोधों के गलियारे से बाहर आ जाते हो । तब तो न सुख तुम्हारा न दुःख, न तो अनुरक्ति तुम्हारी न अरुचि; न भय तुम्हारा न निर्भीकता; न कायरता तुम्हारी न साहस; न क्रोत्र तुम्हारा न सौम्यता; न विजय तुम्हारी और न पराजय ।

श्लोक ५७

स्थित-प्रज्ञावस्था में न तो शुभ तुम्हारा न अशुभ; न सम्मान तुम्हारा न अपमान ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यदापि कुरुते कर्म न दोषस्तत्र विद्यते ।
तदर्थं यत्यतां सर्वैर्गीतायां यद्धि प्रोच्यते ॥२३॥
श्लोकः ५५
यदा नश्यति वै मोहः पूर्णत्वेन यथार्थतः ।
इन्द्रियबोधजातेषु चित्तवृत्तेरभावता ॥२४॥
तदैव जायते किञ्च मनसि कर्तृकर्मणोः ।
विभेदस्तु समाप्येत निर्ममत्वं निरात्मता ॥२५॥
अथवा निर्मनीभूय ममत्वं च विलीयते ।
एषावस्था समत्वस्य प्रतिष्ठा मन्यते बुधैः ॥२६॥
श्लोकः ५६
साम्यावस्थागतं चित्तं विरोधिनां समूहतः ।

श्लोक ५८

विकल्परहित सचेतनता में इन्द्रियाँ वस्तुतः उसी रूप में कार्य करती हैं जिसके लिए वे अभिप्रेत हैं अन्यथा ये सभी पंचेन्द्रियाँ कछुवे के अंगों की तरह सिमटी (तथापि सतर्क) रहती हैं और इस प्रकार आसक्ति मोह का परिहार हो जाता है ।

श्लोक ५९

जब आसक्ति इस प्रकार अपोषित रह जाती है तब इन्द्रियों के आभ्यंतर प्रत्यक्ष बोध उस परम् पवित्रका उन्मोचन होता है जो कि अहम् भाव के विलय से ही संभव होता है ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

निर्गतिर्जायते नूनं तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥२७॥
न सुखं न दु:खं किञ्चिन् नानुरक्तिर्विरागता ।
न भयं नाभयं किञ्च न क्रोधो नैव सौम्यता ॥२८॥
न साहसो न वा हीनदशा नैव पराजयः ।
न वा जयस्तु साम्येन स्थितिरित्यवगम्यते ॥२९॥
५७
स्थितप्रज्ञां गतस्त्वेष न शुभं गृह्णीते क्वचित् ।
नाशुभं न च सम्मानं नापमानमिति स्थितिः ॥३०॥
५८
निर्विकल्पे तु चैतन्ये चेन्द्रियाणि स्वभावतः ।
स्वीयकृत्यानि कुर्वन्ति कुर्माङ्गवद् विघातके ॥३१॥

श्लोक ६०

एक स्थिर बुद्धि व्यक्ति समत्वभाव में प्रतिबद्ध होने के बावजूद भी मन की विषयासक्ति (इन्द्रियों के विक्षेप) द्वारा अभिभूत कर लिया जाता है।

श्लोक ६१

जब चित्तवृत्ति के समस्त बंधनों का नियमन हो जाता है और सभी अव्यवस्थाएँ पूरी तरह से समाप्त हो जाती हैं, संतुलित एवं "निर्मना" (कृष्ण) स्थिति प्राप्त होती है। जब इन्द्रियाँ व्यवस्थित होती हैं अर्थात् वासनाओं से दूषित न होकर पूर्ण स्वरूप में कार्य करती हैं तव प्रज्ञा/सचेतनता प्रतिष्ठित होती है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

चेतनाहीनभावस्तु तदानीं नैव ज्ञायताम् ।
इत्थमासक्तिमोहाभ्यामेषां वृत्तिर्न युज्यते ॥३३॥
एवं मोहपरिहारो जायते नात्र संशयः ॥३२॥
५९
आसक्तिर्लभते नैव स्वीयभोज्यं यदा तदा ।
इन्द्रियबोधतो रम्यं पवित्रं वस्तु जन्यते ॥३४॥
अहंभावस्य विलयाद् यस्य प्राप्तिर्निगद्यते ।
तदर्थं भगवान् प्राह गीतायां नात्र संशयः ॥३५॥
६०
समत्वे संस्थितोऽप्येष स्थिरबुद्धिः क्रियान्वितः ।
मनोविक्षेपतो भूयश्चासक्तौ पततित क्वचित् ॥३६॥

श्लोक ६२

.संसर्ग से विषय के प्रति मोह/छवि/कामना उत्पन्न होती है और तव लालसा पैदा होती है तथा इसके उपरान्त निश्चय ही नैराश्य एवं क्रोध की उत्पत्ति होती है ।

श्लोक ६३

क्रोध से सम्मोह (मूढ भाव/अविचार) का आवरण होता है तथा वहाँ से प्रत्यक्ष बोध विक्षिप्त हो जाता है और तव व्यक्ति प्रज्ञा से वियुक्त हो जाता है तदुपरान्त निश्चय ही उसका महती कृपा से अधःपतन हो जाता है ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तस्मादिन्द्रियविक्षेपक्राद् विषयसक्तितः ।
अभिभवो भवेत्तेन सावधानेन स्थीयताम् ॥३७॥
६१
यदा बन्धननिर्मुक्तिश्चित्तवृत्तेः प्रजायते ।
अव्यवस्थाश्च नश्यन्ति निर्मनीभावबोधता ॥३८॥
कृष्णस्थितिः प्रजायेत निर्विचारो निरात्मकः ।
वासनाहीनता यत्र चेन्द्रियाणां तु जन्यते ॥३९॥
पूर्णस्वरूपसंस्थित्या प्रज्ञा तत्र प्रतिष्ठते ।
६२
विषययोगतो मोहः कामना च उदीयते ॥४०॥
मोहात्तु लालसा तात नैराश्यं किल जन्यते !
ततः क्रोधस्य चोत्पत्तिर्भवत्येव न संशयः ॥४१॥

श्लोक ६४

सहजावस्था में रहना अर्थात् विभेदकारी स्थूल अहम् केन्द्र जो कि अव्यवस्था है से परे रहना-मुक्ति की स्थिति है न कि बंधन की। यह है वह सूक्ष्म अद्वितीय जो कि पूर्ण व्यवस्था है। इस प्रकार की स्थिति में व्यक्ति एक मंगलमय अवस्था में प्रवेशकर जाता है और यह केवल तभी संभव है जब इन्द्रियाँ विषयों के साथ संसर्ग के समय पूर्ण समत्व में कार्य करती हैं। केवल बुद्धि की साम्यावस्था में ही इन्द्रियाँ सहजावस्था में कार्य करती हैं और आसक्ति में उनके परिवर्तन एवं फलस्वरूप लालसा(जो कि दुखका मूल कारण है) से बचा जा सकता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

६३

क्रोधात् सम्मूढतायास्तु ह्यावरणं विजानीहि ।
प्रत्यक्षबोधनाशोऽपि प्रज्ञावियुक्तिरित्यपि ।
ततोऽधपतनं नूनं महत्याः कृपाया भवेत् ॥४३॥

६४

सहजावस्थितिर्नूनं मुक्तिरित्यभिधीयते ।
अद्वितीया हि सम्प्रोक्ता सूक्ष्मा पूर्णव्यवस्थितिः ॥४३॥
मङ्गलमयता यत्र चावस्थेत्यवधार्यताम् ।
तदैव जन्यते बोधो यदेन्द्रियाणि सर्वतः ॥४४॥
विषयेषु च पृक्तेषु पूर्णसमत्वरूपताम् ।
यान्ति किञ्च मतिरपि साम्यावस्था गता तदा ॥४५॥

श्लोक ६५

शुद्ध प्रत्यक्ष बोध की मंगलमय अवस्था में सम्पूर्ण दुःखों की परि समाप्ति हो जाती है और प्रज्ञा की प्रमुदित एवम् आनन्दमय अवस्था की संगति के साथ व्यक्ति निश्चित रूप से पूर्णता में स्थित हो जाता है।

श्लोक ६६

शान्ति उसे प्राप्त नहीं हो सकती है जो प्रज्ञा एवं सचेतनता से संयुक्त नहीं है और शांति का अभाव आनन्द के अभाव को ईंगित करता है अर्थात् जीवन की सम्पूर्णता के साथ सामंजस्य का अभाव।

श्लोक ६७

मन जो कि मोहासक्ति के पकड में है उसकी प्रज्ञा लुप्त हो जाती

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तदासक्तिभिर्निर्लेपः सहजावस्थितिर्यतः ।
लालसाजन्यदुःखेभ्यो मुक्तिरित्यभिधीयते ॥४६॥

६५

शुद्धप्रत्यक्षबोधस्य ह्यवस्थायां न संशयः ।
समग्रदुःखस्कन्धस्य समाप्तिर्जायते ध्रुवम् ॥४७॥
प्रज्ञाप्रमुदितस्थित्यामानन्दमयसंगतौ ।
निश्चित्य पूर्णताबोधे स्थितो भवति मानवः ॥४८॥

६६

स शान्तिं नैव प्राप्नुयात् यस्य प्रज्ञा न संयुता ।
शुद्धचेतनया, तस्मादानन्दस्य ह्यभावताम् ॥४९॥
विद्योतयति पूर्णत्वं जीवने नैव विद्यते ।
आनन्दरहितं तस्य जीवनं मलिनं मतम् ॥५०॥

है और इस प्रकार झंझावात में फँसी नाव की तरह डगमगाने लगता है।

श्लोक ६८

जिस पुरुष की इन्द्रियाँ अपने स्वरूप में उस उद्देश्य के लिए कार्य करती हैं जिसके लिए वे अभिप्रेत हैं वह पूर्ण रूप से अनासक्त हो जाता है और इस प्रकार उसी की प्रज्ञा प्रतिष्ठित होती है।

श्लोक ६९

जिसके चित्तवृत्ति की आपाधापी संतुलित हो जाती है वह क्रियाशील सचेतनता में जागरुक रहता है जबकि दूसरे प्रतिक्रियाओं के बंधन के अंधकार में पडे रहते हैं। जब दूसरे ऐन्द्रिक भोग-विलास के उपभोग में लगे रहते हैं प्रज्ञावान् पुरुष इसे अंधकार के रूप में देखते हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

६७
मोहासक्तौ स्थितं तस्य मानसं तस्य नश्यति ।
प्रज्ञा नौरिव गङ्गायां सर्वतः संप्लुतोदके ॥५१॥
६८
यस्य चेन्द्रियग्रामस्तु स्वोद्देश्ये निश्चयात् स्थितः ।
भवेत् पूर्णो ह्यनासक्तः प्रज्ञा तस्य प्रतिष्ठिता ॥५२॥
६९
चित्तवृत्तेर्भेददृष्टिर्यस्यापि नश्यति तदा ।
स क्रियाशीलतां गच्छेत् स जागर्तिर्न संशयः ॥५३॥
अन्ये प्रतिक्रियायां हि रमन्ते रात्रिवद्धि सा ।
ऐन्द्रिकभोग एवात्र रात्रिरित्यवबोध्यते ।
प्रज्ञावान् पश्यति सर्वमन्धकारमयं हि तत् ॥५४॥
७०
योऽपि वेच्छति भोगानां स्थितिमिन्द्रयग्रामतः ।

श्लोक ७०

जो ऐन्द्रिक भोगविलास को चाहता है वह शांति को नहीं प्राप्त कर सकता है किन्तु जिसमें आकाक्षाएँ एवं कामनाएँ स्वाभाविक रूप से उत्पन्न एवं समाप्त होती हैं, शान्ति को प्राप्त करता है और उसी तरह से अनुद्विग्न एवं प्रशांत रहता है जैसे कि अपने में प्रवाहित एवं समा जाने वाली नाना नदियों के जल से समुद्र अविचलित रह जाता है।

श्लोक ७१

जो कि अनासक्त एवं निरहंकार अवस्था में रहता है वह निश्चय ही परम शांति साम्राज्य में प्रवेश करता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्राप्नोति नैव स शान्तिं किञ्च येषां स्वभावतः ॥५५॥
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते कामना नैव कामतः ।
ते प्राप्नुवन्ति वै शान्तिमनुद्विग्ना हि ते मताः ।
कम्पन्ते नैव ते लोके जलधिवद् यथार्थतः ॥५६॥
७१
अनासक्तः किञ्च तात ! निरहङ्कार एव च ।
निश्चित्य परमां शान्तिं प्रविशति यथार्थतः ॥५७॥
७२
यावद् ब्राह्मीस्थितिर्नैव भ्रान्तिस्तावद्धि ज्ञायताम् ।
जीवनस्यान्तिमे काले बोधो यस्यापि जन्यते ।
अनिर्वर्त्यः स वै ज्ञेयो मुक्तोऽसौ नात्र संशयः ॥५८॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे पञ्चत्रिंशदध्यायः ॥

श्लोक ७२

मनुष्य सदैव भ्रांत रहता है क्योंकि ऐसी ब्राह्मी स्थिति (एकात्म बोध की अवस्था) अप्राप्त रहती है। किन्तु जीवन के अन्तकाल में भी यदि किसी में ऐसी अवस्था का आविर्भाव होता है तो वह निश्चय ही अनिर्वर्त्य परम मुक्ति को प्राप्त हो जाता है।

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ षट्त्रिंशदध्यायः

१. अथ योगानुशासनम्

शासनात्मकसन्दर्भात् शिष्यशब्दः प्रयुज्यते ।
अनुशासनमेवात्र गुरोस्तु लभ्यते तथा ॥१॥
शासनं नाम चाध्यात्ममार्गे बाह्यनिवारणात् ।
बन्धनान्मोचनं वापि गुरूभिः क्रियते तथा ॥२॥
सर्वबन्धननाशाय चामन्त्रणं विधीयते ।
योगशासनतः शिष्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥३॥

अध्याय-३६

अनुशासनात्मक 'शास्' धातु से शिष्य शब्द निष्पन्न होता है। शिष्य अर्थात् जिसपर गुरुका अनुशासन (शासन+नियमन) होता है। अध्यात्म मार्ग में अनुशासनका अर्थ होता है बाह्य विषयगत चित्तको (चित्तवृत्तियों) नियमन करके शिष्य को आन्तरबोध हेतु प्रवृत्त करना तथा समस्त बन्धनों से मुक्त होने की प्रक्रिया में प्रवृत्त करना ही अनुशासन है। यहाँ सभी बन्धनों के नाश के लिए शिष्यको आमन्त्रण करना है जिस अनुसाशन से शिष्य अन्ततः मुक्त हो जाता है। यही प्रथम योगसूत्र "अथ योगानुशासनम्" का वास्तविक अर्थ है ॥१-३॥

जितने भी वृत्तियाँ चित्तकी या चित्त में हैं उन सबका प्रज्ञारूपी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

२. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः

यावत्यो वृत्तयस्तावत् चित्तस्य सन्ति साम्प्रतम् ।
तासां प्रज्ञात्मखड्गेन निरोधो योग उच्यते ॥४॥
मनसस्तु परं यद्धि चैकात्म्यबोधता भवेत् ।
तेनैव योगः संप्रोक्तो योग इत्यवधार्यताम् ॥५॥
कल्पनानां धूर्तसर्वविकाराणां समाप्तितः ।
चित्तवृत्तिनिरोधः स्यात् तदेव योग उच्यते ॥६॥

३. तदा द्रष्टुः स्वरूपेवस्थानम्

आवर्तनं च वृत्तीनां पूर्णं निरुध्यते यदा ।
स्वरूपावस्थितिस्तावद् भवत्येव न संशीतिः ॥७॥

खड्ग के द्वारा काटना या निरोध करना ही योग है । मन के परे, अतिदूर, उसके साथ ऐकात्म्य भाव या मिलन ही उस निरोधरूप योगद्वारा संभव होता है । इसी लिए इसे योग=जोडना कहा गया है ।

सभी प्रकारकी कल्पनाओं, धूर्तविचार एवं विचारों के समाप्तिपूर्वक चित्तवृत्तियोंका निरोध होता है इसीलिए इसे योग कहा गया है ॥४-६॥

वृत्तियों का पूर्ण रूपसे उदय और निरोध जब बन्द हो जाता है तभी स्वस्वरूप में अवस्थिति होती है । उस के बाद ही जीवन में समन्वयात्मक अवस्था का प्रारंभ होता है साथ ही जीवन परिवर्तित होने लगता है । मनकी चञ्चलावस्था, विचारों की गति भी जीवन प्रवाह में प्रविष्ट नहीं होते, इसी से जीवन में भ्रान्तिका कोई भी स्थान

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

समन्वयस्य वै पश्चाद् जीवनं परिवर्तते ।
ग्रन्थिनामथ चक्राणां निर्देशनं च प्राप्यते ॥८॥
मनसः चञ्चलावस्था विचाराणां गतिस्तथा ।
प्रसरेज्जीवने नैव भ्रान्तिस्तेन न कल्प्यते ॥९॥
मनोकायिकभ्रान्तीनां वारणात् सुलभो भवेत् ।
स्वस्वरूपस्य संबोधः स्वरूपावस्थितिर्मता ॥१०॥

४. पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति

अहङ्कृतिशून्यतैव सद्गुणान् जनयेत् यथा ।
सद्गुणानां प्रवाहेषु शाश्वती स्थितिरिष्यते ॥११॥

नहीं होता । मनोगत एवं शरीर गत भान्तियों के निवारणद्वारा स्वस्वरूप में अवस्थिति और स्व अवबोधका उदय भी हो ही जाता है ॥७-१०॥

अन्तिम सूत्र

जब अहङ्कार पूर्ण निरुद्ध हो जाता है तभी सद्गुणों का उदय संभव है । सद्गुणोंका उदय ही शाश्वत स्थिति है ऐसा समझना चाहिए । जो परम ऊर्जा है उसी से प्रबोध है वही परम जागरण है जिसका कोई भी नाम नहीं है । उसे ही दिव्य जीवनलीला कहा जा सकता है । जब मनपूर्ण स्थिर हो जाता है तव यथार्थरूपमें चितिशक्तिका जागरण हो जाता है । उसी से कैवल्य की उपलब्धि होती है । स्वस्वरूपकी स्वतः ज्ञान या प्राप्ति भी तव होती है । समस्त बन्धन

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ऊर्जा सा परमा प्रोक्ता यत्र प्रबोधयुक्तता ।
परमबोधजन्यत्वं संज्ञाहीनत्वमेव वा ॥१२॥
दिव्यजीवनलीलापि सैव सङ्कीर्त्यते तथा ।
इत्थं पूर्णत्वमाप्नोति मनः स्थिरं यथार्थतः ॥१३॥
चितिशक्तेः प्रबोधत्वं कैवल्यमिति सर्वतः ।
स्वरूपस्य स्वतो ज्ञप्तिः प्राप्तिरित्यपि युज्यते ॥१४॥
नष्टं बन्धनजातं तु दिव्यकर्मसमागमः ।
इत्थं चितेस्तु बोधेन मुक्तिर्लभ्येत निर्भया ॥१५॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे षट्त्रिंशदध्यायः ॥

टूट जाते हैं। दिव्य कर्मका समागम होता है। इस प्रकार चिति के बोध से निर्भय मुक्ति मिलती है। वही तो जीवन है ॥११-१५॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ सप्तत्रिंशदध्याय:

अविश्वासगतानां वा विश्वासानां हि पेटिका ।
मनरित्याहुर्विद्वांसो निर्मनीभाव उच्यते ॥१॥
प्रत्यक्षबोधतत्त्वं वा ज्ञप्तेरुत्कर्षता मता ।
मनो ज्ञातुं न शक्नुयात् पूर्वाग्रहान् सृजत्यसौ ॥२॥
अनुमानस्य विषयान् वेत्ति नैव यथार्थकम् ।
भावुकोत्तेजना यापि दीप्तोर्जा नैव प्राप्नुयात् ॥३॥
निर्मनीभावना दीप्ता चाद्या मानसिकी मता ।
सङ्कल्पस्य च स्वातन्त्र्यं किञ्चिद् वस्तु न वर्तते ॥४॥
निर्मनीभाव: स्वातन्त्र्यं सङ्कल्पो बन्धनं मतम् ।

अध्याय-३७

मन विश्वासों एवम् अविश्वासों का कूडा कचरा है, 'निर्मना' ही प्रत्यक्षबोध एवं समझदारी का उत्कर्ष है ।

मन समझ नहीं सकता । यह तो केवल अवधारणाओं एवम् अनुमानों का सृजन करता है ।

'भावुक उत्तेजना' कभी की 'दीप्त ऊर्जा' को प्राप्त नहीं कर सकती है । पूर्ववर्ती मन से सम्बन्धित है और परवर्ती 'निर्मना' से ।

'संकल्प-स्वातंत्र्य' नाम की कोई चीज नहीं है । या तो स्वातंत्र्य (निर्मना) है या फिर संकल्प (मन) यानी की बन्धन ।

सङ्कल्पयुक्त मन, आकांक्षा एवं अंधानुसरण की प्रतिक्रिया से

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

समर्पणं नाम मनोलयत्वमेव चास्तिता ॥५॥
ज्ञप्तेर्वा प्रक्रिया चैषा शुद्धक्रिया सुदीप्तिः सा ।
पारतन्त्र्यं मनः प्रोक्तमाकाङ्क्षा चाथ ज्ञायताम् ॥६॥
अन्धानुसरणं वापि सर्वं कलुषितं मतम् ।
कल्पनायां सदा भ्रान्तं मानसं भवति ध्रुवम् ॥७॥
यदा मनः समाप्येत निर्भयस्त्वं तदा भवेः ।
यदा वास्तविके क्षेत्रे भ्रमति मनः वस्तुतः ॥८॥
स्वस्थं भवति वै तावत् चान्यत्र रोगवद् भवेत् ।
आध्यात्मिकी स्थितिर्नैव कल्पनेत्यभिधीयते ॥९॥
ध्यानावस्थितिरेवात्र यत्र मनो न धावति ।

कलुषित है र परवशता दीप्तिहीन होती है ।

मन काल्पनिक दुनिया में विचरणका आदी होता है । आप "निर्मना" अवस्था को तव प्राप्त करते हैं जब आप मन को कल्पना की दुनियाँ में सैर करने का अवसर नहीं देते हैं ।

मन जब तकनीकी (वास्तविक) क्षेत्र में कार्यरत होता है तब स्वस्थ होता है। कल्पना के क्षेत्र में मन रोगों एवं व्याधियों से भरा होता है।

आध्यात्मिकता कल्पना की दुनिया में उडान नहीं है ।

ध्यान (क्रिया) युक्त जीवन एक ऐसा जीवन है जहाँ मन की आत्मकेन्द्रित गतिविधियाँ नहीं होती हैं । मानव-मन की विकृति, संकीर्णता, धूर्ततापूर्ण शोषण, कुटिल पाशविकताओं एवं मूर्खतापूर्ण

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अहङ्कारगतिर्नैव ध्याने क्वचिद् विलोक्यते ॥१०॥
विकृतौ सत्यपि धूर्तविचारजालपोषणे ।
कौटिल्ये किञ्च संकीर्णशोषणे मूर्खतायुते ॥११॥
पाशविके गते घोरे मूढे जीवनमार्गके ।
क्रियायोगगतो जीवो कुशलत्वेन वर्धते ॥१२॥
अनुभूतेरवस्थायां स्थितिः प्रज्ञा निगद्यते ।
सचैतन्यस्थितिः सेयं यत्र स्थितो न शोचति ॥१३॥
अनुभूतेस्तु विषये रमणं नैव काम्यताम् ।
तेन प्रतिक्रिया भूयात् क्रियायां स्थियतां यतः ॥१४॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे सप्तत्रिंशदध्यायः ॥

कल्पनाओं के बावजूद मनुष्य ऐसा ध्यान (क्रिया) युक्त जीवन प्रतिक्षण, प्रतिदिन जी सकता है ।

अनुभूति की अवस्था में होना (समाधिष्ठित सचेतनता) सर्वाधिक महत्वपूर्ण है न कि अनुभूति का विषय

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथाष्टत्रिंशदध्यायः

परावस्था स्थितिर्नैव यावल्लभ्येत केनचित् ।
जन्ममृत्योरवस्थानं तावन्नूनं प्रजायते ॥१॥
परबोधं विना मार्गश्चान्यो न क्वचिदुह्यते ।
नान्यपन्था क्वचित्पुत्रा ! नान्यपन्थेति ज्ञायताम् ॥२॥
नास्ति कश्चन वै पन्था नान्य पन्था क्वचिन्मतः ।
प्रज्ञाविपुलदीप्त्या तु युक्ता शक्तिस्तु सर्वतः ॥३॥
ब्रह्माण्डे घटके सर्वं सर्वत्रावृत्यतिष्ठति ।
यावदेतन् न वै वेत्ति योगमार्गसमाश्रयात् ॥४॥
मुक्तेर्मार्गान्तरं चान्यन् नास्ति चेत्यवधार्यताम् ।

अध्याय-३८

जब तक "परावस्था" की झलक नहीं मिलता है तबत क जन्म और मृत्यु के चक्र से बाहर आने का कोई मार्ग नहीं है। कोई अन्य पथ नहीं है, कोई अन्य पथ नहीं है, कोई अन्य पथ नहीं है।

प्रज्ञा की विपुल दीप्ति से युक्त एक अद्भूत मंगलमय शक्ति है जो ब्रह्माण्ड के प्रत्येक सूक्ष्म वस्तु को आवृत्त किये हुए है। जब तक इस सच्चाई का उद्बोधन नहीं होता है, कोई जन्म और मृत्यु के चक्र से बाहर नहीं आ सकता है। मुक्ति के लिए कोई अन्य पथ नहीं है, कोई अन्य पथ नहीं है, कोई अन्य पथ नहीं है।

मन रूपी उपकरण के आयाम के अन्दर अज्ञेय ज्ञेय नहीं हो सकता है। जब तक तडित् के झटके के आघात की तरह इस यथार्थ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जन्ममृत्युचक्रगतो जीवो नान्येन केनचित् ॥५॥
पथा बहिः समागच्छेन् मार्गो नास्ति कथञ्चन ।
मनसः कार्यक्षेत्रेऽत्र ह्यज्ञेयं ज्ञेयतां नहि ॥६॥
तडिदाघातवद् यावद् याथार्थ्यं नावबुध्यते ।
तावदहङ्कृतेर्नैव मुक्तिर्भवति कुत्रचित् ॥७॥
इत्थं जन्ममृत्युचक्राद् मुक्तिर्भवेत् कथं कुतः ।
नास्ति कश्चन वै पन्था नास्ति चेत्यवधार्यताम् ॥८॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्ड अष्टत्रिंशदध्यायः ॥

का एहसास नहीं होता है तबत क अपनी आत्मकेन्द्रित गतिविधियों को रोका नहीं जा सकता है एवं जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति नहीं पाई जा सकती है। इसके लिए कोई अन्य पथ नहीं है, कोई अन्य पथ नहीं है, कोई अन्य पथ नहीं है ॥१-८॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथैकोनचत्वारिंशदध्यायः

यथार्थवस्तुनो यावत् प्रत्यक्षं नैव कुर्वते ।
अयथार्थवस्तुजातं मनसा कल्प्यते सदा ॥१॥
मनसो दूषणस्येदं कारणं किल विद्यते ।
यदि भयं समायाति साक्षात्कुर्वन्तु सत्वरम् ॥२॥
पलायनं न वै युक्तियुक्तमित्यवधार्यताम् ।
न गीता न च कुर्आनम् न बाय्बीलमिति स्वयम् ॥३॥
पठ्यताम्, नैव कुर्वन्तु पलायनमिति तदा ।
पुस्तकानि पठित्वैव कल्पनालोकमानसे ॥४॥
स्थित्वा काल्पनिकावस्थां प्राप्यैव वञ्चयन्त्यहो ।

अध्याय-३९

हम यथार्थ का सामना नहीं करते । हम सदैव अयथार्थ की काल्पनिक अवस्था का सृजन कर यथार्थ से पलायन करने की प्रवृत्ति रखते हैं ।

हमारे मन के विरोधाभासों एवं प्रदूषण का यही मूल कारण है ।

उदाहरणार्थ - यदि हमें भय लगता है तो हम भय के यथार्थ का सामना नहीं करना चाहते । हम तत्काल बाइबिल, गीता या कुरान के अनुकूल अभय की काल्पनिक अवस्था सृजन कर लेते हैं और तब हिन्दू, ईसाई या मुस्लिम के अपने अनुबंधन के अनुसार इस काल्पनिक अवस्था में अंतर्ग्रस्त हो जाते हैं । इस काल्पनिकता में लिप्त हो जाना मन की ही एक चाल और झेल है ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्वात्मन इति तन्मुक्तिरिहैव मुच्यतां ततः ॥५॥
मनसो मूलमित्येव चात्मसंरक्षियन्त्रवत् ।
चित्तवृत्तेस्तु योगेन कुचक्राद् रक्षति मनः ॥६॥
कल्पनान्तर्ग्रस्ततया यथार्थतः पलायनात् ।
विभेदकारिणी वृत्तिः संपोष्यते न संशयः ॥७॥
अनेन नैव मुच्यन्ते प्राणिनो बन्धनैः सदा ।
बध्यन्त इति सर्वत्र मन एव हि बन्धनम् ॥८॥
किन्तु प्रत्यक्षरूपेण भयं पश्यामः पूर्णतः ।
नश्यति तद्भयं स्वस्मात् प्रकृत्या तद् विनाश्यते ॥९॥
अदम्यं साहसं नूनमाविर्भवति सत्वरम् ।
किन्तु मन्दिरमस्जिदपूजास्थलेषु कुत्रचित् ॥१०॥
प्राप्तुं सत्यं न शक्येत भयस्य रक्षणं स्वयम् ।

यह मन की मौलिक आत्म-संरक्षी यंत्र-रचना है ।

काल्पनिकता के साथ अंतर्ग्रस्तता एवं इस प्रकार यथार्थ से पलायनद्वारा विभेदकारी चित्तवृत्ति (मन) संपोषित होती है । यही कारण है कि हम कभी भी मुक्त नहीं हो पाते बल्कि बंधन में और अधिक फँसते जाते हैं क्योंकि मन ही बंधन है ।

किन्तु यदि हम सीधे भय का अवधान कर सकें और यथार्थ का सामना कर सकें तो प्राकृतिक विधान से एक चमत्कार घटित होता है । तब हम पाते हैं कि भय गायब हो गया है और एक सदय साहस हमें स्पर्श करने लगता है परन्तु इस साहस को कभी भी कोई मन्दिर, मस्जिद या चर्च छूने नहीं देते हैं क्योंकि पुरोहित वर्ग के लिए यह सुविधाजनक नहीं है । वे हमें भय में ही रखना चाहते हैं । इससे

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पण्डितैः पूजकैः पौरोहित्यवञ्चकमण्डलैः ॥११॥
क्रियते येन ते स्वीय-व्यापारं चालयन्त्यहो ।
भययुक्तं मानसं तु न धार्मिकमिहोच्यते ॥१२॥
भयविरोधसंयुक्तं साहसं नैव साहसम् ।
विकृतं तत्तु संप्रोक्तमातङ्कजननं मतम् ॥१३॥
भयमुक्तिर्मनोमुक्तिर्निर्मनीभावसंस्थितिः ।
एतद्धि वास्तवं रूपं चमत्कारस्य ज्ञायताम् ॥१४॥
धर्मपुस्तकसन्दर्भाध्ययनं नैव युज्यते ।
चमत्कारस्तु मिथ्यैव सर्वत्रेत्यवधार्यताम् ॥१५॥
ज्ञातमस्तित्वसंयुक्तं वस्तुसत्यपि ज्ञाततः ।
पूर्णमुक्तिर्हि सर्वत्र चमत्कारोऽस्ति ज्ञायताम् ॥१६॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्ड एकोनचत्वारिंशदध्यायः ॥

उनका व्यापार चलता है। किन्तु भय से पंगु मन धार्मिक मन नहीं है। भय के विरोधी के रूप में उत्पन्न साहस और भी विकृत भय है। यह विरोध ही आतंकवाद का उत्पत्ति स्थल है।

भय से मुक्ति, मन से मुक्ति एवं "निर्मनावस्था" का आविर्भाव है। यही वास्तविक चमत्कार है - न कि धार्मिक पुस्तकों द्वारा प्रचारित चमत्कार (पवित्र झूठ)। ज्ञात के अस्तित्व के बावजूद ज्ञात से मुक्ति ही चमत्कार है ॥१-१६॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ चत्वारिंशदध्याय:

संभोगो न तथा द्वेष्यो यस्य निन्दा विधीयते ।
विजयस्य न वै वार्ता न निषेधात्मतां गत: ॥१॥
जीवनस्य चैकभाग इति बोधपुर:सरम् ।
प्रभुत्वं न भवेत्तस्य जीवने चावधार्यताम् ॥२॥
रति: कामुकतां नैव गच्छेत् प्रेम्ण: परा स्थिति: ।
दिव्यप्रबोधधर्मस्य ह्यभिव्यक्तिर्हि मन्यताम् ॥३॥
मध्यममार्ग एवात्र दिशाहीनरतिर्न हि ।
न वा यन्त्रमयो ब्रह्मचर्यावास: क्वचिद् भवेत् ॥४॥
रतिस्तु सुन्दरं पुष्पं स्नेहात् संपुष्यतां यत: ।

अध्याय-४०

रतिवासना स्वयं में इतना निषेधात्मक नहीं है जिसकी निन्दा अथवा जिस पर विजय प्राप्त करना अनिवार्य हो ।

यह जीवन का केवल एक पहलू है और इसीलिए जीवन में इसका प्रभुत्व नहीं होना चाहिए ।

रतिवासना को कामुकता के स्तर तक विकृत न होनें दें बल्कि इसे प्रेम और दिव्य प्रबोध की अभिव्यक्ति बनायें ।

हमारे लिये एक मध्यम मार्ग बने जहाँ न तो दिशाहीन रतिवासना हो और न ही यंत्रणापूर्ण ब्रह्मचर्य ।

रतिवासना एक कोमल पुष्प है । इसे स्नेहपूर्वक पोषा और संजोया जाए । यदि इसे शिथिल कर दिया जाए तो यह शक्ति का

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शैथिल्यात् शक्तिर्नश्येत मौर्ख्यमेव हि तद् भवेत् ॥५॥
क्रौर्येण दमनान् नूनं सुन्दरं वस्तु नश्यताम् ।
स्वतः प्रस्फुटिता भूत्वा विकासं गच्छतु स्वयम् ॥६॥
अस्वीकृतिं न कुर्वन्तु दास्यं चापि न सम्मतम् ।
प्रेम एव महद्वस्तु चाहङ्कारसमाप्तितः ॥७॥
प्रस्फुटितं भवेत्तावन् नात्र कार्या विचारणा ।
प्रेम्णः शाश्वतबोधः स्यादित्येव ज्ञायतां सदा ॥८॥
प्रेम एव हि चोत्कर्षबोधो वेत्यवधार्यते ।
निर्मनीभावस्थित्यात्मभावः प्रेम सदा मतम् ॥९॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे चत्वारिंशदध्यायः ॥

मूर्खतापूर्ण अपव्यय होगा और इसका क्रूरता से दमन किया जाए तो यह एक सुकुमार एवं सुन्दर वस्तु को नष्ट करना होगा । इसे स्वतः अनावृत्त एवं प्रस्फुटित होने दें - न तो इसे अस्वीकार करें और न ही इसकी दासता स्वीकार करें ।

प्रेम सबसे महान् वस्तु है, इसमें आत्मकेन्द्रित गतिविधियों की सम्पूर्ण समाप्ति है ।

प्रेम करना शाश्वतता का बोध प्राप्त करना है ।

प्रेम ज्ञान/समझदारी का उत्कर्ष है । प्रेम करना "निर्मना भाव" में होना है ॥१-९॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथैकचत्वारिंशदध्याय:

जीवनं परमं रम्यं विस्मयपूर्णतां गतम् ।
समस्यापूर्णता तावन् मया नैव विलोक्यते ॥१॥
चित्तवृत्तिर्हि सर्वत्र दु:खं सृजति यत्नत: ।
दु:खस्य माध्यमात् स्वस्य रक्षणं विदधाति तत् ॥२॥
स्वस्थायीकरणायैव सर्वां स्थितिं स्वयं सदा ।
दु:खपूर्णस्थितावेव परिवर्तयति स्वत: ॥३॥
दु:खहानस्थितिं यावत् प्राप्नोति सत्वरं स्वयम् ।
निर्मनीभावतां गच्छेद् इत्येव ज्ञायतां सदा ॥४॥
जीवनस्य तु पूर्णत्वं विस्मयाद् बोध्यतां यत: ।
निष्कापट्यं तु प्राप्त्यैव चानन्दानुभूतिर्भवेत् ॥५॥

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्ड एकचत्वारिंशदध्याय:॥

अध्याय-४१

जीवन समस्यापूर्ण नहीं बल्कि विस्मयपूर्ण है । चित्तवृत्ति जीवन के प्रवाह से समस्याओं का सृजन करती है क्योंकि उसी से ये वृत्तियाँ स्थायित्व प्राप्त करती हैं ।

मन समस्याओं के माध्यम से अपना परिरक्षण करता है । यह अपने स्थायीकरण हेतु प्रत्येक स्थिति को समस्या में परिवर्तित करने का प्रयत्न करता है ।

मन को जब समस्याओं से वंचित रखा जाता है तब वह निर्मनावस्था में विलीन हो जाता है ।

जीवन के सम्पूर्ण मर्म को विस्मय की कला एवं निष्कपटता के आनन्द के माध्यम से अनुभव करें ॥१-५॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ द्विचत्वारिंशदध्यायः

किं क्वचिद् विषयकारणं विना असन्तोषः सम्भवति ? नहि । यदाऽपि नाहंभावः तदा नामातिरेकजिज्ञासायाः प्रारंभस्तथा अनावृत्या सम्भावनायाः समुत्पत्तिः सम्भवति । सैव निर्मनीभावापन्नावस्था । पवित्रान्तर्दृष्टिश्चेति ।

अस्तित्वं सदेव । नानुभवः । जगदेवानुभवः । अध्यात्मपथि मानसानुभवेन काल्पनिकजालेषु वयं भ्रमामः । विकृताश्च भवामः ।

अस्तित्वबोधो नाम नानुभवोल्लासः । अनुभवस्तु कल्पितवस्तुबोध एव तस्माद् हेयः । स्वीयविश्वासानुभवानां परीक्षणं कर्तव्यम् । चित्तवृत्तेः चाञ्चल्यप्रवृत्तिं विलोक्य

अध्याय-४२

क्या विना किसी विषय/कारण के कोई वासना/असंतोष हो सकता है ? तब वहाँ कोई अहम् भाव नहीं रह जाता है। यही है उस अनाममय जिज्ञासाका उन्मोचन और केवल तभी उस आयाम के अनावृत्ति के सम्भावना की उत्पत्ति होती है जो कि निर्मनावस्था है जिसे पवित्र अन्तर्दृष्टि कहा जाता है।

अस्तित्व सत् है न कि अनुभव। अनुभव केवल जागतिक संदर्भों में मान्य एवम् उपयोगी है । आध्यात्मिक संदर्भों में मानसिक अनुभव/काल्पनिक जाल हमें मानसिक रूप से अपांग/विकृत वना देंगे।

अस्तिस्त का प्रबोध अनुभव का उल्लास नहीं है। अनुभव एक पहचान है और समस्या पहचान पूर्व नियोजित प्रतिक्रियाओं से दूषित

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सर्वमनुभवजातं क्षणभङ्गुरमिति निश्चेतव्यम् । सत् शाश्वतः । सति शून्ये सा शक्तिरस्ति यत्र बोधोऽपि विद्यते । सा शून्यता भवतामाभ्यन्तरे पूर्णतया विद्यत एव । देहावसानात् पूर्वमेव तां शून्यतां चित्तवृत्तिविषयेभ्यः पूर्णतया मोचयन्तु । दृष्टिहीनदृष्यमुद्घाटयन्तु । मनःकालयोर्मुक्तिरेव महती जागर्तिरिति ।

॥ सच्चिद्राधा-गोविन्दौ ॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे द्विचत्वारिंशदध्यायः ॥

होते हैं । अपने विश्वासों और अनुभवों का निरीक्षण एवम् जाँच पडताल करें । चित्तवृत्ति की उस विरामहीन प्रवृत्ति को देखें जो स्वयं को निरन्तरता प्रदान करता रहता है । अनुभव सत् नहीं है । यह क्षणभंगुर है । सत् शाश्वत है । सत् शून्य में वह शक्ति है जिसमें समझदारी भी है । वह शून्यता आपके अन्दर पूर्णतया विद्यमान है । देह के अवसान के पूर्व उस शून्यता को चित्तवृत्ति के विषयों के प्रदूषण से मुक्त करें । द्रष्टाहीन दृष्टिका उद्घाटन करें । मन तथा काल के बंधन से मुक्ति ही सबसे बडी जागृति है ।

सत् चित्
राधा- गोविन्द

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ त्रिचत्वारिंशदध्यायः

लोकानुभवस्तु अनिर्वचनीयरहस्यभरितप्रत्यक्षबोधस्य मृत्युरेव । यं प्रेम-सद्-अस्तित्व-शाश्वत-दिव्यानन्द-पवित्रतानामयादिभिः शब्दैर्वयं जानीमः ।

तदन्तिकं यूयं प्राप्तुं शक्नुथ यदि बोधपूर्वकमभ्यासं कुरुथं । यस्य विषये श्रीलाहिडीमहाशयमाध्यमेन युगात् प्रोच्यमानमद्यापि तदीयवंशगतव्यक्त्या प्रोच्यमानं विद्यत एव । यस्यां तेनैव रक्तसमूहास्थिमज्जायुतचेतसा प्रतिवर्षं विश्वव्यापिरूपेण कथ्यत एव ।

तद्रहस्यं स्वयमेव स्वात्मनः कृते समुद्घाटयन्तु । न हि परो भवत्कृते तद्रहस्यजातमुद्घाटयेन् न च विनाशयेदेव ।

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे त्रिचत्वारिंशदध्यायः ॥

अध्याय-४३

अनुभव उस अनिर्वचनीय रहस्य के प्रत्यक्ष बोध की मृत्यु है जिसे हम 'प्रेम', 'सत्', 'शाश्वत', 'दिव्य', 'आनन्द' 'पवित्रता', 'अनाममय' इत्यादि नाम से जानते हैं ।

शायद उस रहस्य तक आप भी पहुँच सकते हैं यदि आप समझदारी से उसका अभ्यास करें, जो आपको उस मानव शरीर, जिसे लाहिडी महाशय कहा जाता है, के माध्यम से बताया जा चुका है और जिसे आज भी उनकी रक्त कोशिकाओं एवम् अस्थि-मज्जाद्वारा विश्वभर में प्रत्येक वर्ष बताया जा रहा है ।

आप उस रहस्यका स्वयम् अपने लिए एवम् अपने द्वारा आविष्कार करें । कोई दूसरा व्यक्ति यह रहस्य आपके लिए उद्घाटित नहीं कर सकता है और कोई भी इसे विनष्ट नहीं कर सकता है ॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ चतुश्चत्वारिंशदध्याय:

सत्संगशब्दान्तर्निहितार्थस्तु भवति 'एवंविधसंलापस्य प्रारंभो यत्र मनसः प्रवृत्तेः सत्यं शनैः शनैरुद्घाटितं भवेत् । यद्यपि लोके सत्संगशब्दप्रवृत्तिस्तु विलोक्यते साधारणधीमन्त एकीभूय प्रार्थना - भगवन्नामोच्चारण - कीर्तनादि - विविधलौकिकोपायमनोरञ्जनमेव । अथवा मान्यलोकसिद्धान्तविश्वासेषु लिप्ता भूत्वा उत्तेजनायामनुरक्तिरेव । साधारणधीरित्यर्थो भवति सूचना-पुस्तकज्ञान-भाराक्रान्तमदमत्तजडमस्तिष्क एव ।

सत्संगे संभाषणविचारप्रेषणप्रकारो भिन्नोऽस्ति यत्र

अध्याय-४४

'सत्संग' का अन्तर्निहित अर्थ है - एकत्रित होकर ऐसे संलाप की शुरुआत करना जिसके द्वारा मन की प्रवृत्तियों से सम्बन्धित सत्य धीरे धीरे उद्घाटित होता है, यद्यपि 'सत्संग' शब्द का सामान्य अर्थ ऐसा किया जाता है कि साधारण बुद्धि के लोग एकत्र होकर प्रार्थना, भजन एवं कीर्तन के माध्यम से मनोरंजन में डूबे रहें अथवा मान्य सिद्धान्तों एवं विश्वासों में लिप्त होकर उत्तेजना में फँसे रहें । साधारण बुद्धि का अर्थ है - सूचनाओं/किताबी ज्ञान से बोझिल एक मदमत्त जड मस्तिष्क किन्तु, सत्संग प्रज्ञायुक्त एवं स्वतंत्र मस्तिष्क से उच्चकोटि के चिन्तन की अपेक्षा करता है ।

सत्संग में संभाषण विचार-संप्रेषण का एक प्रकार है जिसमें

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तावज्जिज्ञासा समाधानं च भवतः यावद् बुद्धिमत्कृतप्रश्नस्य बोधमय उत्तरो न भवति । एष एव प्रबोधे प्रकाशस्योदय इति ।

दौर्भाग्याद् भवत्प्रश्नाः तत एव चायान्ति यत्र पूर्वस्मादेव स्वयं पूर्वानुभवजनितज्ञानक्षेत्राद् ज्ञाताः । स्वपूर्वोत्तरदृढतायै प्रश्नं कुर्वन्ति भवन्तः । एवमेव वारम्वारं तस्योत्तरस्य दृढतया भवान् स्नायुरोगी जायते । यदा गभीरः प्रश्नस्तिस्ष्ठति तदा वास्तविकश्चमत्कारः परिदृश्यते (न हि तदलौकिं यथा दैवीयध्वनिः, दिव्यदर्शनम्, सुगन्धः सत्यं दर्शनम् आदिः) यतः प्रश्नो विचारभूमितो बहिर्भूत इत्येव यथा पुष्पकोपिलानां

प्रश्नोत्तर तब तक रहता है जब तक कि एक बुद्धिमत्तापूर्ण प्रश्न अनुत्तरित रह जाये । यही है प्रबोध में प्रकाश का उदय ।

दूर्भाग्य से आपके प्रश्न, उत्तर केवल उसी क्षेत्र से उत्पन्न होते है । जो कि पहले से ही आपके बोझिल अनुबन्धन के माध्यम से ज्ञात हैं । आप प्रश्न केवल अपने "उत्तरों" के दृढीकरण के लिए ही करते हैं । यह पुनः और अधिक अनुबंधन में लिप्त करता है और आपको स्नायविक रोगी बना देता है । किन्तु, जब एक गंभीर प्रश्न स्थगित रह जाता है तब एक वास्तविक चमत्कार (दैवीय ध्वनि, दिव्य-दर्शन, सुगंन्धित संत इत्यादि नहीं) घटित होता है क्योंकि प्रश्न विचारों के चक्र से पूर्णतः अनछुआ रह जाता है, जैसे एक कलीको पूर्णतया खिलने के लिए बिना छुये छोड देते हैं । तब प्रश्न पिघलकर

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विनैव स्पर्शं यथावत्त्यज्यते विकासाय । तदा प्रश्नः स्वयमेव उत्तरे परिणमते । प्रश्नोत्तरयोर्भेदो विलुप्यत एव । तदा गुरुशिष्ययोरहङ्कारो लुप्यते । इत्थमप्रमेयमनामयतत्वप्रक्रिया प्रारभते ।

समस्या-समाधानाय विधिहीनविधेः प्रयोगेण निर्मनीभावावस्थां परमानन्दमङ्गलावस्थां च सर्वे प्राप्नुयुः ।

॥ जयतु लाहिडिऋषिवंशपरम्परा ॥

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे चतुश्चत्वारिंशदध्यायः॥

स्वयम् उत्तर बन जाता है तथा प्रश्न और उत्तरका विभेद लुप्त हो जाता है क्योंकि प्रश्नकर्ता और उत्तरदाता के अंदर अहम्द्वारा निर्मित विभाजन समाप्त हो जाता है। इस प्रकार एक अप्रमेय वा अनामय प्रक्रियाका आरम्भ होता है ।

समस्या-समाधान की इस "विधि-विहीन" विधि का प्रयोग करें तथा "निर्मनावस्था" के परमानन्द एवं मंगलमय अवस्था में प्रवेश करें ।

लाहिडी महाशय की ऋषि वंश परम्परा की जय ॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ पञ्चचत्वारिंशदध्यायः

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगाः - (पा.यो.सू) । क्रियायोगो नाम स्वाध्यायेन (मनःकेन्द्रितगतिविधीनामनुशीलनद्वारा) तपसा च (क्रियाभ्यासेन) ईश्वरप्रणिधानान्तं गति (पूर्णत्वस्य प्रत्यक्षबोधान्तं) रित्यवधार्यते ।

क्रियायोगी सहजावस्थायां स्थितत्वान् मनोनिर्मितकथासु, कल्पनासु, धूर्ततासु, विकाराणां श्वासरोधात्मकगलबन्धनैर्मुक्तो भवति । इत्थं क्रियायोगोष्टाङ्गयोगस्यैव स्वरूपमवधारयति ।

अध्याय-४५

तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगाः (पतंजलि) । क्रियायोग स्वाध्याय (आत्म केन्द्रित गतिविधियों के अनुशीलन) से तपस्या (क्रिया-अभ्यास) के माध्यम से ईश्वर प्रणिधान (पूर्णत्व के प्रत्यक्ष बोध) तक की यात्रा है । क्रियायोगी सहजावस्था में स्थित होने के कारण मनगढंत कथाओं, कल्पनाओं, शरारतों एवं विकारों के गलाघोंटू बंधन से मुक्त रहता है । इस प्रकार क्रियायोग अष्टांग योग का ही स्वतः स्फूर्त स्वरूप है ।

अष्टांग योग :

अष्टांग का अर्थ है आठ आयाम । योग का अभिप्राय है समन्वय । अष्टांग योग का आशय संतुलित जीवन के उन आठ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अष्टाङ्गयोगश्च

अष्टाङ्गस्यार्थो भवति अष्टाविध आयामः । योगास्याभिप्रायश्च समन्वयः । अस्याशयश्च संतुलितजीवनस्याष्टविधायामद्वारा मनसः विभेदकारिवृत्तेर-न्तर्विरोधात्मकचाञ्चल्यानां समाप्तिरित्यवगम्यते ।

१. यमः पञ्चविधः ।

- द्वयं मुखस्य (१) सत्यभाषणम् ।
  (२) व्यसनराहित्यञ्चेति ।
- द्वयं करयोः (१) अचौर्यम् ।
  (२) अहिंसा चेति ।
- एकमुपस्थस्य यौनादुराचरणराहित्यं नाम

आयामों से है जिनमें मन (विभेदकारी चित्तवृत्ति) के अन्तर्विरोधी आपाधापी की समाप्ति हो जाती है ।

१. यम - जो संख्या पाँच हैं :-

(क) दो मुख मे :- १. झूठ न बोलना
२. नशा न करना

(ख) दो हाथ के : १. चोरी न करना
२. हिंसा न करना

(ग) उस गुप्त स्थानका :१. यौन दुराचरण न करना

२. नियम - जो संख्या में पाँच हैं :

(१) शौच (स्वच्छता)

(२) संतोष (संतुष्टि)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शास्त्रलोकाविरुद्धकामोपभोगः ।

२. नियम; पञ्चविधः

शौच-सन्तोष-दम-दान-दयाश्चेति ।

३. आसनम् । स्थिरतया सुखेन एकान्त अवस्थितिरेव ।

४. प्राणायामः प्राणनियमनम् (येन स्वतो मनो निरुध्यते) ।

५. प्रत्याहारः

प्रत्यहं (१२X१ द्वादशधा प्राणायामस्याभ्यासः । अनेन मनोवृत्तेरभावो गतानुगतिकाभ्यासानाञ्च समाप्तिः । अयंभावः - पूर्ण - स्वस्थ - जीवनस्याविर्भावः ।

६. धारणा (१२X१२=१४४)

---

(३) दम (सादगी/आडम्बरहीनता)

(४) दान (उदारता/आकांक्षा रहित कार्य)

(५) दया (करुणा)

३. आसन : मूल अर्थ है : बैठनेका उपादान/स्थिर होकर तथा एकान्त में बैठना ।

४. प्राणायाम : श्वास/मनका नियमन ।

प्राणायाम की परिणति : विचारोंका विलय अर्थात् अन्तर्दृष्टिका उदय ।

५. प्रत्याहार (१२X१) : आदतों एवं मनोवृत्तियोंका अभाव अर्थात् पूर्ण एवं स्वस्थ जीवनका आविर्भाव ।

६. धारणा (१२X१२=१४४) : चित्तवृत्ति की विभेदकारी गतिविधियों

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रत्यहं चतुश्चत्वारिंशदधिकैकशतं प्राणायामाभ्यासः । अनेन प्राणकर्मणा चित्तवृत्तेर्विभेदकारकगतिविधिसु क्वचित् क्वचिद् यदा कदा वा निरोधारंभो भवत्येव ।

७. ध्यानम् (१२X१२X१२=१७२८) १७२८ प्राणकर्मैव तत् । अनेनैकसहस्रसप्तशताधिकाष्टाविंशतिधा क्रियमाणेन प्राणकर्मणा विकल्परहितचैतन्यावस्थां गतो योगी ध्यानावस्थितो भवति । यत्र नास्ति ध्याता ।

८. समाधिः (१२X१२X१२X१२=२०७३६) समभावेष्ववस्थितिः । कदाचित् सविकल्पेन कदाचिच्च निर्विकल्पेनेति ।

में कभी कभी रुकाव की प्रक्रियाका आरम्भ ।

७. ध्यान (१२X१२X१२=१७२८) : विकल्परहित सचेतनता अर्थात् ध्याता के विना ध्यान ।

८. समाधिः (१२X१२X१२X१२=२०७३६) : मूल अर्थ है समभाव में अधिष्ठित ।
सविकल्प (कभी-कभी), निर्विकल्प (नित्य) ॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

गूढार्थः

समाधेर्गहनतमोर्थस्तु = अस्तित्वावबोध (नानुभवस्य) स्य गहनतमायामे निमज्जनमेव यत्रोद्दीपनानुक्रिययोरैक्यं लयात्मकत्वञ्चाविर्भवति ।

अस्तित्वं नाम सत् । तदीय रहस्यप्रबोधो ह्यकस्माज्जायते । इत्थं तदस्तित्वं समयभारान् मनोबन्धनाच्च पारे विद्यते तथापि इदं चिन्तने प्राञ्जलतया मनोभावेषु दानशीलव्यवहारच पवित्रतया कालक्रमे क्रियाविधेः चरमोत्कर्षतया घटते । प्रबोधे विष्फोटता च, न योगप्रक्रिया कारणाद्भवति किन्तु अस्य सीमाबद्धतयापि भवत्येव । विष्फोटश्च कार्यकारणचक्रात् पारे विद्यते । एतदर्थं क्रियायोग एव कदाचिद् अनुकूलतां बिभर्ति ।

इयमेव महत्यनुकम्पा वर्तते । जयति लाहिडिमहाशयः ।

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे पञ्चचत्वारिंशदध्यायः॥

गूढार्थ

समाधि का गहनतर संकेत है - अस्तित्व (अनुभव नहीं) के उस आयाम की गहराई में गोते लगाना जहाँ उद्दीपन और अनुक्रिया का एकात्मक लय बन जाता है ।

अस्तित्व (सत्) के रहस्य का प्रबोध अकस्मात् होता है । इस प्रकार यह समय के बोझ और बंधन से परे है तथापि यह चिंतन में प्राञ्जलता, मनोभाव में दानशीलता एवं व्यवहार में पवित्रता के साथ काल-क्रम में क्रिया विधि के चरमोत्कर्ष के रूप में घटित होता है । प्रबोध में विस्फोट योग प्रक्रिया के कारण नहीं बल्कि इसकी सीमाबद्धता के बावजूद हो जाता है । विस्फोट, जो कि कार्य-कारण के क्षेत्र से परे है, उसके लिए योग ही शायद अत्यधिक अनुकूल है । यह तो महान् कृपा है । "जय लाहिडी महाशय" ॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ षट्चत्वारिंशदध्यायः

त्रियायोगवंशपरम्परामाध्यमेनव्यक्तासु अधोलिखितसारगर्भितसूक्तिसु ध्यायन्तु यत्राभिव्यक्तशब्दापेक्षयाधिकसम्प्रेषणीयता बोधगम्यता प्रतिभाति । यथा -

१. विभेदकारिणी चित्तवृत्तिः ।

२. एकात्मावबोध : ।

३. प्रत्यक्षावबोधः ।

४. वैचारिकीकरणम् ।

५. अस्तित्वम् ।

६. अनुभवः ।

अध्याय-४६

(क्रियायोग) वंशपरम्परा के माध्यम से व्यक्त निम्नांकित सारगर्भित सूक्तियों पर ध्यान दें जो कि अभिव्यक्त शब्दों की अपेक्षा अत्यधिक सम्प्रेषणीय हैं जैसे -

१. विभेदकारी चित्तवृत्ति

२. एकात्मबोध

३. प्रत्यक्षबोध

४. वैचारिकीकरण

५. अस्तित्व

६. अनुभव

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

७. बहिर्भावः ।

८. अन्तर्दृष्टिः ।

९. ज्ञानम् ।

१०. प्रज्ञा ।

११. मनः ।

१२. निर्मनस्त्वम् ।

१३. अहङ्कारः ।

१४. त्वंभावः ।

१५. मनोविकृतिः ।

१६. विचारसातत्याभावः ।

१७. निर्विकल्पचैतन्यभावः ।

---

७. बहिर्भाव
८. अन्तर्दृष्टि
९. ज्ञान
१०. प्रज्ञा
११. मनः
१२. निर्मना
१३. अहम्भाव
१४. त्वंभाव
१५. मनोविकृति
१६. विचार में असतता
१७. विकल्परहित सचेतना

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

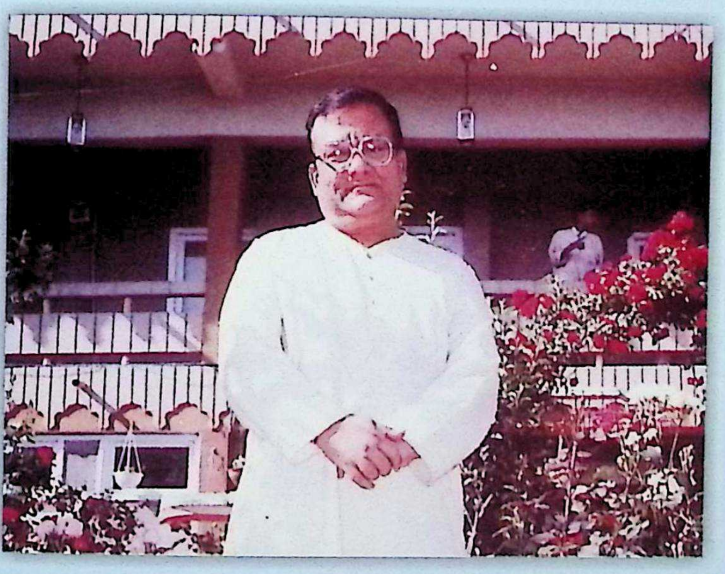

रानीखेत में श्री शिवेन्दु लाहिड़ी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

१८. अतिथिभावः ।

१९. साक्षिभावः ।

२०. समाप्तिभावो न तु विपरीतभावसंवर्द्धनम्

२१. बोधो न तु पर- विचाराणामेव ग्रहणम् ।

२२. बुद्धिः ।

२३. चिच्छक्तिः ।

२४. अन्तर्मुखीप्रक्रिया ।

२५. बहिर्मुखीप्रक्रिया ।

२६. ध्यातृविहीनध्यानम् ।

२७. बन्धनमुक्तिः ।

२८. एकाग्रता ।

---

१८. अतिथिभाव
१९. साक्षीभाव
२०. समाप्ति भाव, न कि विपरीत भाव का संवर्द्धन
२१. अनुभूति न कि विचारों का मात्र उधारीकरण
२२. बुद्धि
२३. चित्शक्ति
२४. अन्तर्मुखी प्रक्रिया
२५. बहिर्मुखी प्रक्रिया
२६. ध्याता के विना ध्यान
२७. बन्धनमुक्ति
२८. एकाग्रता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

२९. समग्रजागर्त्या सहावस्थितिः ।

३०. एकाकित्वम् ।

३१. ऐकान्तिकता ।

३२. यथार्थसत्यम् ।

३३. मान्यसत्यम् ।

वयं दीक्षापूर्वगोष्ठीषु दीक्षा समारोपेषु पुनरीक्षणोपवेशेषु विभिन्नेषु प्रसङ्गेषु भिन्नस्थितिसु च एतासां सार गर्भितशब्दावलीनां श्रवणं कुर्मः किन्तु अतिशीघ्रतया विस्मराम । नैतान् विस्मरेम । बीजभूतानामासां सूक्तीनां गूढभावान् जीवनस्य प्रत्येकं क्रियाकलापेषु पारस्परिकसम्बन्धनिर्वाहेषु च एवं व्यवहरेम कथमपि आसां साहचर्यं विस्मृतं न स्यात् ।

---

२९. समग्र जागरुकता के साथ संकेन्द्रण

३०. एकाकिकत्व

३१. एकान्तता

३२. यथार्थसत्य

३३. मान्यसत्य

हम दीक्षा पूर्व गोष्ठियों, दीक्षा समारोहों एवं पुनरीक्षा बैठकों मे विविध प्रसंगों एवं विभिन्न स्थितियों में इन सारगर्भित शब्दावलियों को सुनते हैं किन्तु शीघ्र भूल जाते हैं। हम इन्हें विस्मृत न होने दें। इन बीज रूप सूक्तियों के गूढ भाव को जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप एवं पारस्परिक सम्बन्धों में इस प्रकार उतारें कि किसी भी प्रकार से इससे साथ न छूटे। रत्न की भाँति इन्हें सँजोयें। यह सँजोना इस

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

महार्घरत्नवद् रक्षेम । एतद्धारणं किञ्चिद्वैशिष्टपूर्वकं यथा विद्यते न ह्यत्र किञ्चित्सम्मोहनं न वावरोधः । सुविधाकल्पितावधारणानां विचाराणां वा न हि शरणस्थलम् । कस्यचिन् मनोनिर्मितावरमस्तिष्ककल्पितनिर्जीवं नैतत् चिन्तनम् । जीवनदायिका गभीरा प्रक्रियैषा विद्यते । एताः सूक्तीरात्मसात् कुर्वन्तु । किञ्च क्रियाभ्यासेन परमपवित्रसत्तामाप्नुवन्तु ।

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे षट्चत्वारिंशदध्यायः॥

मायने में विशिष्ट है कि इसमें न तो किसी प्रकार का सम्मोहन है और ही अवरोधन। यह सुविधाजनक अवधारणाओं/ विचारों की शरणस्थली नहीं है। यह किसी औसत मस्तिष्क की निर्जीव उपज भी नहीं है। यह एक अति जीवन्त प्रक्रिया है। इन सूक्तियों को आत्मसात् करें तथा क्रियाभ्यास द्वारा उस परम पवित्र सत्ता का स्पर्श करें॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ सप्तचत्वारिंशदध्यायः

क्रियायोग आभ्यन्तरसत्ता-विज्ञानं नेह जायमानानुभूतीनां कस्यचिद्विश्वासबन्धनस्यावश्यकता विद्यते ।

अध्यात्मनाम्ना धर्मनाम्ना च निर्मित - व्यापारिक - सम्मोहकशक्तीनां कृते समुपयोगिनं तथा स्वात्मानं बहुविशिष्टं - धार्मिकत्वेन स्थापनं ख्यापनं वा केवलं जनसम्मर्दजनिताराजकतायामवस्थितिरेवेति मन्तव्यम् ।

क्रियायोगस्तु पवित्रसमन्वयपूर्णजीवनस्य कृते निमन्त्रयति । अयं भावो मनोनिर्मित - बहिर्मुखीभूत गतिविधीनां श्वासावरोधकगलपाशाद् मोचयति क्रिया योगः । इत्थ - मेकतः

अध्याय-४७

क्रियायोग : आभ्यन्तर अस्तित्वका विज्ञान है तथा इस में होने वाली अनुभूतियों को किसी विश्वास बन्धन की आवश्यकता नहीं है ।

आध्यात्मिक एवं धार्मिक मण्डी की सम्मोहक शक्तियों के लिए उपयोगी होना और अपने को बहुत विशिष्ट तथा धार्मिक मान लेना एक प्रकार की भीड व अराजकता में जीना है । क्रियायोग हमें एक सामंजस्य एवं समन्वयपूर्ण जीवन के लिए आमंत्रित करता है अर्थात् मन की बहिर्मुखी गतिविधियों की गलाघोंटू पकड से मुक्त करता है । एक प्रकार के स्फटिकीकरण तथा अन्तर्मुखीकरण की आवश्यकता है । जब तक अन्तर्मुखी यात्रा आरम्भ नहीं होती है, जो कुछ भी हम करते हैं वह

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्फटिकीकरणमन्तर्मुखीकरणस्यावश्यता भवत्येव ।

यावदन्तर्मुखी क्रिया न प्रारभते तावद् यत्किमपि क्रियते तत्पूर्णतया व्यर्थमेव । जीवनस्य कालस्य चापचय एव । अन्तर्मुखयात्रालग्न एव आनन्दमयो भवितुं शक्नोति ।

अस्माकं जीवने कथानां विश्वासानां कल्पनानां भ्रान्तीनामसत्यानां किमर्थमावश्यकता विद्यते ? किमर्थमस्माकं कथितसत्यं न किञ्चिद् विद्यते किन्तु तदसत्यमेव सुसुन्दरमिव । महद्वार्तायुक्तसूक्तय: क्षुद्रस्य मनस: अवधारणामात्रमेव पावनमिव च लक्ष्यन्ते ।

क्रियायोगस्तु प्रयोगात्मकोऽस्तित्वपरकश्चास्ति । इह

पूर्ण रूप से व्यर्थ है। यह हमारे जीवन तथा समय का अपचय है। केवल अन्तर्मुखी यात्रा का व्यक्ति ही आनन्दमय हो सकता है।

हमारे जीवन में कथाओं, विश्वासों, कल्पनाओं, भ्रान्तियों एवं झूठों की आवश्यकता क्यों है ? क्यों हमारे तथाकथित सत्य कुछ भी नहीं बल्कि सुन्दर झूठ, बडी-बडी बातों से युक्त सूक्तियों तथा क्षुद्र मन की पावन अवधारणायें मात्र हैं ?

क्रियायोग प्रयोगात्मक एवम् अस्तित्व परक है। इसमें किसी प्रकार के विश्वास की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है उस साहस की जिसके द्वारा वह अनुभूति प्राप्त हो सकती है जो कि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कस्यापि विश्वासक्रमस्य आवश्यकता न विद्यते । तस्यैव साहसविशेषस्यावश्यता विद्यते येन सानुभूर्तिर्लब्धुं शक्येत विश्वासद्वारा प्रक्षेपितः प्रोत्साहितश्च नास्ति । आवश्यकतास्ति तस्य रूपान्तरणोपलब्धेर्याहि मनोनिर्मितछलयोजिता नास्ति ।

क्रियायोग आभ्यन्तरसत्ताविज्ञानम् । इमं ज्ञात्वाऽभ्यसेत् । तदैव पीडा-यन्त्रणोत्तेजनादिभिर्मुच्यते । नेदमावश्यकं यद् योगिनः काल्पनिकोपाधिभिर्युक्ता भवेयुर्यथा-परमहंसावतारा- नन्दगिरि पर्वतवनादिभिस्तथा तेषां माध्यमेन स्वीयस्वार्थपूर्णलालसानां पूर्तये यत्नं क्रियात् ।

एको योगी निर्मनस्कतायाः शुद्धप्रज्ञाया उर्जो

विश्वासद्वारा प्रक्षेपित एवं प्रोत्साहित नहीं है । आवश्यकता है उस रूपान्तरण की जो मन द्वारा छलयोजित नहीं है ।

क्रियायोग आभ्यन्तर सत्ता का विज्ञान है । इस विज्ञान को समझना एवम् अभ्यास करना है । केवल तभी पीडा, यंत्रणा एवम् उत्तेजना से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है । यह आनन्द या वह आनन्द, यह गिरि या वह गिरि से विभूषित किया जाय और उनके माध्यम से अपनी स्वार्थपरक लालसाओं को पूरा होने की अपेक्षा की जाय । एक योगी "निर्मनावस्था" के शुद्ध समझदारी की ऊर्जा का वैज्ञानिक होता है । क्या आप मैक्सप्लान्क को परमहंस मैक्सप्लान्क कह

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वैज्ञानिको भवति । किं मैक्सप्लान्कमहाशयः परमहंसेन भूष्येत !! अथवा आइन्ष्टीनः अवतारशब्दवाच्यः स्यात् ?

श्रीलाहिडिमहाशय अपि केवलं लाहिडिमहाशय इत्येव तिष्ठतु यतः ते हि प्रत्यक्ष- बोधात्मक्रान्तर्मुखीकरणक्रियाया महान्तो वैज्ञानिका अभूवन् । जयति लाहिडिमहाशयः ॥

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे सप्तचत्वारिंशदध्यायः॥

सकते हैं अथवा आइन्स्टीन को अवतार आइन्स्टीन ? लाहिडी महाशय को मात्र लाहिडी महशय ही रहने दें क्योंकि वह सम्भवतः प्रत्यक्ष बोध की अन्तर्मुखी क्रिया के महानतम वैज्ञानिक थे ॥

॥ जय लाहिडी महाशय ॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथाष्टचत्वारिंशदध्यायः

क्रियायोगगन्तव्यं मनोविलयपूर्वकं समाविर्भूतगहनतमधार्मिकतैव । अयंभावः निर्मनीभावावस्थाया नूतनधर्मस्यालिङ्गलनं यत्र हि मनसः सर्वविध-प्रवृत्तीनां समाप्तिर्जायत एव ।

किञ्च लययोगस्य गहनधार्मिकता नाम सच्चिदानन्दबोधपूर्वं भवेदेतद् बोधात्मकं यद् वयं यदि मनसः समुत्पन्नां गतानुगतिकां चतुर्विधां धार्मिकतां बुध्यामहे यत्र वयं स्मः तत एव यात्रायाः प्रारंभः समुचित इति ।

१. प्रथमं तावद् धर्मोत्पत्तिरज्ञानादेवाभवत्

अहङ्कारः स्वीयाज्ञानं न स्वीकरोति ।

अध्याय-४८

क्रियायोगका गन्तव्य मन के विलय से आविर्भूत गहन धार्मिकता है अर्थात् "निर्मना" या नूतन मन के धर्म का आलिंगन है जिसमें मन की समस्त ऋणात्मक प्रवृत्तियों का भी ऋणीकरण हो जाता है। परन्तु लय योग की इस गहन धार्मिकता यानी सत्-चित्-आनन्द (जो कि प्रथम क्रिया पत्र में नीचे लय योग वाणी के रूप में संक्षेप में उल्लेखित है) पर ध्यान देने के पूर्व यह शायद लाभदायक होगा की हम मन से उत्पन्न गतानुगतिक चार प्रकार की धार्मिकताको समझ लें क्योंकि हम जहाँ पर है हीं से यात्रा प्रारम्भ करना उचित होगा।

प्रथम अज्ञान की उपज है :

अहंकार अपने अज्ञान को स्वीकार नहीं करता है। इसलिए यह

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अत एव दृढतया कथयति यदहं यत् किमपि वेद्मि तदेवान्तिमसत्यम् । श्रेष्ठञ्चेति । एष एव धर्मनाम्ना धर्मोन्माद-रूढि-वाद-समस्तरक्तप्रवाहञ्च जनयति । कदाचिद् अन्यापेक्षया धर्मनाम्नैवाधिकरक्तः प्रवाहितः । एष धर्मः कथयति युद्धोऽपि धार्मिको भवितुं शक्नोतीति । धर्मयुद्ध - क्रूसेडजेहादादयः । यदि युद्धं पवित्रंतर्हि किमस्ति ह्यपवित्रम् । मनसोऽनया विकृतधार्मिकतया स्वीयजीवनपूर्णविध्वंसाय मानवाः सम्प्रेरिताः । इत्थं तदीयसमग्रताया विरुद्धमार्गेषु नीत्वा तदीयसत्यनिष्ठां संहृतवती ।

चित्तवृत्तेर्विश्त्तेर्विश्वासपद्धतय इमा मानवतां वञ्चयितुं तथा मनुष्यमात्रं सर्वदा दुःखसुखेषु भ्रामयितुं व्यूहरचना एव नान्यत् किञ्चन ।

दृढतापूर्वक दावा करता है कि वह जो कुछ जानता है, वही अन्तिम एवं श्रेष्ठतम है । यही धर्म के नाम पर धर्मोन्माद, रुढिवाद और समस्त रक्तपात को जन्म देता है । शायद किसी और नाम की अपेक्षा धर्म के नाम पर अधिक रक्त वहाया जा चुका है । यह "धर्म" कहता है कि युद्ध भी धार्मिक हो सकता है - धर्मयुद्ध, क्रूसेड, जिहाद इत्यादि । यदि युद्ध पवित्र है तो अपवित्र क्या है ? मन की इस विकृत धार्मिकता ने मनुष्य को जीवन ध्वंस करने के लिये उकसाया है और इस प्रकार उसकी समग्रता के विरुद्ध ले जाकर उसकी सत्यनिष्ठा का सहार किया है । चित्तवृत्ति की ये विश्वास पद्धतियाँ मानवता को धोखा देने तथा मनुष्य को शाश्वत् दुःखी बनाये रखने की व्यूहरचनायें मात्र हैं ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

२. द्वितीयं भयाद्धर्मोत्पत्तिरभवत्

सर्वविधभया-पराधबोधाश्च कल्पनाभिः कथाभिरनुमानैश्च प्रवर्तन्ते । इह मनुष्यः किं केवलं दण्ड-भोगाय पश्चात्तापायैव समागतः । अथवा किमर्थं जन्म गृह्णाति ?

नरकधारणा भयस्यान्तिमं स्वरूपं वर्तते ।

३. तृतीयं लोभाद्धर्मोत्पत्ति

सर्वविधोद्भटकल्पना अपेक्षा महत्वाकाङ्क्षा लालसा लोभाश्च मनोरचित-धार्मिकतामेव प्रोत्साहयितुं समुत्पन्ना जायन्ते यैर्मनुष्यः सर्वदैव समुत्तेजनायां विध्वंसे च सन्निविष्टो भवेत् । स्वर्गावधारणा चरमो लोभ इत्युक्तं भवति ।

द्वितीय भय की उपज है :

सभी प्रकार के भय और अपराध बोध कल्पनाओं, कथाओं तथा अनुमानों के माध्यम से प्रवर्तित होते हैं। यहाँ मनुष्य मानों केवल दण्ड भोगने तथा पश्चाताप करने के लिए ही जन्म लिया है। नरक की अवधारणा भय का अन्तिम स्वरूप है।

तृतीय लोभ की उपज है :

सभी प्रकार की उद्भट कल्पना, अपेक्षा, आशा, महत्वाकाँक्षा, लालसा और लोभ मन विरचित इस धार्मिकता को प्रोत्साहित करने के लिये ही उत्पन्न किया जाता है जिससे कि मनुष्य सदैव उत्तेजना एवं गडबडी में फँसा रहे। स्वर्ग की अवधारणा चरम लोभ है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

४. चतुर्थं धर्मशास्त्रेभ्यो धर्मोत्पत्ति

समस्तधारणा विरुद्धधारणाः सामञ्जस्यविषयाः सर्वाधिकविवादा विरोधाः समस्ताग्रहा निषेधाः सर्वविधपवित्रधारणा वृहद्वार्ताः सूक्तयो मनसा निर्मितपूर्वापरधारणा नान्यत् किञ्चन किन्तु सूकरविष्टा इव सन्ति । उपर्युक्तेषु चतुर्विधधर्मप्रकारेषु न किञ्चित्सत्यं वर्तते यतो हि ते सर्वे चित्तवृत्तेः समुत्पन्नाः ।

५. अथ निर्मनीभूतधर्मस्य त्रिविधस्वरूपं बुध्यामहे

त्रिभिरङ्गैरेष धर्मःकेवलमेक एव । एषा सुगहनधार्मिकता धर्मनाम्नि सुघटितसमस्तावेगभावुकताः या हि रुग्णा कुत्सिता

चतुर्थ धर्म शास्त्रों की उपज है :

समस्त धारणायें, विरुद्ध धारणायें, सामन्जस्य, सभी प्रकार के विवाद एवं विरोध, समस्त आग्रह एवं निंषेध, सभी पवित्र अवधारणायें एवं बडी-बडी बातें व मुहावरें, मन की सभी प्रकार की उपज तथा पूर्व धारणायें कुछ भी नहीं बल्कि सुअर की लीद जैसी हैं ।

चित्तवृत्ति से उत्पन्न धर्म के उपयुक्त चारों प्रकारों में कोई सत्य निहित नहीं है ।

अब हम "निर्मना" के धर्म को इसके तीन आयामों में समझने का प्रयास करें । यह धार्मिकता तीन अंगभूत अवयवों के साथ केवल एक ही है । यह गहन धार्मिकता धर्म के नाम पर घनीभूत समस्त आवेगों एवं भावुकताओं को जो कि रुग्ण, कुत्सित एवं दुर्गन्धपूर्ण हैं,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दुर्गन्धपूर्णाश्च सन्ति ता दूरयति ।

चित्तवृत्तिरेव यष्मान् भ्रष्टाचरणे विलेपयति निर्मनीभावस्तु सत्यपथं निर्देशयति ।

मनसो दुरूपयोगो भवेदेव न तु निर्मनीभावावस्थायाः ।

निर्मनावस्थाया एष धर्मो भवेन्मनोनिर्मितपूर्वाग्रहेभ्यो मुक्तेर्विज्ञानम् । अस्य कृते कस्यचित् पैगम्बरस्य, उद्धारकस्य, पोपस्य अवतारस्य, परमहंसस्य, महामण्डलेश्वरस्य च नावश्यकता विद्यते । वोधमय- प्रज्ञायाशक्तिरेवापेक्ष्यते । मनस्तु सूचनाः वितरति । निर्मनाऽवस्था रूपान्तरणं प्रोत्साहयति ।

१. निर्मनावस्थागतधार्मिकतायाः प्रथमं सोपानम्

सत् शुद्धजीवनमतिथिभावश्च । एतदेवातिथिभावेन

दूर कर देता है । चित्त-वृत्ति आपको भ्रष्टाचार में लिप्त करता है जवकि "निर्मनावस्था" (मनोविकृति नहीं) आपक सही पथ प्रदर्शन करता है। आप मन का दुरूपयोग कर सकते हैं किन्तु "निर्मनावस्था" का नहीं । "निर्मनावस्था" का यह धर्म आपके मन के पूर्वाग्रहों से मुक्ति का विज्ञान है। इसे किसी पैगम्बर, उद्धारक, पोप, अवतार, पर महंस, महामण्डलेश्वर इत्यादि की आवश्यकता नहीं है। समझदारी एवं प्रज्ञा की शक्ति ही पर्याप्त है । मन सूचना प्रदान करता हैं, "निर्मनावस्था" रूपान्तरण को प्रोत्साहित करती है ।

"निर्मनावस्था" की धार्मिकता का प्रथम आयाम :

सत् शुद्ध जीवन-अतिथिभाव । यह है अतिथि के भाव से जीवन-यापन करना । हम सभी अतिथि हैं । कोई भी इस जगत् का स्थायी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जीवननिर्वाहः । वयं सर्वेऽतिथयः । न कश्चिदस्य जगतः स्थायिनिवासी। एकोतिथिः सर्वविधाशक्तिं विहाय पूर्णसमन्वयेन वसति। जीवनप्रवाहस्य जीवत्स्वरूपे न किञ्चिद् असमन्वयं समुत्पादयति ।

२. निर्मनावस्थागतधार्मिकतायाः द्वितीयं सोपानम्

चिदेव तत् । शुद्धचैतन्यं साक्षिभावश्चेति । एक साक्षीव विना विकल्पं चेतनाविरोधिविचाराणां विरोधं विनैव सदस्तित्वे स्थितिरित्यर्थस्तु एवं विधा जागतिर्यस्यां स्थितप्रज्ञभावावस्थितिरेव । नान्यत् किञ्चिदित्यर्थः ।

३. निर्मनावस्थागत-धार्मिकतायाः तृतीयं सोपानम्

आनन्दः । शुद्धहर्षात्मके न त्विन्द्रियविलासः । स च

निवासी नहीं है । एक अतिथि विना आसक्ति के किन्तु पूर्ण सामन्जस्यबोध के साथ रहता है। जीवन-प्रवाह के जीवन्त स्वरूप में वह किसी प्रकारकी गडबडी उत्पन्न नहीं करता है ।

"निर्मनावस्था" की धार्मिकता का द्वितीय आयाम :

चित्त-शुद्ध चैतन्य-साक्षीभाव । यह है एक साक्षी की तरह से विना किसी विकल्प के, चेतना को प्रतियोगी विचारों की रणभूमि में परिवर्तित किये विना, अस्तित्व में रहना-एक ऐसी जागरुकता जिस में स्थितप्रज्ञ भाव से कोई समझौता नहीं ।

"निर्मनावस्था" की धार्मिकता का तृतीय आयाम :

आनन्द-शुद्ध हर्ष (विलास नहीं) समाप्तिभाव । यहाँ समाप्ति पर जोर दिया गया है न कि विरोधों के संवर्द्धन के जाल में फँसने पर ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

समाप्तिभावः ।

इह समाप्तावेवाग्रहो न तु विरोधजाले पतनाय यत्नः । अशुभस्य कृत्रिमविरोधो न शुभं जनयति । एतत्तु चित्तवृत्तीनां धूर्ततापूर्णप्रवाह एव ।

सौम्यं तदैव समुदेति यदा सर्वमशुद्धं समाप्यते । स्वार्थपूर्णकामानां कारणेन समुत्पन्नदुःखं निर्मनस्त्वेन समाप्यते तदा मङ्गलमयहर्ष आनन्दो वा समुदेति ।

लययोगस्येमा उपर्युक्ता वाचः शृण्वन्तु । अध्यात्मनाम्ना प्रसारितविपण्यां न भ्रमन्तु । दीक्षासमारोहे दीयमानपत्रेषु लिखित्वा वितीर्यते । सर्वोच्चगृहस्थयोगिनः सरलनिष्कपटशब्देषु सरलतया सर्वं प्रतिपादितम् । न हि

अशुभ का कृत्रिम विरोध शुभ को जन्म नहीं देता है। यह तो चित्त-वृत्ति की ही धूर्तता पूर्ण चाल है। अच्छाई तभी विकसित होती है जबकि बुराइयाँ पूरी तरह से समाप्त हो जाती हैं , जब स्वार्थपूर्ण लालसाओं एवं कामनाओं के कारण उत्पन्न दुःखका निर्मना प्रक्रिया के परिणामस्वरूप अन्त हो जाता है तब मंगलमय हर्ष की स्थिति का उदय होता है।

लय योग की उपर्युक्त मौलिक वणियों, जो कि प्रथम सोपान की क्रियायोग दीक्षा समारोह में समझायी जाती हैं, पर ध्यान करें। इस प्रकार सर्वोच्च गृहस्थयोगी के सीधे एवं निष्कपट सन्देश को समझने का प्रयास करें तथा आध्यात्मिक मण्डी के निरर्थक वाग्जाल में भ्रमित न हों जो कि लाहिडी महाशय के कथन के रूप में बेचे जा रहे हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

धूर्तानां पाखण्डानां वाग्जालेषु पतितव्यं ते हि लाहिडिमहाशयकथनत्वेन प्रसारयन्ति तत्सर्वं निरर्थकमेव ।

लाहिडिमहाशयः पृथिव्यामस्यां भवतः सर्वान् दुर्बलगतिहीनसान्त्वनासु पातनाय मनोनिर्मितभ्रमिसु मोहपूर्णप्रसन्नतायै च नागतः किन्तु मनोनिर्मितसर्वविधकारागाराणां विध्वंसनाय समागतः । क्रियायोगं जानन्तु तस्याभ्यासं च सततं कुर्वन्तु तदैव तत्सत्यं प्राप्स्यन्ति यद्धि लाओत्से-लाहिडिमहाशयाभ्यां प्राप्तमेव ॥

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्ड अष्टचत्वारिंशदध्यायः॥

लाहिडी महाशय इस धरती पर आपको दुर्बल एवं गतिहीन सांत्वनाओं में प्रसन्न रखने के लिये नहीं बल्कि मन-निर्मित कारागार को ध्वंस करने के लिये अवतीर्ण हुए थे । क्रियायोग को समझें और इसका अभ्यास करें तभी आप उसे निश्चित रूप से प्राप्त कर सकते हैं जिसे कि लाओत्जु और लाहिडी महाशय ने लय (निर्मनावस्था) में प्राप्त किया था ॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथैकोनपञ्चाशदध्यायः

नानुभवेन किन्तु शून्यतया यद् दृश्यते सैव तादृशी जागर्तियस्यां प्रीतिकराप्रीतिकर-वर्गीकृत-विकल्पानां पूर्णतयाऽनुपस्थित्या न काचिदुत्तेजनोपद्रवश्च सम्भवति। एतद्धि ध्यानम्। तदाऽनिर्वचनीयाशीर्वादपूर्ण-परममंगलमयानन्दो मूकतया समाविर्भवति। एष आनन्दः सर्वदा नव्यो भवति। यद्यपि प्रत्येकं क्षणे तदेव स्यात्। एषोऽत्यन्तसंवेदनशीलोऽपि अत्यन्त-प्रबलः सशक्तश्च भवति। एष खलु तृण-पर्ण-गतोऽत्यद्भूतशक्तिवान् यो हि आकस्मिक-मृत्युं सहर्ष-वरणाय सन्नद्धः। एष परिपूर्णतया समायाति तथा स्फुलिङ्ग

अध्याय-४९

अनुभव से नहीं बल्कि शून्यता के आयाम से जो देखा जाता है वही तो ऐसी जागरुकता है जिसमें प्रीतिकर एवम् अप्रीतिकर में वर्गीकरण अथवा विकल्पों की पूर्णतया अनुपस्थिति हेतु कोई उत्तेजना एवम् उपद्रव सम्भव नहीं हो पाता है। यही तो है ध्यान। तब एक अनिर्वचनीय-आशीर्वाद के साथ परम मंगलमय का मूक आगमन होता है। यह हर बार आश्चर्यजनक ढंग से वनीन होता है, यद्यपि प्रत्येक समय शायद वह वही होता है। यह अति संवेदनशीलता के बावजूद भी अत्यन्त प्रबल एवं सशक्त होता है। यह तो तृण के एक पर्ण की वह अद्भुत शक्ति है जो एक आकस्मिक मृत्यु का सहर्ष वरण कर सकती है। यह परिपूर्ण रूप से आता है तथा झलक से ही

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इव क्षणेनैव निर्गच्छति च । किन्तु स विष्फुलिङ्गः सर्वविधकालमहाकालाभ्यां सुदूर इत्यवधेयम् ।

निर्मनोवस्थायाः पारावारे विलीनमेव हि क्षुद्रस्य मनसः ओङ्कारे विष्फोटो वर्तते यो हि यथार्थ-ध्यान दिव्यावेशयोरारम्भ उच्यते ।

अनुभवविहीनचैतन्यसहजोदाहरणम्

यदापि कश्चिदेतद् बोद्धुं समर्थायते यद् मानापमानयोर्मिथ्यात्वं स्वार्थपरतायाश्च गतिविधयः सर्वा अपि मनस एवकार्य मिति तदा तयोर्न कश्चित्प्रभावः तस्मिन् सम्भवति । तदानीं तयोर्नानुभूतिस्तमिन् किन्तु स्वं परितो जायमानघटनां प्रति सचेतनश्च भवति । परिपक्वता हि मनसः पारे विद्यते । मनः सर्वदा ह्यपरिपक्वमेव भवति । न हि

चला जाता है परन्तु वह झलक सभी काल एवं महाकाल से परे होता है।

"निर्मना" के पारावार में विलीन हो जाना ही तो नगण्य या क्षुद्र मन का योनिमुद्रा में ओंकार का विस्फोट है जो कि यथार्थ ध्यान एवं दिव्य आवेश का आरम्भ है।

ध्यान, चित्तवृत्ति की अपनी उलझनों व अवरोधों, अपने कल्पना जाल एवं मिथ्याभिमान तथा आपाधापी व भ्रान्तियों के जाल में फँसने की संलिप्तता नहीं बल्कि उसका सम्पूर्ण विनाश है।

अनुभव रहित सचेतना का सहज उदाहरण :

जब कोई वास्तव में यह समझने के लिए पर्याप्त रूप से परिपक्व हो जाता है कि मान और अपमान मन के मिथ्याभिमान एवं स्वार्थपरता की गतिविधियाँ हैं तब मान अथवा अपमान उसके ऊपर

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

परमपवित्रस्य वस्तुनोऽनुभवं मनः कुरुते यतो मनसोऽनुभूतिर्व्यर्थमेव हि

अनुभवघटना हि स्वतः प्रमाणं यत् तन् न शाश्वतमिति । बोधस्तु संकेतमात्रं येनाग्रगतिप्राप्तये प्रेरणा स्वत एव जन्यत इति ।

इयं गतिः सर्वदा भवतु । कदापि निष्प्राण-प्रवाहविहीनमतवादेषु गतिरियं नावरुद्धा भवेत् । ते ह्यद्वितीयमानवा धन्याः कृतकृत्या भवन्ति ये दिव्य-परमानन्द-साम्राज्येषु प्रविष्टाक्त न त्वहङ्कार युक्तव्यक्तयः । जयति क्रियायोगः ।

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्ड एकोनपञ्चाशदध्यायः॥

कोई प्रभाव नहीं छोड पाता है। इस अवस्था में उसे किसी प्रकार के मान या अपमान की अनुभूति नहीं होगी परन्तु वह आसपास घटित हो रही ऐसी गतिविधियों के प्रति सचेतन रहेगा। परिपक्वता इस आयाम से सम्बन्धित है जो मन के परे है। मन सदैव अपरिपक्व होता है। मन कभी भी उस परम पवित्र की अनुभूति नहीं कर सकता है क्योंकि समस्त अनुभव निरर्थक हैं। अनुभव का घटित होना ही इस तथ्य का पर्याप्त प्रमाण है कि वह शाश्वत नहीं है। यह एक ऐसा संकत मात्र है जिससे अग्रसर होने की प्रेरणा प्राप्त होती है

यह यात्रा निरन्तर चलती रहनी चाहिए। कभी भी निष्प्राण एवं प्रवाहहीन मतवाद में अवरुद्ध न हो जायें। वे अद्वितीय मानव प्राणी (अहंकारी व्यक्तित्व नहीं) धन्य हैं जो कि दिव्य परमानन्द के साम्राज्य में प्रविष्ट होते हैं ॥जय क्रियायोग ॥ ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ पञ्चाशदध्यायः

संधानञ्च क्रिया प्रोक्ता शंका मनो न संशयः ।
शंकासु नावतिष्ठन्तु संधानेषु भवन्तु च ॥१॥
क्रियायोगमाध्यमेन प्रतीयते यथार्थतः ।
चित्तवृत्तिसमुत्पन्नमायाजालसमाप्तितः ॥२॥
उदेति किल चैतन्यमेतदुत्थानमुच्यते ।
ततो गहनता तावत् प्रज्ञायाः स्वरूपं स्वयम् ॥३॥
प्रारभ्यते ज्ञायतां तज्जीवनं खलु तन्मतम् ।
तदानीं किल सौन्दर्यं परमानन्दसंयुतम् ॥४॥
तुच्छं सर्वं समाप्येत तद्रम्यं सर्वप्राणिनाम् ।
पुनरुत्थानंमेतद्धि बाइविले प्रतिपादितम् ॥५॥

अध्याय-५०

संधान क्रिया है, शङ्का मन। इसी लिए शंकाओं में न रहें केवल सन्धान में लगें ॥१॥ क्रियायोग के माध्यमे से यथार्थ रूप में चित्तवृत्ति के द्वारा निर्मित माया जाल के समाप्तिद्वारा वह विचित्र एवं विशिष्ट चैतन्य उपलब्ध होता है। यही उत्थान है। उसके बाद गहनतम प्रज्ञा उदित होती है। उससे जीवनका बोध होता है या वही प्रज्ञा ही जीवन है। उससे परम रमणीय परमआनन्द युक्त सौन्दर्यका उदय होता है। समग्र तुच्छतायें स्वतः समाप्त हो जाती हैं। इसे ही बाइबिल में पुनरुत्थान कहा गया है ॥२-५॥

उसे ही श्रद्धेय गुरुवर श्री शिवेन्दु लाहिडी लययोग कहा करते हैं। लोक में आप सब फूल के तरह खिलें ॥६॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लाहिडि-लययोगोऽपि प्रोच्यते श्रीशिवेन्दुना ।
पुष्पवदेव लोकेषु विकसन्तु यथार्थतः ॥६॥
अप्रमे यमनामयमज्ञयं ज्ञायते ततः ।
शंका प्रतिक्रिया प्रोक्ता ह्यज्ञेयं तेन रुध्यते ॥७॥
अनुभूर्तिर्हि दुःखस्य मूलं कारणमुच्यते ।
अवलोकनतो नूनं प्रवाहस्तु विचारकः ॥८॥
नश्येत क्रियाया तावत् अहंभावो न संशयः ।
क्रियायोगः कर्मकाण्डं नास्ति मुक्तिस्तु प्रोच्यते ॥९॥
यथार्थाभ्यासतो नूनं सर्वमेव ह्यवाप्यते ।
लाहिडिश्रुतिरमृतायते ॥१०॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे पञ्चाशदध्यायः ॥

उससे अप्रमेय आनामय तथा अज्ञेय का बोध विकसित होता है। शंका प्रतिक्रिया है उसी शंका से अज्ञेय का अवरोध होता है ॥७॥

दुःखों का मूल कारण अनुभव है। उस के निरीक्षण से उस विचार प्रवाह का नाश हो जाता है। उसके बाद क्रिया के सतत अभ्यास से अहङ्कार नष्ट हो जाता है। क्रियायोग कर्मकाण्ड नहीं है वह तो उससे मुक्ति है। यथार्थरूप में किए गए अभ्यासद्वारा सब कुछ अनामय अज्ञेय बोधित हो जाता है।

लाहिडी परम्परा अमर है ॥८-१०॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथैकपञ्चाशदध्यायः

मुद्रा नानुकरणं न वाभिनयो न चात्मश्लाघाकारणं न हि
गरिम्णः प्रतीकाः किन्तु स्वाभाविका अभिव्यक्तयः ॥१॥
जीवनं नाम प्रत्यक्षबोध इत्यवधार्यताम् ।
यथार्थज्ञानवत्वं हि न तर्कमुखतां व्रजेत् ॥२॥
सत्यं गहनयाथार्थ्यं गतिशीलं क्रियात्मकम् ।
तर्का मिथ्याभिमानेन हता इत्यवधार्यताम् ॥३॥
खेचरी पूर्णशून्यत्वं मनो नात्र निवेशते ।
निर्मनस्त्वेन प्रज्ञायाः सचैतन्यमिहोच्यते ॥४॥
निर्मनस्त्वं भवेन्नैव जडबुद्धेः स्थितिस्तथा ।
न मनोविकृतिर्नापि विचारहीनमित्यथ ।

अध्याय-५१

मुद्रा अनुकरण नहीं हैं, न ही वे अभिनय ही हैं । न ही आत्मश्लाघा और न गरिमा के हेतु हैं । वे तो स्वाभाविक अभिव्यक्तियाँ मात्र हैं ।

जीवन तो प्रत्यक्ष बोध ही है इसे जान लेना चाहिये । अत एव यथार्थ ज्ञानवत्ता ही वह बोध है । किसी तर्क के पीछे नहीं लगना चाहिए । सत्य तो गहन सत्य या यथार्थ है, वह गतिशील एवं सक्रिय है । तर्क तो मिथ्या अभिमान के द्वारा अभिभूत होते हैं ॥१-३॥

खेचरी मुद्रा पूर्ण शून्यत्व है । इस में मन किसी भी प्रकार से प्रविष्ट नहीं हो सकता । इसी को निर्मनावस्था कहते हैं और और यह स-चैतन्य अवस्था है । मृत जड समाधि या कोमा नहीं है ।

निर्मनावस्था जडबुद्धि की स्थिति भी नहीं है, नही कोई मानसिक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आकाशे चरणं पूर्णवेगेन ज्ञानयोगतः ॥५॥
चित्तवृत्तेः समाप्तेस्तु शरीरं स्वयमेव हि ।
बोधात्मकं भवेत्तावत्ततो मुद्रा भवत्यहो ॥६॥
पवित्रं सततं रम्यं यज्ज्ञानं तच्छरीरके ।
विद्यते सततं मुद्रामाध्यमेनाभिव्यज्यते ॥७॥
केचिन्मूर्खा अहङ्कारषोषणाय प्रयत्नतः ।
मुद्रानुकरणं कृत्वा पाखण्डं वर्धयन्त्यहो ॥८॥

भयेन लोकाः पलायन्ते किन्तु ये पलायन्ते न ते सर्वे भयभीताः तस्माज्जीवने जागर्तिसम्पन्ना भवन्तु चित्तवृत्ते र्न पतन्तु मनः कारणेन वेति । श्री श्यामाचरण-तीनकौडी-सत्यचरणानां विशिष्टोर्जा जयति ॥९॥

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्ड एकपञ्चाशदध्यायः॥

विकृति ही कह सकते हैं। साथ ही यह विचार हीनता की अवस्था भी नहीं है। यही ज्ञानयोगद्वारा पूर्ण आकाश, व्यापक, शून्य, अवकाश में विचरण करना ही है। जो भी महापुरुष ज्ञान से युक्त त्ति में अवस्थित हुए हैं और होते हैं स्वाभाविक रूप से उन से मुद्रायें प्रकट होती हैं। उन के इन मुद्राओं के अनुकरण से वह ज्ञान या अवस्था कभी भी नहीं प्राप्त किया जा सकता है। इस से यह सिद्ध होता है कि वे ठग अब व्यर्थ ही इन मुद्राओं का प्रदर्शन मूढतापूर्वक करते रहते है। जैसे संसार में, कोई व्यक्ति डरता है तो भागता है वह उस शरीर की स्वाभाविक प्रक्रिया है किन्तु जो भागते है वे सब डरे हुए नहीं हैं। इस जीवन में सदा जागरुक हो जाओ चित्तवृत्ति या मन के कारण पतित मत बनो। होसियार होकर इस में जागो। श्री श्यामाचरण तीनकौडी-सत्यचरणकी वह विशिष्ट ऊर्जा की जय हो ॥४-९॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ द्विपञ्चाशदध्यायः

वेदान्ते सहजावस्था, स्वरूपस्थितिरित्यथ ।
स्वधर्मश्च परावस्था योगोद्देश्यं प्रकीर्तितम् ॥१॥
समन्वयो भवेद् योगो मनोजीवनयोस्त्वथ ।
ऐहिकदिव्ययोस्तावत् श्री शिवेन्दुमुनेर्मतम् ॥२॥
स्वाभाविक्यामवस्थायां शरीरं ग्रन्थिभिस्तथा ।
चक्रैश्च प्रेर्यते तस्मान्मनो नात्र निवेशते ॥३॥
चित्तवृत्तेरभावत्वान् न सन्तापो विरोधिता ।
मनोदैहिकदुःखैस्तु न क्वचित् पीड्यते जगत् ॥४॥

अध्याय-५२

वेदान्त ही सहजावस्था, पतञ्जलिका स्वरूप में स्थिति, गीताका स्वधर्म और श्री लाहिडीमहाशककी परावस्था ही क्रियायोग का उद्देश्य है ॥१॥

क्रियायोगका अर्थ है समन्वय, वह है मन और जीवनका, ऐहिक-लौकि एवं पवित्र दिव्य लोकगत जीवनका यही श्री शिवेन्दु गुरुदेवका मत है ॥२॥

स्वाभाविक अवस्था में शरीर ग्रन्थियों के माध्यम से तथा चक्रों के माध्यम से निर्दिष्ट होता है उस में मनका कोई भी प्रवेश संभव नहीं होता ॥३॥

क्यों कि चित्तवृत्ति के अभाव के कारण उस में कोई भी सन्ताप, विरोधाभाष आदि कुछ भी नहीं होते । मनोगत एवं देहगत समस्याका भी उस में कोई स्थान नहीं होता । इस लिए उस अवस्था में कोई दुःख या सुख संभव नहीं होता ॥४॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

चित्तवृत्तेर्बन्धनं हि समाप्यते यदापि तत् ।
प्रबोधकालः संजात इत्याहुर्गुरवः स्वयम् ॥५॥
मिथ्याभिमानतो नैव नानुक्रिया समाप्स्यते ।
सत्यनिष्ठैव सततम सत्यं नाशयत्यहो ॥६॥
बोध एवात्र संप्रोक्तमनुशासनमित्यपि ।
क्रियायोगो न विश्वासः कारणं क्वचिदिश्यते ॥७॥
पूर्णता प्रेम संप्रोक्तं समर्पणस्य साहसम् ।
अहङ्कारसंहृतित्वे साहसं योग उच्यते ॥८॥
येऽपि शून्या भवन्त्यत्र ते पूर्णा नात्र संशयः ।
ये मृत्युवरणे शक्ताः ते सजीवा यथार्थतः ॥९॥
जयति भारतशश्वत्प्रज्ञा ॥१०॥

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे द्विपञ्चाशदध्यायः॥

जब चित्तवृत्तिका बन्धन समाप्त हो जाता है उसी समय बोध प्रारंभ होता है। यह स्वयं श्री शिवेन्दुजी का कहना है ॥५॥

मिथ्या अभिमान से कोई अनुक्रिया प्रतिक्रिया समाप्त नहीं होता। किन्तु चरम निष्ठा या क्रिया से ही असत्य नष्ट हो जाता है ॥६॥

क्रिया योग में बोध ही अनुशासन है। इस में जानना ही इस में मूल है न कि मानना। क्रिया योग में विश्वास पद्धतिका कोई स्थान नहीं है ॥७॥

प्रेम ही पूर्णता है। पूर्ण समर्पण का साहस और अहङ्कार के संहारका साहस ही क्रियायोग है ॥८॥

जो भी शून्य हो जाते हैं (अहङ्कार रहितता) वे ही पूर्ण हैं। उस पूर्णता प्राप्ति हेतु जो मृत्यु तक का वरण करने में नहीं झिझकते वे ही सजीव हैं और अमृत हैं॥९॥ भारतकी सनातन प्रज्ञाकी जय हो ॥१०॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ त्रिपञ्चाशदध्यायः

पीडा-घोरव्यथाया मूलकारणम्

१. अन्धविश्वासो ह्यनामयाज्ञेययोः क्षेत्रमतिक्रमति ।

२. शून्यता परमानन्दापेक्षयानुभवभार एवाविभवति ।

३. सम्बन्धकल्पितचित्रमेव स्वाधिपत्यं कुरुते ।

४. अहङ्कारो ह्यस्तित्वमविभवति ।

दशविधमनुशासनम्

१. न क्वापि सहसा विश्वस्ता भवन्तु ।

(क) विश्वासो यत्र तत्र पलायनं बोधस्तु भगवत्तेति ।

(ख) विश्वासः प्रलोभनं बोधः प्रशान्तिरिति ।

अध्याय-५३

१. अन्ध विश्वास ने अज्ञेय एवं अनमय के क्षेत्रों में अतिक्रमण किया है।

२. शून्यता के परमानन्द की अपेक्षा अनुभवोंका बोझ आधिक महत्वपूर्ण हो गया है।

३. सम्बन्धों में कल्पित छविका हस्तक्षेप हो रहा है।

४. अहङ्कार अस्तित्व की स्थिति पर आधिपत्य करना चाह रहा है।

दश मौलिक अनुशासन

१. कहीं भी किसी भी वस्तुपर सहसा विश्वास न करें।

(क) विश्वास भाग दौड है समझदारी भगवत्ता है।

(ख) विश्वास प्रलोभन है समझदारी प्रशान्ति है।

(ग) विश्वास उत्तेजना है समझदारी उन्मना है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(ग) विश्वास उत्तेजना बोधस्तु निर्मनस्त्वम् ।

(घ) विश्वासो धर्मान्धता संघर्षश्च बोधः स्वधर्म त्वं सहजानन्दश्चेति ।

२. भवदास्थैव सर्वोत्तमान्तिमसत्यञ्चेति नैव विचारय । भवदास्था मुक्तिकारणं भवेन्न बन्धनात्मिका ।

३. बहिर्मुखगतिमाध्यमेन मनः कल्पितवस्तुभिर्न पलायनं किन्त्वन्तर्मुखिप्रत्यक्ष-बोधात्मकाध्यवसायेन चित्तवृत्तिगतहिंसाहानये रूपान्तरणं साधय ।

४. स्थितप्रज्ञावस्थायां स्थिरा भवन्तु ।

५. सूचनात्मकज्ञानं व्यवहारायैव भवेत् । ततो मुक्तिश्च मानवमस्तिष्कवैशिष्ट्यं तत् साधय ।

(घ) विश्वास धर्मान्धता एवं संघर्ष है समझदारी धर्म प्रगाढता एवं सहजानन्द है ।

२. आपकी आस्था ही सर्वोत्तर्म एवं अन्तिम सत्य है । ऐसा विचार न करें । आपकी आस्था मुक्ति दायक हो, बन्धानात्मक न हो ।

३. बहिर्मुखी गतिविधियों के माध्यम से मनःद्वारा कल्पित वस्तुओं से पलायन न कर अन्तर्मुखी प्रत्यक्ष बोधद्वारा चित्तवृत्तिकी स्थितिका सामना करें । साथ ही चित्तकी हिंसाको समाप्त करने के लिए रूपान्तरणका सृजन करें ।

४. स्थित प्रज्ञावस्था में दृढ रहें ।

५. सूचनात्मक ज्ञान व्यवहार के लिए मात्र प्रयोग करें । उन से मुक्त होना मानव मस्तिष्क की विशेषता है, अतः मुक्त हों ।

. Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

६. जीवनं नामास्तित्वम् । न तदीयार्थान्वेषणमुचितम् ।

७. एकत्रैव जीवने कूपखननवत् खनन् नरो बोधमधिगच्छति न तु बहुत्रेति ।

८. न हि गुरुर्मनस्तुष्टये किन्तु तदीयस्पर्श एव प्रेमावतारत्वमाधारो ह्यस्तित्वगतभूमिरीश्वरश्चेति ।

९. जन्ममृत्योरावर्तने जागृहि । संसारचक्रे निरासक्तो भव । एष एव सन्यासो न तु वेशादिकम् ।

१०. ध्यानी भव । श्रद्धाञ्च ध्यायन्तु । चित्तविक्षेपं ध्यायन्तु । ध्यानास्तित्वं नानुभवविलासः । प्रत्यक्षबोधं विनाभ्यासो ह्यपवित्र इति । क्रियावत्सु प्रेमाशिषः

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे त्रिपञ्चाशदध्यायः॥

---

६. अतिस्त्व ही जीवन है । उसका अर्थ पूछना व्यर्थ है । उसका कोई अर्थ नहीं है ।

७. एक ही जगह गंभीरता से खोदने से बोध उपलब्ध होगा,बहुत जगह नहीं।

८. गुरु मानसिक तुष्टि के लिए नहीं है । उनका स्पर्श ही प्रेमावतरण है, अस्तित्वका आधार एवं ईश्वरत्व है ।

९. जन्ममृत्यु के आवागमन से जागो । संसारचक्र से निरासक्त होओ । यही सन्यास है, वेशभूषा नहीं ।

१०. ध्यानी बनो । जिस में श्रद्धा हो उस में ध्यान करो । ध्यान अस्तित्व है अनुभव का विलास नहीं । प्रत्यक्ष के विना वह अपवित्र है । क्रियावानों को प्रेमाशिष ॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ चतुःपञ्चाशदध्यायः

१. विचारोत्पन्नकृत्रिमशान्तिरुत्तेजनाया एव विपरीतरूपमतः ततः प्रबोधिता भवन्तु । तत्प्राप्तये च विविध-प्रणालीनामन्वेषणे सर्वदा व्यस्तता दृश्यते ।

२. वास्तविकबोधाय सुखदुःखेभ्यो मुक्तिरिष्यते ।

३. अहङ्कृतिसमाप्तिरेव जीवनबोधारंभः । मनःकेन्द्रितगतिर्दुर्गतिरेव निर्मनस्त्वमेव वस्तुतत्त्वम् ।

४. केदिद्वदन्ति योगस्तु श्रीलाहिडिमहाशय-
कुलान्न चाल्यते तस्माद् वयमेव हि सम्प्रति ॥
शिक्षका मुख्यतां याता न श्री लाहिडिपुत्रकाः ।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा विरक्ताः स्मो वयं तथा ।
तेषां मौर्ख्यं तु दृष्ट्वैव किं ब्रूमो नैव जानीमः ॥
॥ श्री लाहिडिक्रियागंगोत्री जयतु ॥

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे चतुःपञ्चाशदध्यायः॥

अध्याय-५४

१. विचारों से उत्पन्न कृत्रिम शान्ति उत्तेजना का ही विपरीत रूप है। अतः उस से जागो। उस बोध के प्राप्ति के लिए विविध प्रणालीयों के अन्वेषण में ही लोग हमेशा व्यस्त हैं और नष्ट होते हैं।

२. वस्तुतत्व अस्तित्व के बोध के लिए सुख और दुःखों से मुक्त होना आवश्यक है।

३. अहङ्कार की समाप्ति ही जीवन बोधका शुभारंभ है । मन केन्द्रित गति दूर्गति ही है। निर्मनावस्था ही वस्तुतत्व है।

४. कुछ मूर्ख लोग यह क्रिया योग श्री लाहिडीमहाशय के(परिवार) पुत्रों द्वारा नहीं सिखाया जाता है किन्तु हमलोग ही मुख्य शिक्षक हैं ऐसा कहते हैं उनके इन पाखण्ड पूर्ण भाषणों को सुनकर हम विरक्त हैं निराश हैं। हम कुछ भी कहने में असमर्थ हैं। वे अपना पाखण्ड वखान करते रहें कोई वात नहीं है। श्री लाहिडी गंगोत्री की जय हो॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ पञ्चपञ्चाशदध्यायः

लब्धबोधस्तु शून्यत्वमाप्तुमस्त्विवसंयुतम् ।
ऊर्जा परमचैतन्यप्राप्तये चायनं मतम् ॥१॥
क्रियायोगे रतो विद्वान् विश्वासपद्धतिं क्वचित् ।
नाप्नोति न च संकीर्णपथेन याति सर्वदा ॥२॥
विश्वासपद्धतिभिश्च बन्ध्यन्ते मानवाः सदा ।
तत्पद्धतेर्विनाशाय प्राह लाहिडिपुङ्गवः ॥३॥
"आमारपूजा सृष्टि छाडा,
एते नेइको गंगाजलेर छडा ।
एते नेइको आछे कोशा कुशी,
नेइको फुलेर राशि राशि ।

अध्याय-५५

अनुभव तो शून्यता, अस्तित्व, ऊर्जा एवं परमचैतन्य की ओर यात्राका मार्ग संकेत मात्र है । क्रियायोग में लगा हुआ विद्वान् किसी भी विश्वास पद्धति में नहीं फँसता है । साथ ही संकीर्णताओं से सर्वथा मुक्त रहता है ।

मानव विश्वास पद्धतियों के कारण हीं फंसे रहते हैं । उस विश्वास पद्धति से मुक्ति के लिए श्री लाहिडी महाशय ने स्वयं इस प्रकार गायन किया है ॥१-३॥

मेरी पूजा बहुत ही विचित्र प्रकारकी है इस में न गङ्गाजल की

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सब देवता ग्यैलो चलि,

शून्येर साथे कोला कुलि ॥"

विचित्रा मम पूजास्ति न गाङ्गं वारि चेष्यते ।
न वोपकरणं किञ्चिन्न पुष्पं चेष्यते क्वचित् ॥४॥
देवाश्चापि विसृज्यन्ते शून्यं पूर्णत्वमाप्नुयात् ।
पूजेयं योगसिद्धस्य योगिराजस्य ज्ञायताम् ॥५॥
प्रचारलोलुपानान्तु न पुण्ये (शून्ये) विद्यते रुचिः ।
लौकैषणां प्राप्तुकामा बम्भ्रम्यन्ते निरर्थकम् ॥६॥
लोभाः पापाः कामुकाश्च पथभ्रष्टा नराधमाः ।
क्षणिकतुष्टिप्राप्त्यैव वञ्चनाय जनान् सदा ॥७॥

आवश्यकता है न ही किसी विशेष उपकरण की आवश्यकता है। यहाँ तक की फूल भी आवश्यक नहीं हैं, इस में सभी देवताओं का विसर्जन हो जाता है। यहाँ शून्यता पूर्णता बन जाती है। यह पूजा योगसिद्ध योगीराज की है। प्रचार लालुपों को इस पूर्ण शून्यता में कोई रुचि नहीं है। वे लोक में अपना नाम यश फैलाने के उद्देश्य से क्रियायोगका उपयोग कर रहे हैं। और निरर्थक दौडधूप में लगे हैं। वे लोभी, पापी, कामुक, पथभ्रष्ट और नराधम क्षणिक तुष्टि हो तु, लोगों को ठगने के उद्देश्य से, द्रव्य आर्जन करने के लिए क्रियायोग का नाम रट रहे हैं। उनको इस योग से कुछ भी लेना देना नहीं है। श्री लाहिडी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

द्रव्यार्जनाय ते लौल्यात् क्रियायोगं प्रयुञ्जते ।
भवान् एव लाहिडिनां साक्षात् संदेशतां गतः ॥८॥
जीव्यतां जीव्यतां तात जीवनं न ततोऽधिकम् ।
जागृहि जागृहि तात लोभेषु न विरम्यताम् ॥९॥

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे पञ्चपञ्चाशदध्यायः॥

महाशय का संदेश तो आप स्वयं हैं। केवल जीवन जियो, जियो यही जीवन है इससे अधिक नहीं। जागो, जागो मेरे पुत्रों (शिष्यों) जागो लोभ और पापों में मत रुको, मत रुको ॥४-९॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ षट्पञ्चाशदध्यायः

(निर्वाषट्कमधिकृत्य निसृतोऽयं भावात्मककाव्यसंग्रहः)

संज्ञाहीनत्वात्केवलमस्तित्वमेवाहमस्मि ।

पर्वतप्रान्तगतनूतनमृदु - शीतलसमीरोऽस्मि,

आश्रय-बन्धनैर्मुक्तोऽहं -

प्रवाह-शीतल-सरितो निर्मल-नीरः,

नाहं देवानां शरण्यः,

न देवालयच्छायैव ग्राह्या,

पुस्तभारो न वा वरेण्यः,

परम्परामर्मज्ञता न वा,

तस्मान्नूनं केवलम् अस्मि ब्रह्म ॥१॥

अध्याय-५६
निर्वाण षट्कम् का भावार्थ

मैं हूँ अनाम अस्त्वि,
पर्वत का नूतन-मृदु-शीतल समीर,
आश्रय-बन्धन से मुक्त,
मैं हूँ प्रवाहशील सरिता का निर्मल नीर,
मैं देवों का शरण्य नहीं,
देवालय की छाया भी ग्राह्य नहीं,
पोथी का बोझ वरेण्य नहीं,
परम्पराओं का मर्मज्ञ नहीं,
मैं बस हूँ, हूँ और हूँ ॥१॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नाहं मन्दिरनिर्गतसुरभिधूमः,
न वाकर्षकायोजनाडम्बरः,
नास्म्यहमुत्कीर्णमूर्तिसु,
न प्राप्स्यथ सुमधुरगीतेषु माम्,
सिद्धान्तगतरुढबन्धनेषु नास्म्यहम्,
नान्धविश्वासफलकैर्बद्धोऽहम्,
धर्मबन्धनैः सदामुक्तः,
पुरोहितकृत्यपावनयन्त्रणासु नास्म्यहम्,
तस्मान्नूनं केवलम् अस्मि ब्रह्म ॥२॥
दर्शनजालनिर्मुक्तः,
पन्थग्रहमुक्तः,

⌘ ⌘ ⌘ ⌘ ⌘ ⌘ ⌘ ⌘
मैं मंदिर से उठता सुगंधित धुआं नहीं,
न ही आकर्षक आयोजनों का आडम्बर,
मैं रहता नहीं उत्कीर्ण मूर्त्तियों में,
पाओगे नहीं मुझे सुमधुर भजन और गीतों में,
न बँधा मैं सिद्धान्तों के लम्बे फीतों से,
न प्रज्ज्वलित हूँ अंधविश्वासों के पलीतों से,
उलझा नहीं मैं धर्म-बन्धनों में,
या पुरोहितों की पावन यंत्रणाओं में,
मैं तो बस हूँ, हूँ और हूँ ॥२॥
⌘ ⌘ ⌘ ⌘ ⌘ ⌘ ⌘ ⌘

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नाधमः, नोत्तमः,
नोपासकः, नोपास्यो वा,
जीवनमस्मि, पूर्णरूपेण मुक्तः,
सरित्कल्लोल एव मम गीतम्,
या आतुरास्ति वारिधिगमनाय,
ध्येयोऽस्ति यस्य सततप्रवाहस्य,
तस्मादस्मि केवलं ब्रह्म मात्रम् ॥३॥
नास्ति किञ्चिद्दर्शनं जीवनस्य,
न विचाराणां धूर्ततापूर्णयोजना,
नास्ति कश्चिद्धर्मो जीवनस्य,
न वा विशालदेवालयेषु ह्याराधना,

दर्शनो के जंजालों से मुक्त,
पंथों की पकड से भी मुक्त,
न अधम, न उत्तम,
न उपासक, न उपास्य,
मैं जीवन हूँ, पूर्ण रूपेण 'मुक्त',
मेरा गीत संगीत है उस सरिता का,
जो आतुर है मुक्त सागर से मिलन का,
ध्येय है जिसका सदैव चलते रहने का,
इसीलिए तो मैं हूँ, हूँ और हूँ ॥३॥
⌘ ⌘ ⌘ ⌘ ⌘ ⌘ ⌘ ⌘
कोई दर्शन नहीं है जीवन का,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नास्ति कश्चिद् देवता जीवनस्य,
न वा भारो भयानकरहस्यानाम् ॥४॥
नास्ति जीवनस्य क्वचिद् विश्रान्तिः,
न वा दारुणदुःखं चरम विनाशस्य,
जीवने नास्ति व्यथाविलासः -
क्वचिदुन्मत्त - प्रेमविकारोऽपि,
जीवने शुभाशुभयोर्नास्ति स्थानम्,
अनिच्छितपापानां कृते नास्ति क्रूरदण्डविधानम् ॥५॥
न हि सान्त्वयति क्वचिज्जीवनम् -
न वा विश्रान्तिर्विस्मृतेः समाधेः,
न जीवने क्वचिदस्ति जडचेतयोर्द्वन्द्वः,

न है विचारों की धूर्ततापूर्ण योजना ।
कोई "धर्म" नहीं है जीवन का,
न है विशाल देवालयों में आराधना ।
कोई देवता नहीं है जीवन का,
न ही भार भयानक रहस्यों का ॥४॥
⌘ ⌘ ⌘ ⌘ ⌘ ⌘ ⌘ ⌘
जीवन का है न ठहराव कहीं,
न हीं दारुण दुःख है चरम विनाश का ।
जीवन में न है व्यथा विलास कहीं,
कहीं उन्मत्त "प्रेम" का विकास नहीं,
अनिच्छित पाप के लिए क्रूर दण्ड का विधान नहीं ॥५॥
⌘ ⌘ ⌘ ⌘ ⌘ ⌘ ⌘ ⌘

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नास्तीह कर्माकर्मणोः क्रूरविभेदः क्वचित् ।
जीवने मृत्योर्नास्ति किञ्चित्स्थानम्,
कालस्य प्रतिच्छायायां नास्त्येकाकीभावस्य रिक्तता क्वचित् ।
यो हि शाश्वते जीवति स एव स्वतन्त्रो मानवः,
तदर्थमेव जीवनम् ॥६॥

यदा चित्तवृत्तेरुद्वेलनं विरोधाभासश्च समाप्येते तदा विवेकोदयद्वारा ऊर्क् असाधारणतया घनीभूता सती प्राकट्यं गच्छति ।
मनोप्रदूषणं विनैव क्रियायोगस्यानुभूतिं कुरुत ।

॥ जयति कियायोगः ॥

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे षट्पञ्चाशदध्यायः॥

जीवन प्रदान करता नहीं सांत्वना कहीं,
न ही विश्रान्ति इसे विस्मृति की समाधि में ।
जीवन में न है जड चेतन का द्वन्द्व कहीं,
यहाँ कर्म अकर्म का क्रूर विभेद नहीं ।
जीवन में मृत्यु का कोई स्थान नहीं,
काल की प्रतिच्छाया में एकाकीपन की रिक्तता नहीं ।
जो शाश्वतत्व में जीता है मानव वही स्वतन्त्र है,
जीवन उसी के लिए है ॥६॥

जब चित्तवृत्ति की आपाधापी और विरोधाभास समाप्त हो जाते हैं तब समझदारी की ऊर्जा असाधारण रूप से घनीभूत होकर प्रकट होती है । मानसिक प्रदूषण के विना क्रियायोग की अनुभूति करें ।

॥ जय क्रियायोग ॥ ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ सप्तपञ्चाशदध्यायः

न भवान् खण्डचैतन्यं चित्तवृत्तिसमुद्गतम् ।
केवलं पटवद् भाति चित्रदर्शनसंगतम् ।
यथा चित्रपटे चित्रजुष्टं तत् पटखण्डकम् ।
ज्वलति नाग्निचित्रेण न क्लिद्यते जलात्तथा ।
न वायुदर्शनात् किञ्चित् शुष्यते न भयानक-
युद्धदर्शनतः किञ्चित् प्रभावितं प्रजायते ।
तद्वदेव भवान् भाति वस्तुतो नैव किञ्चन ॥१॥
अस्तित्वं त्वमसि शून्यं पूर्णमूर्क् अथ ज्ञायताम् ।
चैतन्यमपि वै पूर्णं तत्स्वरूपं तवास्ति चेत् ।

अध्याय-५७

आप अपनी चित्तवृत्ति यानी कि खण्ड चैतन्य नहीं हैं। वास्तव में आप कुछ भी नहीं हैं। आप दूरदर्शन (टीवी) के उस कोरे पर्दे की तरह हैं जो उस पर दिखने वाले चित्रों से स्वयं किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं होता है। जब टी०वी० के पर्दे पर आगका दृश्य दिखाई पडता है तब क्या वह पर्दा जलता है ? जब उस पर समुद्र या वर्षा का दृश्य दिखाई देता है तब क्या वह भीगता है ? क्या युद्ध के दृश्यों में चलने वाली गोलियों और बमों से वह पर्दा नष्ट होता है ? ॥१॥

आप शून्य है, समग्र अस्तित्व हैं, ऊर्जा हैं, पूर्ण चैतन्य हैं। आप शून्यताका अनुभव नहीं कर पाते हालाँकि यही आपका वास्तविक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यथार्थं किल चास्तित्वं नानुभवो हि ज्ञायताम् ।
तदर्थं विलयो नूनमहङ्कारस्य कार्यताम् ।
बुद्धेद्वारं समुद्घाट्य चैतन्यं तु प्रवेश्यताम् ।
एकस्यैव हि चैतन्यजातस्य खण्डतां वयम् ।
याताः तेनैव पूर्णेन खण्डसञ्चालनं भवेत् ।
यथा चैकस्य वै वायोः श्वासं गृण्हीमः सर्वदा ।
तथा च पूर्णचैतन्यान्न भेदो विद्यते क्वचित् ।
चैतन्यं यद्धि सर्वत्र राजते दीप्यते तथा ।
तदेव ज्ञायतां ध्यानं न पृथग्ध्यानमुच्यते ॥२॥
खण्डचैतन्यस्य नैकं घटकजातं विलोक्यते यथा -

स्वरुप एवं विस्तार है। अस्तित्व यथार्थ है न कि अनुभव। ऐसा होने के लिए अहम् भाव, जो कि अनुभव की गठरी मात्र है, का विलय होना आवश्यक है। बुद्धि का द्वार खुलना चाहिए ताकि इसमें चैतन्य का प्रवेश हो सके। जिस प्रकार हम सभी एक ही वायु मण्डल से श्वास लेते हैं उसी प्रकार पूर्ण चैतन्य से ही हम सब का खण्ड चैतन्य सञ्चालित होता है। चैतन्य ही ध्यान है ॥२॥

खण्ड चैतन्य के कई घटक हैं, जैसे - आशंका, चिन्ता, अपराधबोध, अंध विश्वास, लोभ, आकांक्षा, आपाधापी, भ्रमजाल, छवि, प्रभाव, अतिभोग, अवरोधन, मानसिक तलछट, मान्यता, धर्मान्धता, अनुबंधन (कन्डीशनिंग), विभ्रान्ति तथा मन के ऐसे अन्य अवयव।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आशंका, चिन्ता, अपराधबोधः, अन्धविश्वासः, लोभः, आकाङ्क्षा, उद्विग्नता, भ्रमजालः, छविः, प्रभावः, अतिभोगः, अवरोधनम्, मानसिकच्छलः, मान्यता, धर्मान्धता, अनुबन्धनम्, विभ्रान्तिस्तथा मनसः अन्य अवयवाश्च ।

किन्तु भवान् न भवन्मनः । मनस्तु काल्पनिकम् ।

न सत्यं किन्तु मान्यम् । प्रतिदिनगतव्यावहारिकजीवनस्य कृते उपयोगित्वं गच्छेत् ।

न तद् भवान् यच्चिन्तयति । भवाँस्तु वस्तुतो विचार जालात्पारे विद्यते । न भवान् किञ्चित् ।

यदापि अस्याः शून्यताया आविर्भावो भवेदथ च तद्ग्रहीतुं

किन्तु आप वास्तव में अपना मन नहीं हैं । मन तो काल्पनिक है । यह सत्य नहीं है, किन्तु मान्य है । यह आपके दिन प्रति दिन के व्यावहारिक जीवन के कारोबार में उपयोगी है । आप वह नही हैं जो आप सोचते हैं । वस्तुतः आप वह हैं जो सोच-विचार के जंजाल से परे हैं । आप कुछ भी नहीं हैं । जब इस शून्यता का आविर्भाव हो तथा इसका सामना करने का साहस उत्पन्न हो तभी समझना चाहिए कि मानव देह एवम् उसके अन्दर के खण्ड चैतन्य में मौलिक रुपान्तरण की शुरुआत हो रही है । शरीर की तन्मात्रायें इन्द्रियों का सृजन करती हैं। मन, जो कि माया है, देह के मृत होते ही लुप्त हो जाता है ॥३॥

गाँव के मेले में भाग लेने आई नाटक कम्पनी आपना तम्बू

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

साहसस्य चोत्पत्तिर्भवेत्तदेव किल ज्ञातव्यं यन् मानवदेहे तदीयाभ्यन्तरगतखण्डचैतन्ये च मूलरूपान्तरणस्य प्रारंभः सञ्जात इति ।

तन्मात्रा इन्द्रियाणि सृजन्ति । मनस्तु मायैव, देहे मृते तन्मनः लुप्यते ॥३॥

ग्रामे समायोजितमेलापके भागं ग्रहीतुं समागतो नाट्यसमूहः स्वीयं शिविरं समायोजयति, मञ्चं निर्माति, अभिनयकाले विश्रामाय नेपथ्यशालाञ्च निर्माति । अभिनेता स्वीयभूमिकां पूर्णनिष्ठया पूरयति, तदर्थं दर्शकेभ्यः प्रशंसाञ्च प्राप्नोत्येव किन्तु ते सर्वे अभिनेतारः ताभिः भूमिकाभिः सह मानसिकरूपेण

लगाती है, मंच बनाती है तथा अभिनय के मध्य विश्राम हेतु एक नेपथ्यशाला स्थापित करती है। अभिनेता अपनी भूमिका पूरी निष्ठा के साथ निभाते हैं तथा इसके लिए दर्शकों की खूब प्रशंसा भी प्राप्त करते हैं परन्तु वे अपनी भूमिकाओं से मानसिक रुप से बँधते नहीं हैं। एक दृश्य की समाप्ति पर जब वे विश्राम या अगले दृश्य की तैयारी हेतु नेपथ्यशाला में आते हैं तब वे पूर्व की भूमिका के अनूरुप राजा, रानी सेनानायक अथवा खलनायक या वैसा कुछ भी नहीं रहते। वे केवल वही रह जाते हैं जो मंच पर जाने से पूर्व थे और जब मेला समाप्त हो जाता है तब कम्पनी अपने लाव-लश्कर समेट कर उस गाँव को छोडकर अन्यत्र के लिए प्रस्थान कर जाती है ॥४॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

न बध्यन्ते, एकदृश्यसमाप्तेः परमपरदृश्याय विश्रामाय वा यान्ति न तदा पूर्वभूमिकानुरूप-राज-राज्ञी-सेनानायक-खलनायकादिर्न किमपि मनसि ते धारयन्ति ते केवलं तद् एव अवशिष्यन्ते यत् तद्भूमिकातः पूर्वं आसन् । यदा मेलापकं समाप्यते तदा तद्ग्रामं परित्यज्य सर्वं वस्तुजातं गृहीत्वा ते अन्यत्र यान्ति ॥४॥

यावदस्य नाटकस्य निःसारता निरर्थकता च पूर्णतया नावबोध्यते तावत्शून्यं नेपथ्यशालास्ति, मनः रङ्गमञ्चं तथा शरीरपातश्च एकस्माद् ग्रामादन्यग्राममेलापके क्रीडायां भागं ग्रहीतुं वर्तमानशिविरस्य समापनमिति

जब तक कि इस नाटक की निःसारता एवं निरर्थकता का पूर्ण बोध (जीवन-मुक्ति) न हो जाय तब तक शून्य नेपथ्यशाला है, मन रंगमंच है और शरीर की मृत्यु दूसरे गाँव के मेले में खेले जाने वाले नाटक में भाग लेने के लिए वर्तमान शिविर का समापन है ॥५॥

नेपथ्यशाला ब्रह्मा है,
रंगमंच (एवं नाटक) विष्णु है,
शिविर के समापन पर रिक्त स्थान ही शिव है ।

इस रंगमंच पर जीवन के नाटक (विष्णु-लीला) में अपनी भूमिका निभायें परन्तु समय-समय पर नेपथ्यशाला (ब्रह्मा) में आते रहें, इसे भूलें नहीं और मेले के समापन पर उस स्थान को छोड देने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ज्ञायताम् ॥५॥

नेपथ्यशाला = ब्रह्मा

रंगमञ्चम् = विष्णुः

शिविरसमाप्तिरिक्तस्थानम् = शिवः ।

अस्मिन् रङ्गमञ्चे जीवननाटके (विष्णुलीलायां) स्वीयकर्तव्यं कुर्यादेव । काले काले नेपथ्यशालाञ्च (ब्रह्मणःस्थाने) गच्छेदेव, नैतद् विस्मर्तव्यम् । समाप्ते च मेलापके तत्स्थानं त्यक्तुं (शिवलीला) सहर्षतया मतिः स्थिरा स्यादेव ।

एतदेव हि हठ-राज-लय-योगानामद्वितीयसंयोग एव क्रियायोगस्य सत्चिदानन्दस्वरूपमिति ॥६॥जयति गुरुः।

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे सप्तपञ्चाशदध्यायः॥

(शिव) की समझदारी रखें ।

यही है हठ-राज-लय योगका अद्वितीय संयोग एवं क्रियायोग का सत्-चित्-आनन्द ॥६॥

॥ जय गुरु ॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथाष्टपञ्चाशदध्यायः

पश्य तात भवद्देहे सजीवे विद्यते च किम् ।
अंगुष्ठमात्रपुरुष आकाशे हृदये स्थितम् ।
बाह्यं यत्पूर्णमाकाशं यथा सत्यं तथैव तत् ।
पूर्णं हृदयदेशस्थमाकाशमिति ज्ञायताम् ।
ऊर्जा सा किल सा प्रज्ञा ह्यग्निर्वायुश्च शाश्वतौ ।
स्वर्गः पृथ्वी तथा सूर्यो ग्रहा मेघाश्च तारकाः ।
सर्वं तद्हृदयाकाशे समाहितं यथार्थतः ॥१॥

किमर्थमिह सामान्यतथ्यं भवन्तं नोद्वेलयति यदहंकृत्या सृष्टैतैकाग्रताया जटिलपद्धत्या तथा तदुत्पन्नमनसः

अध्याय-५८

आपके जीवन्त देह के अन्दर क्या है - इसे समझें । आपके हृदय में स्थित अंगुष्ठ मात्र आकाश उतना ही पूर्ण है जितना कि बाह्य आकाश । ऊर्जा एवं प्रज्ञा, अग्नि एवं वायु, स्वर्ग एवं पृथ्वी, सूर्य एवं चन्द्र, मेघ का गरजना एवं चमकना, सभी तारे और सब कुछ ...... इसमें समाहित हैं ॥१॥

आपको यह सामान्य तथ्य क्यों नहीं उद्वेलित करता कि अहम् द्वारा सृजित एकाग्रता की जटिल तकनिकि तथा उससे उत्पन्न मन की समस्त उत्तेजना शरीर पर मन के गलाघोंटू पकड को ही मजबूत करेंगी, जिसे हम जीवन मान बैठे हैं। इस प्रकार यह हमारे

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

समस्तोत्तेजनाः शरीरे मनोगतश्वासावरोधबन्धनमेव द्विगुणितुं कुरुते यद्वयं जीवनमिति स्वीकुर्मः । इत्थमस्मज्जीवने चिरस्थायिशान्ति-पवित्रतावतरणं पुनरपि विलम्बयति ॥२॥

अस्मिन् शरीरे यद्धि "पवित्रं" विद्यते न तन्मनोगतमायाजालकपोलकल्पनाभिश्च प्रक्षेपयितुं निरूपयितुं च शक्यते । न हि विचाराः स्वसुविधानुरूपं तत् प्रयोक्तुं शक्नुवन्ति न वा आध्यात्मिकापणे क्रेतुं विक्रेतुञ्च शक्यत एव । अहङ्कारस्तु न कदापि कस्मिन्नपि छद्मवेशे नहि तस्य स्वामी भवितुमर्हति न वा तदन्यान् दातुं वा शक्नुयात् ॥३॥

जीवन में चिरस्थायी शान्ति एवं पवित्रता के अवतरण को पुनः विलम्बित कर देती है ॥२॥

इस शरीर में वह "पवित्रता" है, जिसे मन के सम्पूर्ण मायाजाल एवं कपोल कल्पनाओं के द्वारा प्रक्षेपित या निरूपित नहीं किया जा सकता है । न तो विचार अपनी सुविधानुसार इनका उपयोग कर सकते हैं और न ही आध्यात्मिक मण्डी में इसे खरीदा या बेचा जा सकता है । अहम् अपने किसी भी छद्म वेश में न तो इसका स्वामी बन सकता है और न ही इसे दूसरों को बाँट सकता है ॥३॥

पूर्णत्व है, अवश्य है, जो किसी भी प्रतीक या शब्द की सीमा से इतना परे है कि वे इसका स्पर्श भी नहीं पा सकते । वह अकथनीय

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पूर्णत्वं विद्यते नूनं न प्रतीकेन ज्ञायताम् ।
न वा शब्देन वै कश्चिद् ज्ञातुमर्हति यत्नतः ॥
अकथ्यं तद्धि सम्प्रोक्तं मनसोऽपि परं मतम् ।
किन्तु तदस्ति वै नूनं नात्र कार्या विचारणा ॥४॥
पवित्रागाधपूर्णस्य ह्युपासना न युज्यते ।
न वा ध्यानं भवेत्तस्य न वा विलोम उच्च्यते ॥
अवतारो भवेत्तस्य स्वस्मिन् इत्यवधारणात् ।
स्वात्मानं विलयीकर्तुं किं त्वं सज्जो भविष्यसि ॥५॥
क्रियायोगस्याभिप्रायं न हि प्राप्तव्यं किञ्चिदस्ति भविष्यकाले । अस्य विस्फोटस्तु इहैव इदानीमेव संभाव्यते । चित्तवृत्तेर्व्यापारो

एवम् असम्प्रेषणीय होते हुए भी एक तथ्य है ॥४॥

इस अगाध एवं पवित्र पूर्णत्व की उपसना नहीं की जा सकती है। आप इसका ध्यान भी नहीं कर सकते। इसका कोई विलोम नहीं है । इसके अवतरण के लिए क्या आप अपना विलय कर सकते हैं ? ॥५॥

क्रियायोग का अभिप्राय भविष्य में कुछ प्राप्त करना नहीं है। इसका विस्फोट यही और अभी संभव है। चित्तवृत्ति का व्यापार बन्द होना चाहिए तभी उस मौलिक मुक्ति का उद्भव होगा। तदुपरान्त सच्चिदानन्द का प्रत्यक्ष बोध अवश्यंभावी है ॥६॥

वह पूर्णत्व न सिर्फ इस कक्ष में विद्यमान हैं बल्कि इस

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

निरोद्धतां गच्छेत् । तदैव मौलिकमुक्तिः संभवति । ततस्तु सच्चिदानन्दस्य प्रत्यक्षप्रबोधो जायते ॥६॥

तत्पूर्णत्वं न केवलमिह कक्ष एव विद्यते किन्तु सीमप्रान्तनगरस्योपवने मार्गेषु सर्वत्र विद्यमानं सत् हालैण्ड-शर्मण्य-विभाजक-नदी-जलेभ्योऽपि पारे समग्रधराब्रह्माण्डञ्चाच्छादयति ॥

॥ जयति शिवशंकरः ॥

॥ ॐ ॐ हर हर ॥

॥ हर हर हर हर ॥

॥ ॐ ॐ हर हर ॥

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्ड अष्टपञ्चाशदध्यायः॥

सीमावर्ती नगर के उपवनों एवं मार्गो को अधिप्लावित करता हुआ हॉलैड और जर्मनी को विभाजित करनेवाली सरिता के जल से भी परे सम्पूर्ण धरा एवं ब्रह्माण्ड को आच्छादित कर रहा है ।

॥ जय शिव शंकर ॥

॥ बम बम हर हर ॥

॥ हर हर हर हर ॥

॥ बम बम हर हर ॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

समाजो धर्माश्च मानवानां मनोवैज्ञानिकव्यक्तित्वमेव (अहङ्कारम्) स्वीकुर्वन्ति प्रोत्साहयन्ति च । यद्यपि शरीरगतत्वेन वयं सर्वेऽपि भिन्ना एव तथापि मनोवैज्ञानिकरूपेण न वयं भिन्नाः । मानवचेतनाया एकमेव तत्त्वं सर्वेषु समानतया विद्यते । ब्रह्माण्डभाण्डे मात्रमेकः केन्द्रबिन्दुर्विद्यते । वयञ्च तदीयं चतुर्दिक्षु संकेन्द्रितवृत्ताः । अत एव (अङ्गलवाचि 'यूनिवर्स' इत्युच्यते = अयंभाव) एकच्छन्दसि स्थिता न बहुच्छन्दसि (न हि मल्टिवर्स)इति । इदञ्च छन्दः तस्यैक-महाकाव्यस्यानुगुञ्जितरहस्यैकलयशून्यैकनृत्यं

अध्याय-५९

समाज एवं धर्म मनुष्य के मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व (अहंकार) को ही स्वीकार एवं प्रोत्साहित करते हैं। यद्यपि शारीरिक रूप से हम सब अलग-अलग अस्तित्व हैं, तथापि मनोवैज्ञानिक रूप से हम भिन्न इकाई नहीं हैं। मानव-चेतनाका एक ही तत्व हम सभी में विद्यमान है। ब्रह्मांड में मात्र एक केन्द्र-बिन्दु है और हम सभी उसके चतुर्दिक् संकेन्द्रित वृत्त हैं। यही कारण है कि इसे अंगरेजी में 'यूनि' - 'वर्स' कहा जाता है अर्थात् 'एक' ('यूनि')- 'छंद' ('वर्स') न कि 'मल्टि' 'वर्स' अर्थात् 'बहु' ('मल्टि') 'छंद' ('वर्स')। यह छंद उस एक महाकाव्य, एक अनुगूंजित रहस्य, एक लय, शून्य के एक नृत्य - शिव से उद्भूत है ॥१॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शिवात्समुद्भूतमिति ॥१॥

मनुष्यगतविभेदकारिणी चित्तवृत्तिः तदीयाहङ्केन्द्रब्रह्माण्डगतमूलकेन्द्रात्पृथक्त्वादेव समुदेति । अहङ्कारस्तु भ्रम एव । सांसारिककृत्येषु भवेन्नामोपयोगी किन्तु अध्यात्मपथि पूर्णतयाऽनुपयोग्येव । एष भ्रमस्तु विविधालम्बनव्यवहारैः संपुष्टो भवति । इत्थं मनस आत्मसंरक्षकयन्त्ररचनया या हि मिथकीयस्थितिरस्ति तया संपोष्यते सर्वदा ॥२॥

क्रियायोस्थित्यै विकल्परहितौदासीन्यमनिवार्यम् । भूमेः कर्षणं यावन्महत्त्वाधायकं तावदेव तस्य किञ्चित्कालं यथावस्थितिरपि । तदानीं तया पुनरपि ह्युर्वराशक्तिर्लभ्यते तद्वदेव मनसि

मनुष्य की विभेदकारी चित्तवृत्ति उसके अहम् केन्द्र के ब्रह्माण्ड के मूल-केन्द्र से अलग हट जाने के कारण है। अहं एक भ्रम है जो सांसारिक संदर्भो में तो उपयोग किन्तु गहन आध्यात्मिक संदर्भो में पूर्णतया अनुपयोगी है। यह भ्रम विविध अवलम्बों एवं गोरखधंधों के द्वारा सम्पोषित होता रहता है। इस प्रकार मन की आत्मसंरक्षी-यंत्ररचना, जो कि एक मिथक है, संपोषित होती रहती है ॥२॥

क्रियायोग में स्थिति के लिये विकल्प रहित उदासीनता अनिवार्य है। भूमि की जुताई जितनी महत्वपूर्ण, उतनी ही उसका कुछ अवधि के लिये परती रहना। जैसे परती रहने की अवधि में उसे फिर से प्रकृति से उर्वरा-शक्ति प्राप्त करने का अवसर मिलता है, उसी प्रकार, मन को शांत एवं विकल्प रहित अवस्था में रहने पर अपने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शान्ततया विकल्परहितावस्थायां गते स्वयमेव ऊर्जान्विते पुनर्जीवनस्यावसरो लभ्यत एव तेन ॥३॥

निरपेक्षजागरणं मनः तदीयप्रतिक्रियाभिश्च मुच्यते येन अनायासेनैव अन्तः शान्तिरुदेति । एतदेव निःसीमजागरणम् । इयमेव एवं विधा गतिरस्ति या समस्तविचारैरनुभूतिभिश्च सुदूरं पारे विद्यते ॥४॥

॥ ॐ नमः शिवाय॥

॥ सत्यं, सरलता, प्रेम ॥

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्ड एकोनषष्टितमोध्यायः॥

आपको ऊर्जान्वित एवं पुनर्जीवित करने का अवसर मिलता है ॥३॥

निरपेक्ष जागरुकता मन को इसकी प्रतिक्रियाओं से मुक्ति प्रदान करती है जिसके फलस्वरुप अनायास ही आभ्यन्तरिक शान्ति प्राप्त होती है। यह एक असीम जागरुकता है। यह एक ऐसी गति है जो समस्त विचारों एवम् अनुभूतियों से परे है ॥४॥

॥ ॐ नमः शिवाय ॥

॥ सत्य सरलता प्रेम ॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ षष्टितमोऽध्यायः

प्रार्थनायान्तु मनसो याच्ञा मात्रं तु विद्यते
ऐकान्तिकी भवेत् पीडा अहंकेन्द्रव्यथापि वा ।
यत्रापि भगवत्ता तु नास्ति हीत्यवधार्यताम् ।
तेषामीश्वरदेवोऽपि विवादसृष्टिरुच्यते ॥१॥

ध्याने निरासक्तिर्जायते । इयं निर्मनोवस्था कथ्यते । एकाकित्वात्म-शून्यतायुक्तप्रक्रियेयं, यस्यां निःसज्ञास्तित्वस्याद्-भूतोपस्थितिर्भवति ।

धर्मवणिजां षड्यन्त्रेण न तस्य किमपि प्रयोजनं ये हि ईश्वर नाम्ना विभिन्नमान्यतामताग्रहाणाञ्चाधारे मानवमनःसु द्वन्द्वं

अध्याय-६०

प्रार्थना में मन के अन्दर से उत्पन्न एक माँग होती है । यह एकान्तता की पीडा तथा आत्मकेन्द्रित व्यक्तित्व की व्यथा है, जिसमें ईश्वर ही नदारद हैं । वास्तव में, उनका ईश्वर धर्म मीमांसकों के तर्कजनित वाद - विवाद का प्रतिफल है ॥१॥

ध्यान में निरासक्ति होती है । यह एक निर्मनावस्था है । यह एकाकित्व एवम् आत्म - शून्यीकरण की एक प्रक्रिया है जिसमें अनाम अस्तित्व की एक अद्भुत उपस्थिति रहती है । इसे 'धर्म के ठेकेदारों' के उस षडयंत्र से कोई मतलब नहीं होता जो ईश्वर के नाम पर विभिन्न प्रकारकी मान्यताओं, मताग्रहों आदि के आधार पर मानव-मानव के बीच द्वन्द्व पैदा करते हैं। सत्य के प्रति प्रेम के फलस्वरुप इस

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

समुत्पादयन्ति । सत्यं प्रति जायमानेन प्रेम्णा इहापि एकाकित्वेऽपि संवादो भवत्येव तेन नैकान्तिकपीडा तत्र विज्ञायते ॥२॥

विभेदकारिचित्तवृत्तेः प्रार्थना समुदेति । निष्कपट-निरवयवचैतन्येन ध्यानं प्ररिस्फुरति । प्रार्थनायामिच्छा प्राप्तिश्च अन्तर्निहीते किन्तु ध्यानन्तु परमानन्दमंगलमयी ह्यवस्था विद्यते ॥३॥

क्रियायोगस्याभ्यासः साम्यावस्थायां स्थातुं विधीयते । इयमवस्थैव ध्यानम् । नेह मनसः संकेन्द्रीकरणं न वा तदीयानुबन्धिप्रतिक्रियाप्राप्तानुभवः ।

ध्यानं तथ्ये (अस्तित्वे) एका गतिश्चेत् प्रार्थना तु तत्त्वे गतिरोध एव । इह प्रार्थनायां व्यक्तिरस्ति, ध्याने न प्रार्थना न

एकाकित्व में भी संवाद जारी रहता है और एकान्तता की पीड़ा नहीं महसूस होती है ॥२॥

विभेदकारी चित्तवृत्ति से प्रार्थनाका उदय होता है । निष्कपट एवं निरवयव चैतन्य से ध्यान प्रस्फुटित होता है। प्रार्थना में चाहना और पाना अन्तर्निहित है जब कि ध्यान एक परमानन्द एवं मंगलमय अवस्था है ॥३॥

क्रियायोग का अभ्यास साम्यावस्था में रहने के लिये किया जाता है । यही ध्यान है, जो न तो मन का संकेन्द्रण है और न ही उसकी अनुबंधित प्रतिक्रियाओं से प्राप्त अनुभव । ध्यान तथ्य (सत्) में एक गति है जबकि प्रार्थना तत्व सिद्धांन्त) में एक गतिरोध । जहाँ प्रार्थी (व्यक्तिपरक सत्ता) है वहाँ कोई प्रार्थना नहीं है। यही कारण है कि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

व्यक्तिश्च । तेनैव प्रार्थनया केवलं दुर्दशा, विरोधाभासश्च जन्येते तथा व्यवसायः प्रोत्साह्यते सम्पोष्यते च ॥४॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ सत्यं, समाधीरूपान्तरणमुत्कर्षश्च ॥

॥ इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे षष्टितमोध्याय:॥

प्रार्थना के द्वारा केवल दुर्दशा, विरोधाभास एवं व्यवसाय को ही प्रोत्साहन एवं सम्पोषण मिलता है ॥४॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ सत्य समाधि रूपान्तरण उत्कर्ष ॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

बौद्धमनोवृत्तेरयमेवाभिप्रायो यदहं स्वीयमुक्तिदातृत्वेन बुद्धं विश्वसिमि, अत एव स मां दुःखपीडायन्त्रणादिभिर्मोचयिष्यति ॥१॥ खीस्तमनोभावे एतदन्तर्निहितं यदहं ईशामशीहं विश्वसिमि । अत एव स प्रकटीभूय मां रक्षयिष्यति येन मानवताविरुद्ध-कृत-समस्त-पापाचार अपराधेषु सत्स्वपि चिरस्थायिसुखोपभोगाय स मां तत्र स्थापयिष्यत्येव ॥२॥ मुसलिमान्यमानसिकता निश्चाययति यदहं सर्वशक्तिमदल्लाहं विश्वसिमि यो हि स्वर्गसिंहासने तेजस्वी महाराजवद् विराजमानो कुरानहदीसादीनां व्याख्यासु

अध्याय-६१

(पुत्र उज्ज्वल लाहिडी की पुत्री नन्दिनी के प्रथम जन्म दिवस पर)

बौद्ध मनोवृत्ति का अभिप्राय है कि मैं अपने मुक्तिदाता के रूप में बुद्ध में विश्वास करता हूँ अतः वे मुझे दुःख-दर्द, प्राणान्तक पीडा एवं यंत्रणा से मुक्ति दिलायेंगे ॥१॥

इसाई मनोभाव में यह अन्तर्निहित है कि मैं ईसा मसीह में विश्वास करता हूँ, अतः वे प्रकट होकर मेरी रक्षा करेंगे और मानवता के विरुद्ध किये गये मेरे समस्त पापों व अपराधों के बावजूद मुझे स्वर्ग की चिरस्थायी सुख-शान्ति के भोग के लिये वहाँ स्थापित कर देंगे ॥२॥

मुस्लिम मानसिकता सुनिश्चित करती है कि मैं सर्वशक्तिमान अल्लाह में विश्वास करता हुँ, जो स्वर्ग के सिंहासन पर तेजस्वी महाराजा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पण्डितैर्मूल्लैर्विद्वद्भिश्च विधीयते । अत एवाहं मूल्लानां संकेते अल्लाहस्य नाम्नि यद्किञ्चिदपि कर्तुं सज्जोऽस्मि ॥३॥ हिन्दुमनोवृत्तिः संकेतयति यदहं छद्मवेशगुरु-गिरि-पदवाच्य-स्वामि-सन्यास-मठाधीष-मण्डलेश्वर-महर्षि-परमहंसेश्वरातीतलोकप्रियसज्जन-धर्मज्ञावतारयोगि-तान्त्रिक- चिकित्सक - ज्योतिष-चमत्कारिक-पुरोहित-हवनकतृ-साधु-मातृ-सम्मोहक-शक्तीनां महाजालेषु स्वात्मानं पातयितुं सज्जोस्मीति । सान्त्वना-सुरक्षा-शक्ति-लाभ-प्राप्तेरिच्छा-मामाध्यात्मिक-विपणिगतधूर्तानां प्रत्यक्षासत्येषु पावनावधारणासु गौर-

---

के समान विराजमान होकर कुरान एवं हदीस की जैसी व्याख्या मुल्लाओं और विद्वानोंद्वारा की गयी है, के अनुसार लोगों को पुरस्कार एवं दंड देते हैं। अतः मैं इन मुल्लाओं के इशारे पर अल्लाह के नाम पर कुछ भी करने के लिए तैयार हूँ ॥३॥

हिन्दू मनोवृत्ति इंगित करती है कि मैं छद्मवेशी गुरुओं और गिरियों, स्वामियों और संन्यासियों, महन्थों और महामण्डलेश्वरों, महर्षियों और भगवानों, असंख्य देवी-देवताओं के उपासकों और भक्तों, परमाचार्यो और परमहंसों, ईश्वर और अतीत के लोकप्रिय धर्मज्ञों के अवतारों, योगियों, तांत्रिकों, चिकित्सकों, ज्योतिषियों, चमत्कारियों, पुरोहितों, हवनकर्ताओं, बाबाओं तथा माताओं आदि के विभिन्न प्रकार सम्मोहक शक्तियों के जाल में फँसने को तैयार बैठा हूँ। सांत्वना और

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वगुम्फितशब्दावलीनाञ्च भ्रमिजालेषु पातयत्येव ॥४॥

सामान्यधार्मिकमनोवृत्तेरयमभिप्रायो यदहं धर्मभीरुरस्मि । अत एवेश्वर अस्मै भीतियुक्तायाज्ञाकारिणे सेवकाय सर्वमपि प्रदास्यति यस्य लालसा विद्यतेऽस्य ॥५॥

एवंविधसर्वमनोवृत्तयो मां स्वीयमानसिककारागारेषु निवीडयन्ति । तेनाहं न कदापि तेषां बन्धनानां निःसारणपूर्वकं बहिरायातुमभिलषामि । अस्माद् बन्धनान्मुक्तिरेव क्रियायोगस्य सारः । मनसो बन्धनादेव स्वीयाहङ्कारगतिविधीनां सम्बन्धे ह्यन्तर्दृष्टिं प्राप्तुं न काचित् योग्या शक्तिर्मयि विद्यते तेन मनसः स्वीयरक्षात्मकयन्त्ररचनायाः

सुरक्षा, शक्ति और लाभ पाने की चाहत मुझे आध्यात्मिक मण्डी के इन धूर्तो के सफेद झूठों, पावन अवधारणाओं एवम् भारी भरकम शब्दावलियों के भँवरजाल में फँसाती है ॥४॥

सामान्यतः धार्मिक मनोवृत्ति का अभिप्राय है कि मैं धर्मभीरु हूँ, अतः ईश्वर अपने इस भीरू तथा आज्ञाकारी सेवक को वह सब कुछ प्रदान करेगा जिसकी इसे लालसा है ॥५॥

इस प्रकार की समस्त मनोवृत्तियाँ मुझे अपने मानसिक कारागार में कैद रखती हैं, फलस्वरुप मैं इसे तोडकर बाहर निकलने की आवश्यकता ही नहीं महसूस कर पाता हूँ। इस कैद से मुक्ति ही क्रियायोग का सार है । मन के अन्दर ही कैद होने के कारण मुझमें अपने अहंभाव की गतिविधियों के सम्बन्ध में अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने की

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

संपोषिताहङ्केन्द्रितगतिविधयस्तव समीचीना इति कृत्वा स्वात्मानं मोचयितुं क्षमो नावतिष्ठामि ।

इत्थं यदाहं संघटित–धर्म–पन्थ–सम्प्रदाय–गुह्यविद्या–तान्त्रिक–समूहोद्देश्यपरकसंस्था–पुस्तक–प्रचारा-भियानशक्तिनिर्मित–मनोगतकारागाराद् बहिरायामि तदैव सत्यबोधस्योर्जा ह्याविर्भवति । एता विखण्डनकारिण्यः शक्तयो मदीयमानसिकप्रदूषण–विरोध–सुख–दुःख–लोभ–भय–प्रभृतयो मनोभावशोषणादेव पुष्पितपल्लविता जायन्ते ॥६॥

क्रियायोगोद्देश्यं समस्तमनोवृत्तिभावानां समाप्तिं विधाय स्वीयसहजावस्थायाः पूर्णप्रशान्तिप्रबोधे स्थितिरेव । जडं मनो

कोई पहलशक्ति नहीं रह जाती है और मैं अपने मन के आत्मसंरक्षी यंत्ररचना द्वारा संपोषित आत्मकेन्द्रित गतिविधियों को सही दिशा देकर ज्योतिर्मय बनाने कि योग्य नहीं रह जाता हूँ। जब मैं संगठित धर्मो, पंथों एवं सम्प्रदायों, गुह्य विद्या एवं तान्त्रिक समूहों, मिशन एवं संस्थाओं, पुस्तकों एवं प्रचार-अभियानों की शक्तियों से निर्मित मानसिक कारागार से बाहर निकलता हूँ, तब समझदारी की ऊर्जा का विलक्षण आविर्भाव होता है । ये विखंडनकारी शक्तियाँ मेरे मानसिक प्रदूषण एवं विरोध, सुख एवं दुःख, लोभ एवं भय आदि मनोभावों के शोषण से पुष्पित-पल्लवित होती हैं ॥६॥

क्रियायोग का उद्देश्य इन समस्त मनोवृत्तियों, मनोभावों एवं मानसिकताओं को समाप्त कर अपनी सहजावस्था की पूर्ण प्रशान्ति

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्वीयहठधर्मितया निर्मनोवस्थां प्रति गन्तुं नेच्छति, तदर्थं क्रियाभ्यासस्य न किञ्चिन्महत्वं यतो निर्मनोवस्थाया निष्कपटता शून्यता च परमपुण्यं पूर्णता च विद्यते ॥७॥

॥ जयति चितिशक्तिः ॥

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्ड एकषष्टितमोध्यायः॥

एवं समझदारी में स्थित होना है । जड मन, जो अपनी हठधर्मिता के कारण 'निर्मनावस्था' की ओर बढने से इन्कार कर देता है, के लिए क्रिया-अभ्यास का कोई महत्व नहीं है क्योंकि 'निर्मनावस्था' की निष्कपटता एवं शून्यता ही परम पुण्य एवं पूर्णता है ॥७॥

॥ जय चितिशक्ति ॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

प्रबोधस्य च या ह्यूर्जा भवत्सु किल विद्यते ।
तदस्तित्वं मतं सत्यं पवित्रमिह संस्थितम् ॥१॥
मान्यतासु स्थितिस्तावच्छलात् कपटपूर्णकम् ।
पाखण्डपूर्णमिथ्यात्मानुभूतेर्धर्म उच्च्यते ॥२॥
मनसो विद्यते पारे सत्तत्त्वमिह बोध्यताम् ।
लोकधर्मात्मवृत्तिस्तु मनस्येवानुज्ञायताम् ॥
मनोरचितविश्वासे प्रथासु चैकरूपताम् ।
धर्म इच्छति तादात्म्यं तत्सर्वं दूषितं मतम् ॥४॥
मनसो व्याधिभिर्दूरमुपाधिभिश्च विद्यते ।

अध्याय-६२

समझदारी की ऊर्जा अस्तित्व की ठोस, सच्ची एवं पवित्र सत्ता है ॥१॥

मान्यताओं में उलझाव आपके 'अनुभवों' पर आधारित, छल-कपट से युक्त, पाखण्ड-पूर्ण एवं मिथ्या धर्म है ॥२॥

सत् मानस सागर के पार है ।
धर्म की स्थिति मन की तरंगों के भीतर है ॥३॥

धर्म, मन के रचनातंत्र से उत्पन्न प्रथाओं एवं प्रतीकों में, एकरुपता की अपेक्षा करता है ॥४॥

सत् मन की व्याधियों और उपाधियों से परे व्यापक समझदारी पर आधारित है ॥५॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सुदूरं किल सत्तत्त्वं तदेव बोध उच्यते ॥५॥
धर्मस्यावरणं सर्वमुत्पाट्य स्थाप्यतां यतः ।
यदन्तर्विद्यते रम्यं यथार्थं तद् विलोक्यताम् ॥६॥

॥ जयति हनुमान् समर्पणशान्तिप्रतीकः ॥

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे द्विषष्टितमोध्यायः॥

धर्म के आवरण को उतार फेकें तथा उसके अन्दर के यथार्थ का रसास्वादन करें ॥६॥

यही लाहिडी महाशय का क्रियायोग है ।

॥ जय हनुमान् ......

॥ समर्पण एवं शान्ति के प्रतीक ॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

क्रियायोगो मतं पात्रं यत्र सत्यं तु रक्षितम् ।
सत्यबोधाय तत्पात्रं गृह्यतामथ गम्यताम् ॥
अहंनिर्मितचित्तस्य वृत्तेर्जागर्तिकारणात् ।
सत्योदयो भवेदेव गम्यतां क्रियापात्रतः ॥
विकल्परहितं चित्तं मनः शून्यं करोत्यहो ।
शून्यतैव हि पूर्णत्वं पवित्रं परमं मतम् ॥
विभेदकारिवृत्तिभ्यो मनसो मुक्तिरेव हि ।
शून्यता, मनसो लोभो- भयं विषय उच्यते ॥
अत एवात्र भिन्नैस्तु शब्दैर्लोके विबोध्यते ।

अध्याय-६३

'क्रिया-तकनीक' एक पात्र है और 'सत्य' उसमें रखा जाने वाला पदार्थ ।

सत्य की अनुभूति के लिये तकनीकों में सिमटना नहीं बल्कि उसका प्रयोग करते हुए उससे आगे निकलना होगा ।

सत्य का उदय आपके अहम् से निर्मित चित्तवृत्ति के प्रति निरपेक्ष जागरुकता से होता है ।

विकल्परहित सचेतनता अर्थात् पूर्ण साम्यावस्था मन को शून्यता (निर्मनता) की ओर ले जाती है ।

मन की यह शून्यता ही पूर्णता है, पवित्रता है ।

शून्यता विभेदकारी चित्तवृत्ति के विषयों अर्थात् मन से मुक्ति है ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

द्वेषश्चिन्ता तथाशङ्का सुरक्षादिभिरित्यथ ॥
लोभो विज्ञायतेऽपेक्षो पूर्वानुमानशब्दगः ।
आकाङ्क्षा चाभिलाषोऽपि तस्यैव भेद उच्यते ॥
सर्वे धर्माश्च पन्थाश्च ह्याध्यात्मछद्‌वेशतः ।
पुष्णन्ति ते भयं लोभं ताभ्यां जीवन्ति यत्नतः ॥
आकाङ्क्षाहीनता नैव नैराश्यं किल ज्ञायताम् ।
जागर्तिरेव ज्ञातव्या पूर्णावस्थोदीयात् ततः ॥
भयं लोभश्च लुप्येते यदापि तात जानीहि ।
उदेति तत्र वै ह्यूर्जा सुखबोधोऽपि निश्चयात् ॥
क्रियायोगस्य वै दीक्षा केवलं पद्धतेर्न हि ।

मन के मुख्य विषय भय और लोभ हैं ।

भय को परिष्कृत शब्दों में आशंका, आक्रामकता, चिन्ता, द्वेष, असुरक्षा, अन्तर्बाधा, दबाव, तनाव आदि कहा जाता है ।

लोभ स्वीकार्य शब्दावली में महत्त्वकांक्षा, पूर्वानुमान, अपेक्षा, आकांक्षा एवम् अभिलाषा के रूप में जाना जाता है ।

सभी धर्म, सम्प्रदाय एवं पंथ, आध्यात्मिकता की आड में आपके भय और लोभको प्रोत्साहित एवं संपोषित कर अपनी रोटी सेंकते हैं ।

आकांक्षाहीन अवस्था नैराश्य नहीं है । बल्कि, यह एक जाग्रतावस्था है ।

जब भय और लोभ लुप्त होने शुरु होते हैं तब विलक्षण ऊर्जा एवं सुखबोध का एक साथ उदय होता है ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शिक्षणं किल बोधस्य यात्रा तत्र विधीयते ॥
मात्रप्रशिक्षणं लोके कुक्कुरेभ्य: प्रदीयते ।
तेनैव तत्र भेदोऽस्ति बोधयात्रा विधीयताम् ॥
शिक्षाया अभिप्रायस्तु सूचनासंग्रहो न हि ।
न वा परप्रभावायं नोपाधिलेखनाय वै ॥
छद्मवेशेण ह्याध्यात्मपथे ये सन्ति साम्प्रतम् ।
उपाधिं नाप्नवन्त्येव ह्याप्तसंस्थाभ्य: तेन हि ।
संदिग्धस्रोतसंस्थाभ्य: प्राप्नुवन्ति ह्युपाधिताम् ॥
अज्ञानावरणं तैस्तु हीनभावस्य गोपनम् ।
स्वनाम्नां चाग्रतो नूनं लिखन्ति ते ह्युपाधिताम् ॥

क्रियायोग की दीक्षा केवल कुछ तकनीकों का प्रशिक्षण नहीं है। प्रशिक्षण तो कुत्तों को दिया जाता है। मानव प्राणी तो शिक्षित किये जाते हैं जिसके कारण वे परिपक्वता के साथ समझदारी विकसित करने में सक्षम होते हैं।

शिक्षा का अभिप्राय सूचनाओं का संचय और उधार लिये हुए ज्ञान का अर्जन नहीं है और न ही यह दूसरों को प्रभावित करने के लिए अपने नाम के आगे लिखे जाने वाले आकर्षक उपाधियों को प्राप्त करना है। 'आध्यात्मिक लोग', जिन्हें प्रामाणिक संस्थाओं से इस प्रकार की उपाधि उपलब्ध नहीं हो पाती है, संदिग्ध स्रोतों से अस्तित्वहीन जाली उपाधियाँ प्राप्त कर अपने अज्ञान तथा हीनभावना को छिपाने के लिए अपने नाम के आगे मोटे-मोटे अक्षरों में इसे लिखते हैं। जब शिक्षा,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विना जागर्तिचैतन्यं यदा शिक्षा प्रदीयते ।
मत्या संगृह्यते ज्ञानं सूचनापि तथा तया ॥
मूढता नैव संयाति दूरं तेनैव सर्वदा ।
अनया शिक्षया सर्वे मूढा जन्मनि जन्मनि ॥
अशिक्षितोऽपि वै मूर्खः शिक्षितो मूर्ख एव सः ।
मूर्खता मूढता नैव मानवेभ्यो विलोप्यते ॥
चैतन्यं ज्ञानतो नैव ज्ञानं सूचनया न हि ।
सूचना दूषणादेव लोप्यतां न कदाचन ॥
शैघ्यात् सान्त्वयितुं तावत् स्वात्मानं सद्गुरुं न हि ।
पावनीं प्रक्रियां क्षुद्रव्यक्तित्वे वर्तयन्तु तम् ॥

चैतन्य की जागृति किए बगैर, मात्र बुद्धि के माध्यम से सूचना एवं ज्ञान के संचय तक सीमित रहे तब इससे मूढता दूर नहीं होती। ऐसी शिक्षा के फलस्वरुप एक अशिक्षित मूर्ख एक शिक्षित मूर्ख हो जाता है - अर्थात् मूर्खता बनी रहती है।

चैतन्य को ज्ञान में, ज्ञान को सूचना में और सूचना को सूचना के प्रदूषण मे खोयें नहीं।

शीघ्र एवं क्षणिक सांत्वना के लिए सद्गुरु, जो एक पावन प्रक्रिया है, को क्षुद्र व्यक्तित्व में परिवर्तित न करें।

आपमें भी यह प्रक्रिया घटित हो सकती है, यदि आप अपनी धारणाओं, गन्दगी, धूर्तता एवं लाभ-हानि की गणना के दुष्चक्र से छुटकारा पा सकें।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इयं बोधिर्भवेद् यस्मिन् मलिनाः पूर्वधारणाः ।
धूर्तता लाभहानिश्च नश्यति मुच्यते तु सः ॥

सद्गुरुस्तु रूपान्तरणस्य परिचायकः । न हि रूपान्तरणं नाम एकस्माद् धर्माद् धर्मान्तरं, सम्प्रदायात् सम्प्रदायं किन्तु बन्धनान्मुक्तौ, पीडातः परमानन्दे, क्रूरतातः करुणायामित्यर्थः । शिक्षयितुं ताः सर्वाः शिक्षा विस्मर्तव्या या लोकात् शिक्षिताः किन्तु शिक्षणयोग्या नासन् । एकसत्यशिक्षार्थी इव अनुशासितो भव । तदा गुरुशिष्यौ न द्वौ किन्तु द्वयोरेकीभावेन शून्यता संघटते ॥

॥ ॐ नमो नारायणाय ॥

॥ पूर्णचैतन्याय समर्पणम् ॥

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥

सद्गुरु रूपान्तरण के परिचायक हैं । यह रूपान्तरण, एक धर्म से दूसरे धर्म में या एक सम्प्रदाय से दूसरे सम्प्रदाय में नहीं, बल्कि बन्धन से मुक्ति, पीडा से परम पवित्र तथा क्रूरता से करुणा में है ।

सीखने के लिए उन बातों को भूलने के लिए तैयार रहिए जो आपने इस दुनिया में सीख तो ली हैं पर वे सीखने याग्य नहीं थीं । एक सच्चे एवं जिज्ञासु शिक्षार्थी की तरह अनुशासित बनें । तब एक और एक (गुरु और शिष्य) मिलकर दो नहीं शून्य हो जाते हैं ।

॥ ॐ नमो नारायणाय ॥

॥ पूर्ण चैतन्य को समर्पण ॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

खीस्तस्तु पूर्णचैतन्यश्चैकात्मबोध उच्यते ।
अनुक्रियोद्दीपने च लयमेकत्वमाप्नुतः ॥
द्वैतं विनश्यति तस्माज्ज्ञातृज्ञेयत्वमेव वा ।
अस्तित्वं किल सत् प्रोक्तं तन्नानुभवतां व्रजेत् ॥
तदानीं तन्मुखाद् गीतमावयोर्विद्यते न हि ।
भेदः परमपितरि मयि चेत्यवधार्यताम् ॥
वेदान्तेऽपि तथा प्रोक्तमहं ब्रह्मास्मि' बोधतः ।
'अनल्हक्' प्राह बोधेन श्रीमान् स अलिमंसुरः ॥
पूर्णं शून्यं तदा प्राह बुद्धोऽपि भगवान् स्वयम् ।

अध्याय-६४
क्रिसमस सन्देश

क्राइस्ट कॉन्शसनेस (पूर्ण चैतन्य) अस्तित्व का एकात्मबोध है, जिसमें उद्दीपन और अनुक्रिया एकात्मक लय बन जाते हैं। तब द्वैत का विलय हो जाता है। उस अवस्था में ज्ञाता और ज्ञेय एक हो जाते हैं। सत् अस्तित्व है, न कि अनुभव।

तभी ईसा मसीह से यह उद्गार प्रकट होता है - मैं और परमपिता एक हैं।

वेदान्त की उद्घोषण है - अहम् ब्रह्मास्मि।

अली मंसूर के मुँह से अनायास ही निकल पडता है-अनल हक।

बुद्धत्व व्यक्त करता है - शून्य पूर्ण।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शून्येन सह चैकात्म्यं प्राह लाहिडिपुङ्गवः ।
(शून्येर साथे कोला कुलि)
साम्यावस्था हीयं प्रोप्ता शिवोऽहमिति बोधिता ॥
सूक्ष्ममद्वैतमेवात्र भाति मङ्गलपूरितम् ।
अहंबोधो भेदकारी मनसो गतिरेव सः ।
भिनत्ति जीवनं नूनमस्तित्वं नाशयत्यहो ॥
विकल्पकारणादेष ह्यहङ्कारस्तु युक्तितः ।
स्वात्मानं वर्धयत्येष दुःखे संपातयत्यपि ॥
विचारो न प्रचारश्च ख्रीस्तचैतन्यमेति च ।
अन्तर्दृष्टिस्तथा बोधः प्रत्यक्षमिति बोध्यताम् ॥

लाहिडी महाशय ने गाया - शून्येर साथे कोला कुलि ।

यह स्थिति साम्यावस्था अर्थात् शिवोऽहं की परमानन्द एवं मंगलमय अवस्था है जिसमें एक सूक्ष्म अद्वितीयता विद्यमान रहती है ।

अहंबोध विभेदकारी है, जो मन की गति को जीवन की गति से एक कर देता है । इस प्रकार यह अनुभव और अस्तित्व के मध्य एक विभाजन रेखा खींच देता है । इस स्थिति में अहम् अपने विकल्पों और उलझनों के माध्यम से अपने आपको पुनः प्रवर्तित करते हुए अपने दुःख और दुःखभोग को और बढा लेता है ।

क्राइस्ट कान्शसनेस न तो विचार है और न ही प्रचार । यह एक अन्तर्दृष्टि और प्रत्यक्षबोध है । यह पौरोहित्य कौशल का शुष्क शब्दाडम्बर नहीं है जो धर्मान्धता ओर ध्वंस की और ध्वंस की ओर ले जाता है ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

न शब्दाडम्बरं शुष्कं पौरोहित्यस्य कौशलम् ।
न च धर्मान्धता ध्वंसं नयतीति विविच्यते ।
यत्रानुभवतद्भिन्न–क्षणभङ्गुरशाश्वतम् ॥
अधिपत्ये तथा दाने चैकत्वमाप्नुवन्त्यथ ।
पूर्णत्वस्यावतारोऽपि ह्यानन्दप्राप्तिरेव च ॥
समर्पणं तु ह्याध्यात्मपथि संप्रभुतोच्यते ।
अस्यां स्थितौ भवत्येव श्रद्धा ह्यास्था भवत्यहो ।
प्रकृतेरेव भाषा सा न मनोनिर्गतं क्वचित् ॥
तदास्था मुक्तिदात्री स्यान्न बन्धनयुता मता ।
ध्यानं तदा न वै दद्यात् जामितां श्रमतामथ ॥

यह अनुभवगम्य और प्रत्यक्षबोध है। यह पौरोहित्य कौशल का शुष्क शब्दाडम्बर नहीं है जो धर्मान्धता और ध्वंस की ओर ले जाता है। यह अनुभवगम्य और अनुभावातीत, क्षणभंगुर एक शाश्वत, आधिपत्य एवं समर्पण का योग (एकीकरण) है जिससे पूर्णत्व का अवतरण एवम् आनन्द की प्राप्ति होती है। समर्पण आध्यात्मिक संप्रभुता भी है। ऐसी अवस्था में आस्था या श्रद्धा प्रकृति की भाषा हो जाती है, न कि मन की। तब आस्था मुक्तिदायक होती है, न कि बन्धनकारक। तब ध्यान भी कोई थकाऊ एवम् उबाऊ यांत्रिक उपक्रम नहीं, बल्कि जीवन -शक्ति और ओजस्विता से पूर्ण शुद्ध और चैतन्य का सहज एवं सरल रूप बन जाता है।

ईसा मसीह के रूप में आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व जो

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जीवनशक्तिसंयुक्तमोजसा च समन्वितम् ।
शुद्धं चैतन्यरूपञ्च सहजं सरलं भवेत् ॥
द्विसहस्रवर्षपूर्वं खीस्तनाम्ना च या जनिः ।
अभूत् तं नैव जानीमो विश्वासमार्गतः क्वचित् ॥
अहङ्कारस्य लोपेन स्वाध्यायकर्मणस्तथा ।
तपसाथ भवेत् सत्यानुभूत्येश्वरयोगतः ॥
योगस्यालम्बतः खीस्तचैतन्यं बोधतां व्रजेत् ।
क्रूसस्तस्य पवित्रं स्यादहङ्कारविलोपकः ॥
योगे न क्रियया साम्यं तस्य नूनं विलोक्यते ।
स्वर्गो वा नरकं वापि द्वयमस्मासु विद्यते ।

आश्चर्यजनक आध्यात्मिक ऊर्जा इस भूमण्डल पर अवतरित हुई थी उसे आकर्षक एवं पवित्र आवरण से युक्त झूठों पर आधारित विश्वास - पद्धतियों के सहारे नहीं समझा जा सकता है। अहम् की गति पर निरन्तर मनन एवं निहित स्वार्थों के चौखट के बाहर की सच्चाई की अनुभूति (ईश्वर प्रणिधान), जो योग - प्रक्रिया के अंग एवं सोपान हैं, के द्वारा क्राइस्ट कॉन्शसनेस का प्रत्यक्षबोध संभव है।

क्रूस (+) पवित्र है क्योंकि यह अहंभाव के विनाश का प्रतीक (अंगरेजी भाषा के आई अक्षर, जिसका हिन्दी भाषा में अर्थ 'मैं' होता है, को बीच से काटता हुआ प्रतीत होता है) और गणित की योगक्रिया (अर्थात् जोड) के प्रतीक से साम्य रखता है।

स्वर्ग और नरक हमारे अन्दर हैं। 'निर्मना' बुद्धिहीनता नहीं,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

निर्मनीभावः स्वर्गः स्यान् मनस्तु नरकं मतम् ॥
स्मृत्या संयुज्यते नूनं मनोभावनया सह ।
स्मृतिस्तु लोकरक्षायै विज्ञानाविष्कृतौ पुनः ॥
युज्यते दूषणं तत्र मन एव करोत्यहो ।
शिल्पं विज्ञानजन्यं हि बुद्ध्या स्मृत्या विधीयते ॥
मनसा दुर्गतियुद्धं विभीषिका वितन्यते ।
खीस्तचैतन्यवेलायां शून्यबोधो विनिर्मितः
केन्द्रे तदीयपरिधौ चाहङ्कारो विसर्ज्यते ॥

॥ ॐ खीस्तः ॐ ॥

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे चतुःषष्टितमोऽध्यायः॥

स्वर्ग है। 'मन', स्मृति नहीं, नरक है। मन स्मृति के विषयों के साथ अतिशय भावुकता तथा उनमें अत्यधिक संलिप्तता है। स्मृति का उपयोग विज्ञान और तकनीकी के विकास के लिए होता है, जबकि प्रदूषित मन विज्ञान और तकनीकी का उपयोग युद्ध और दुर्गति की विभीषिका उत्पन्न करने के लिए करते हैं।

क्राइस्ट काँशसनेस में शून्य बोध का केन्द्र है तथा अहम् इसकी परिधि पर है।

॥ ॐ यीशु ॐ ॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

प्रकृत्या निर्मिते रम्ये ह्यद्भूतेऽस्मिन् स्थलेऽधुना ।
पुनरीक्षणवेलायां साधनाया विशेषतः ॥१॥
निम्नशब्दाभिव्यक्तात्मपदार्थानां यथार्थतः ।
विवेकोऽत्र विधायैव गम्यतां तात साम्प्रतम् ॥२॥

– अभिव्यक्तिः, अभिलाषः, आकाङ्क्षा च ।
– पूर्वानुमानम्, आशंका, उत्तेजना, गतिविधिः, क्रोधः, प्रतिरोधः, अहङ्कारः, आक्रमकता च ।
– विचारः, प्रवृत्तिः घर्षणम्, त्रासः, पीडा, विपत्तिः, अशान्तिः, घातप्रतिघातः, परम्परा सत्यञ्च ।

अध्याय-६५

प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त इस अद्भूत स्थल पर क्रियायोग साधना की पुनरीक्षा में हमें अपनी इत वातों का अवलोकन करना चाहिए -

- अभिव्यक्ति अभिलाषा, आकांक्षा ।
- पूर्वानुमान, आशंका, उत्तेजना, गतिविधि, क्रोध, प्रतिरोध, अहंकार, आक्रामकता ।
- विचार, प्रवृत्ति, तनाव, त्रासदी, पीडा, विपत्ति, अशान्ति, घात-प्रतिघात, परम्परा एवं सत्य ।
- निराधार कल्पना, निष्कर्ष, अनुबंधित प्रतिक्रिया, धूर्तता, भ्रम, निर्दयता और निर्ममता ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

– निराधारकल्पना, निष्कर्षः, अनुबन्धित-प्रतिक्रिया, धूर्तता, भ्रमः निर्दयता, निर्ममता चेति ।

– व्यसनम्, संस्कारः, परिकल्पना, अर्धसत्यम्, अपेक्षा, पाखण्डः, हृदयगतिश्च ।

सत्यं नामाद्भूतं बोधः । विश्वासपद्धतयः सामूहिकस्वीकार्यतायां निर्मितप्रपञ्चमात्रम् । सामाजिक- संघटना एव । याः समूहं गुरुं पन्थं सम्प्रदायं कट्टरतां युद्धञ्च जनयन्ति । सत्येऽस्तेऽन्धविश्वासस्याविर्भावो जायते । सत्यं जीवच्छ्रद्धा । सत्यस्य न हि पदचिह्नम् । सत्यं स्वयमेव चिह्न । विश्वासपद्धतिसु सहस्रधा चिह्नानि भवन्ति । यथा

➤ आदत, संस्कार, परिकल्पना, अर्धसत्य, अपेक्षा, पाखण्ड, हृदय की गति ।

सत्य अद्‌भुत समझदारी है । विश्वास पद्धतियाँ सामूहिक स्वीकार्यता पर आधारित एक प्रपंच है, एक सामाजिक घटना है, जो समूह, गुरु, पंथ, सम्प्रदाय, कट्टरता एवं युद्ध को जन्म देती हैं । अंधविश्वास का उदय सत्यका अस्त होना है । सत्य जीवन श्रद्धा है सत्य का कोई पहचान चिन्ह नहीं होता । वह स्वयं ही अपनी पहचान है । दूसरी ओर, विश्वास-पद्धतियों के पास पहचान चिन्हों का ढेर है ---हिन्दू विश्वास - पद्धति, मुसलमान विश्वास-पद्धति, ईसाई विश्वास-पद्धति, आदि-आदि ॥१॥

प्रेम के पास कोई नाम-पट्टिका नहीं होती, लेकिन पसन्द एवं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हिन्दूविश्वासपद्धतिः, मुस्लिमपद्धतिः, ख्रीस्तपद्धतिरित्यादयः ॥१॥ प्रेम्णो न हि काचिन्नामपट्टिका । किन्तु आकाङ्क्षाया, अनाकाङ्क्षाया ममताया निर्ममतायाश्च नामपट्टिका भवन्त्येव । प्रेम नैवासक्तिर्न ममत्वम् । सत्यं विश्वासविश्वासयोर्न विषयः । प्रत्यक्षबोधविषयः । परगृहीतविचारपद्धतिर्न । विश्वासपद्धतिः सुरक्षायै संघर्षस्य कृते च ।

सत्यं परमं पावनं पूज्यञ्च विद्यते । विश्वासपद्धतिस्तु समुदायं निर्माति प्रतिबन्धयति च । सत्यं करुणां धर्मञ्च साक्षात्कारयति । विश्वासपद्धतिस्तु विभेदकारिचित्तवृत्तौ निबध्नाति, सत्यं परमचैतन्यमयावस्थायै मोचयति । यदापि भवान् वेत्ति

नापसन्द, लगाव एवं विलगाव की होती है। प्रेम आसक्ति या लगाव नहीं है । सत्य विश्वास एवम् अविश्वास का विषय नहीं है । यह प्रत्यक्ष बोध का विषय है, उधारी वैचारिकीकरण का नहीं। विश्वास-पद्धति सुरक्षा एवं संघर्ष के लिये है। सत्य परम पावन एवं पूज्य है। विश्वास-पद्धति एक समुदाय की रचना करता है और उस पर प्रतिबंध लगाता है। सत्य, सही अर्थों में, आपको करुणा और धर्म से साक्षात्कार कराता है। विश्वास-पद्धतियाँ आपको विभेदकारी चित्तवृत्ति में बाँधकर रखती हैं । सत्य आपको परम चैतन्यमय होने के लिए मुक्त करता है। जब आप समझने लगते हैं कि किसी विश्वास-पद्धति में मात्र जन्म लेने के कारण आप उसकी बंधनकारी मान्यताओं को जीने के लिये विवश नहीं हैं, तभी आपके अन्दर वास्तविक धार्मिकता पैदा होती

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कस्याञ्चिद् विश्वासपद्धतौ जन्मग्रहणमात्रेण तदीयपद्धतौ बन्धनं नोचितमिति यदापि बोधो तन्यते तदैव वास्तवधार्मिकता समुदेति । धर्मजागर्तिर्नाम विश्वासपद्धतौ न निर्भता । स एव सत्यधर्मो यं जीवति भवान् । सदा भवता सह भवति सः । येन गतानुगतिकविश्वासपद्धतिमताग्रहान्धविश्वासबन्धजालान् विच्छिद्य मुक्तये सहायकश्च भवत्येव ॥२॥

परम्परा तु चित्तवृत्तेर्भ्रमजाले पातयित्वा गतानुगतिकरूपं बिभर्ति । सत्यं न सततं न तद्भिन्नम् । गतिशीलं सत् निश्चलमपि भवति । गतिशीलतायां निश्चलं शाश्वतायाञ्च गतिशीलम् । सत्यस्य न निश्चितवासो न निर्धारितार्थश्च ।

है । सच्ची धार्मिक जागरुकता किसी भी प्रकार के विश्वास-पद्धति पर आधारित नहीं होती है । सच्चा धर्म वह है, जिसे आप जीते हैं, जो सदैव आपके साथ होता है और जो आपको गतानुगतिक विश्वास-पद्धतियों, मताग्रहों तथा अन्ध विश्वासों के बंधन-जाल को छिन्न भिन्न कर बंधन-मुक्त करने में सहायक है ॥२॥

परम्परा चित्तवृत्ति के भँवरजाल में फँसकर गतानुगतिकता का रूप ले लेती है । सत्य न तो सतत है और न ही असतत । सत्य गतिशील होने के साथ - साथ निश्चल भी है । यह अपनी गतिशीलता में निश्चल है और शाश्वतता की निश्चलता में भी गतिशील । सत्य का एक निश्चित निवास या निर्धारित अर्थ नहीं है । मिथ्या को मिथ्या की तरह देखते हुए इसे क्षण–प्रतिक्षण समझना होगा । जब विचार

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मिथ्या मिथ्यावद् द्रष्टव्या । प्रतिक्षणं बोधश्चावश्यकः । विचारस्तु नैरन्तरगतिं बिभर्ति । सत्यं तद्बाधकं मतम् । विचाराणां मध्ये यदन्तरालं तत्रैवान्तर्यामी वसति ॥३॥

सत्यं न शाश्वतं न क्षणभङ्गुरम् । नानुभवगम्यं नानुभवातीतम् । न कर्म नाकर्म, न विवादो न विखण्डनं न पूर्णता । न विधेयं न निषेध्यम् । सर्वविधवर्गीकरण–विकल्प–विरोधियुग्ममोहग्रस्तताभ्यः-सत्यं सुदूरं विद्यते । एतत् किल समन्वय– सामञ्जस्ययोः सर्वोच्चस्वरूपमस्ति, एष हि क्रियायोगः । क्रियायोग एव एवंविधपद्धतिरस्ति यत्र स्वास्त्वित्वे स्थातुं रहस्यभरितप्रक्रियां शिक्षयितुं व्यक्तित्वं नामाहङ्कृतिरक्षणस्य सर्वविधच्छलजातं समाप्यते ॥४॥

निरन्तरता की ओर प्रवृत्त होता है, सत्य उसकी निरन्तरता भंग कर देता है । विचारों के मध्य जो अन्तराल है उसी में 'अन्तर्यामी' का वास है ॥३॥

सत्य न तो शाश्वत न क्षणभंगुर, न तो अनुभवगम्य न अनुभवातीत, न तो कर्म न अकर्म, न तो विवाद न समाधान, न तो निर्णय न कुनिर्णय, न तो ऐहिक न दैविक, न तो विखण्डन न पूर्णता, न तो विधेय न निषेध है । सत्य समस्त वर्गीकरणों, विकल्पों, विरोधी-युग्मों, किसी भी प्रकार की मोहग्रस्तता से परे है । यह समन्वय एवं सामञ्जस्य का सर्वोच्च स्वरूप है और यही क्रियायोग है । क्रियायोग एक मात्र ऐसी योग-पद्धति है, जिसमें अपने अस्तित्व में रहने की रहस्यमय प्रक्रियाकी शुरुआत करने के लिए व्यक्तित्व (अहं) को बनाये

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सदस्तित्वम् । अनुभवस्त्वाभासितं सत् । यत्किमपि भवान् अनुभवति तन्न शाश्वतं तत्र भवान् एव हि प्रमाणम् । सहस्रेभ्यो वत्सरेभ्यो भारतवर्षेऽद्भूते असङ्ख्यजनानां खण्डचैतन्यस्य पूर्णचैतन्यबोधात् संज्ञाहीननिर्विकल्प बोधमयताऽभवत् । तत्स्पन्दनमद्यापि तथैव विद्यते । तदीयप्रभावो-भूमावस्यां वायुमण्डले च बोद्धुं शक्यत एव ॥५॥

भारतवर्षं किञ्चिद्विशिष्टस्पन्दनैः स्पन्दितं विद्यते । अस्य सौभाग्यस्य वार्ता न केनचिदन्य-देशेन विधीयते । इदमेकं काव्यम् । न केवलं भूगोल इतिहासो वा । एतदस्मात् किञ्चिद् भिन्नमधिकमदृश्यं बोधगम्यञ्चास्ति । अद्भूतभारतभूमिपरि-

---

रखने के सभी बहाने पूर्णरूप से समाप्त हो जाते हैं ॥४॥

सत् अस्तित्व है । अनुभव केवल आभासित सत् है । जो कुछ आप अनुभव कर रहे हैं, वह अपने आप में इस बात का प्रमाण है कि आप जो अनुभव कर रहे हैं वह शाश्वत नहीं है । हजारों वर्षो से इस अद्भुत देश भारत के हजारों लोगों के खण्ड चैतन्य का उस परम अनाम अस्तित्व में विस्फोट हुआ और उन्हें पूर्ण चैतन्य की झलक मिली । उनका स्पन्दन आज भी विद्यमान है । उनका प्रभाव इस भूमि और यहाँ की हवा में महसूस किया जा सकता है ॥५॥

भारतवर्ष कुछ विशिष्ट स्पन्दनों से स्पंदित है । इस सौभाग्य का दावा शायद कोई अन्य देश नहीं कर सकता है । यह एक काव्य है, केवल भूगोल या इतिहास नहीं । यह इन सबसे कहीं अधिक, कुछ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वेष्ठितापरिमेयचैतन्यैकात्मतायै भवत्समीपं क्रियायोगजन्यबोधो नाम स्वाध्यायः, उद्यमो नाम तपः परम विस्फोटनं नामेश्वरप्रणिधानोत्पन्नान्तर्दृष्टि-रावश्यकीति ॥६॥

॥ ॐ भारतम् ॐ ॥

॥इति श्रीलाहिडिक्रियायोगसंहितायां ज्ञानखण्डे पञ्चषष्टितमोध्यायः॥

अदृश्य, किन्तु बोधगम्य है। इस अद्भूत भूमि भारत को आवेष्ठित करनेवाले अपरिमेय चैतन्य के साथ होने के लिए आपके पास क्रियायोग की समझदारी (स्वाध्याय) उद्यम (तापस) एवं परम विस्फोट (ईश्वर प्रणिधान) से उत्पन्न अन्तर्दृष्टि चाहिए ॥६॥

॥ ॐ भारत ॐ ॥

ॐ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मूल्य : रु. 151/-

रचना आर्ट प्रेस, 29, जॉपलिंग रोड़, लखनऊ फोन : (0522) 2207408

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal